

ॐ श्रीपरब्रह्मणे नमः

श्रीमद्महाभारतान्तर्गत

श्रीविष्णुसहस्रनाम

श्रीमदाद्यशङ्कराचार्यकृत भाष्य

और

हिन्दी-अनुवाद-सहित



अनुवादक—‘भोला’

मुद्रक-प्रकाशक—

धनश्यामदास जालान,

गीताप्रेस, गोरखपुर

सं० १९९० प्रथम बार ३२५०

सं० १९९१ द्वितीय बार ५०००

मूल्य ॥=) दश आना

पता—

गीताप्रेस, गोरखपुर

श्रीहरिः

प्रार्थना

महाभारतमें भगवान्‌के अनन्य भक्त पितामह भीष्मद्वारा भगवान्‌के जिन परम पवित्र सहस्र नामोंका उपदेश किया गया, उसीको श्रीविष्णु-सहस्रनाम कहते हैं। भगवान्‌के नामोंकी महिमा अनन्त है। हीरा, लाख, पना सभी बहुमूल्य रत्न हैं, पर यदि वे किसी निपुण जड़ियेके द्वारा सम्राट्‌के किरीटमें यथास्थान जड़ दिये जायँ तो उनकी शोभा बहुत बढ़ जाती है और अलग-अलग एक-एक दानेकी अपेक्षा उस जड़े हुए किरीटका मूल्य भी बहुत बढ़ जाता है। यद्यपि भगवान्‌के नामके साथ किसी उदाहरणकी समाना नहीं हो सकती, तथापि समझनेके लिये इस उदाहरणके अनुसार भगवान्‌के एक सहस्र नामोंको शास्त्रकी रीतिमें यथास्थान आगे-पीछे जो जहाँ आना चाहिये था—वहीं जड़कर भीष्म-सदृश निपुण जड़ियेने यह एक परम सुन्दर, परम आनन्दप्रद अमूल्य वस्तु तैयार कर दी है। एक बात समझ रखनी चाहिये कि जितने भी ऐसे प्राचीन नामसंग्रह, कवच या स्तवन हैं वे कविकी तुकबन्दी नहीं हैं। सुगमता और सुन्दरताके लिये आगे-पीछे जहाँ-तहाँ शब्द नहीं जोड़ दिये गये हैं। परन्तु इस जगत् और अन्तर्जगत्‌का रहस्य जाननेवाले, भक्ति, ज्ञान, योग और तन्त्रके साधनमें सिद्ध अनुभवी पुरुषोंद्वारा बड़ी ही निपुणता और कुशलताके साथ ऐसे जोड़े गये हैं, कि जिससे वे विशेष शक्तिशाली मन्त्र बन गये हैं और जिनके यथारीति पठनसे इहलौकिक और पारलौकिक कामना-सिद्धिके साथ ही यथाधिकार भगवान्‌की अनन्यभक्ति या सायुज्य मुक्तिकर्का प्राप्ति सुगमतासे हो सकती है। इसीलिये इनके पाठका इतना माहात्म्य है। और इसीलिये सर्वशास्त्रनिष्णात परम योगी और परम ज्ञानी सिद्ध महापुरुष प्रातःस्मरणीय आचार्यवर श्रीआद्यशंकराचार्य महाराजने लोककल्याणार्थ इस श्रीविष्णुसहस्रनामका भाष्य किया है।

आचार्यका यह भाष्य ज्ञानियों और भक्तों दोनोंके लिये ही परम आदर-की वस्तु है ।

पूज्यपाद स्वामीजी श्रीमोलेवावाजीने भाष्यका हिन्दी-भाषान्तर-कर पाठकोंपर बड़ा उपकार किया है । मेरी प्रार्थना है कि पाठक इसका अध्ययन और मनन करके विशेष लाभ उठावे ।

गंगा दशहरा
१९९०

}

हनुमानप्रसाद पोद्दार
कल्याण-सम्पादक



प्रथम बारका निवेदन

बहुत दिन हुए, पूज्यपाद स्वामीजी महाराजने कृपापूर्वक भाष्यका हिन्दी-अनुवाद करके भेज दिया था । कई कारणोंसे प्रकाशनमें चिलम्ब हो गया । प्रेमी-सज्जनोंने बार-बार पत्र लिखकर तार्कीद की । हर्षकी बात है कि अब यह पाठकोंके सम्मुख रखवा जा रहा है । इसके संशोधन आदिमें पं० श्रीचण्डीप्रसादजी शुक्ल, प्रि० गोयन्दका संस्कृत-विद्यालय काशी एवं श्रीमुनिलालजी आदि सज्जनोंने विशेष सहायता दी है इसके लिये गीताप्रेम उनका कृतज्ञ है ।

प्रकाशक



द्वितीय बारका निवेदन

सहस्रनामका यह दूसरा संस्करण प्रकाशित हो रहा है । प्रथम संस्करण इतनी जल्दी समाप्त हो गया यह हर्षकी बात है ।

प्रकाशक



श्रीविष्णु



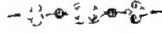
महाङ्गलक मङ्कशेट्टुण्डल मपातयम् सरसोकहेनणम् ।
सगरवधःम्यत्कोस्तुभशिव नमामि विष्णु गिरमा चतुर्भञ्जन् ।

ॐ

श्रीपरमात्मने नमः

विष्णुसहस्रनाम

पदच्छेद, शाङ्करभाष्य तथा हिन्दी-अनुवादसहित



सच्चिदानन्दरूपाय
कृष्णायाक्लिष्टकारिणे ।
नमो वेदान्तवेद्याय
गुरवे बुद्धिनाशिने ॥१॥

कृष्णद्वैपायनं व्यासं
सर्वलोकहितं रतम् ।
वेदाब्जभास्करं वन्दे
शमादिनिलयं मुनिम् ॥२॥

सहस्रमूर्तेः पुरुषोत्तमस्य
सहस्रनेत्राननपादबाहोः ।
सहस्रनाम्नां स्तवनं प्रशस्तं
निरुच्यते जन्मजरादिशान्त्यै ॥३॥

सच्चिदानन्दस्वरूप, अनायास ही
सत्र कर्म करनेवाले, वेदान्तवेद्य, बुद्धि-
साक्षा गुरुवर श्रीकृष्णचन्द्रको नमस्कार
है ॥ १ ॥

वेदरूपा कमलके लिये मूर्त्यरूप,
शमादिके आश्रय, सम्पूर्ण लोकके हितमें
तत्पर मुनिवर कृष्णद्वैपायन व्यासकी
मैं वन्दना करता हूँ ॥ २ ॥

सहस्र नेत्र, मुख, पाद और भुजाओं-
वाले सहस्रमूर्तिमान् श्रीपुरुषोत्तम
भगवान्के सहस्र नामोंवाले प्रशस्त
स्तवनकी, जन्म-जरा आदिकी शान्तिके
लिये व्याख्या की जाती है ॥ ३ ॥

वैशम्पायनो जनमेजयमुवाच— श्रीवैशम्पायनजी जनमेजयसे बोले—

श्रुत्वा धर्मानशेषेण पावनानि च सर्वशः ।

युधिष्ठिरः शान्तनवं पुनरेवाभ्यभाषत ॥ १ ॥

श्रुत्वा, धर्मान्, अशेषेण, पावनानि, च, सर्वशः ।

युधिष्ठिरः, शान्तनवम्, पुनः, एव, अभ्यभाषत ॥

धर्मान् अभ्युदयनिःश्रेयसोत्पत्ति- धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिरने अभ्युदय
हेतुभूतान् चोदनालक्षणान् अशेषेण और निःश्रेयसकी प्राप्तिके हेतुस्वरूप
कात्स्न्येन पावनानि पापक्षयकराणि सम्पूर्ण विधिरूप धर्म तथा पवित्र अर्थात्
धर्मरहस्यानि च सर्वशः सर्वप्रकारैः पापोंका क्षय करनेवाले धर्मरहस्योंको
श्रुत्वा युधिष्ठिरः धर्मपुत्रः शान्तनवं सर्वशः—सब प्रकार सुनकर और यह
शान्तनुसुतं भीष्मं सकलपुरुषार्थ- समझकर कि अर्थात् ऐसा कोई धर्म
साधनं सुखसम्पाद्यम् अल्पप्रयासम् साधक और सुखसम्पाद्य अर्थात् अल्प
अनल्पकलम् अनुक्तमिति कृत्वा प्रयाससे ही सिद्ध होनेवाला होकर भी
पुनः भूय एव अभ्यभाषत प्रश्नं महान् फलवाला हो, शान्तनुके पुत्र
कृतवान् ॥ १ ॥ भीष्मसे फिर पूछा ॥ १ ॥

युधिष्ठिर उवाच—

युधिष्ठिर बोले—

किमेकं दैवतं लोके किं वाप्येकं परायणम् ।

स्तुवन्तः कं कमर्चन्तः प्राप्नुयुर्मानवाः शुभम् ॥ २ ॥

किम्, एकम्, दैवतम्, लोके, किम्, वा, अपि, एकम्, परायणम् ।

स्तुवन्तः, कम्, कम्, अर्चन्तः, प्राप्नुयुः, मानवाः, शुभम् ॥

किमेकं दैवतं देव इत्यर्थः,
स्वार्थे तद्वितप्रत्ययविधानात्, लोके
लोकनहेतुभूते समस्तविद्यास्थाने
उक्तम् 'यदाज्ञया प्रवर्तन्ते सर्वे'
इति प्रथमः प्रश्नः ।

किं वाप्येकं परायणम् अस्मिद्धोके
एकं परायणं च किम्? परम अयनं
प्राप्तव्यं स्थानं यस्मिन्निरीक्षिते—

'भिद्यते हृदयग्रन्थि-
ज्जिद्यन्ते सर्वसंशयाः ।
क्षीयन्ते चाम्य कर्माणि
तस्मिन् दृष्टे परावरे ॥'
(मु० उ० २।२।८)

इति श्रुतेः हृदयग्रन्थिभिद्यते ।

यस्य विज्ञानमात्रेणानन्दलक्षणो
मोक्षः प्राप्यते; यद्विद्वान्न विभेति
कुतश्चन ; यत्प्रविष्टस्य न विद्यते
पुनर्मवः; यस्य च वेदनात्तदेव
भवति, 'ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति' (मु०
उ० ३।२।९) इति श्रुतेः ।

समस्त विद्याओंके स्थान प्रकाशके
हेतुस्वरूप लोकमें एक ही देव कौन हैं ?
जिसके विषयमें कहा है कि 'जिसकी
आज्ञासे सब प्राणी प्रवृत्त होते हैं' यह
प्रथम प्रश्न है । यहाँ 'दैवत' शब्दमें
स्वार्थमें (उसी अर्थको बतलानेके लिये)
तद्वित प्रत्यय हुआ है, अतः 'दैवतम्'
शब्दका अर्थ देव ही है ।

तथा एक ही परायण कौन है ?
अर्थात् इस लोकमें एक ही परायण—
एक ही पर अयन यानी प्राप्तव्य स्थान
कौन है ? जिसका साक्षात्कार कर लेनेपर
'उस परावर (कार्य-कारणरूप
परमात्मा) को देख लेनेपर जीवकी
[अविद्यारूप] हृदय-ग्रन्थि टूट जाती
है, सब संशय नष्ट हो जाते हैं तथा
सम्पूर्ण कर्म क्षीण हो जाते हैं ।'
इस श्रुतिके अनुसार हृदयग्रन्थि टूट
जाती है ।

जिसके ज्ञानमात्रसे ही आनन्द-
स्वरूप मोक्ष प्राप्त होता है, जिसका
जाननेवाला किसीसे भय नहीं
करता, जिसमें प्रवेश करनेवालेका फिर
जन्म नहीं होता, जिसके जान लेनेपर
'जो ब्रह्मको जानता है वह ब्रह्म ही हो
जाता है' इस श्रुतिके अनुसार मनुष्य

यद्विहायापरः पन्था नृणां नास्ति, वही हो जाता है, तथा जिसे छोड़कर
'नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय' (श्वे० मनुष्योंके लिये कोई दूसरा मार्ग
उ० ६।१५) इति श्रुतेः । नहीं है, जैसा कि श्रुति कहती है—
'मोक्षकेलिये और कोई मार्ग नहीं है।'

तदुक्तमेकं परायणं लोके इस प्रकार जो लोकमें एक ही
परायण बतलाया गया है वह कौन
यत्तत् किमिति द्वितीयः प्रश्नः । है ? यह दूसरा प्रश्न है ।

कं कतमं देवं स्तुवन्तः गुण- और कौन-से देवकों स्तुति—गुण-
सङ्कीर्तनं कुर्वन्तः, कं कतमं देवम् कीर्तन करनेसे तथा किस देवका नाना
अर्चन्तः बाह्यमाभ्यन्तरं चार्चनं प्रकारसे अर्चन अर्थात् वात् और आन्त-
बहुविधं कुर्वन्तः मानवा मनुमुताः रिक पूजा करनेसे मनुष्य शुभ यानी
शुभं कल्याणं स्वर्गादिफलं प्राप्नुयुः स्वर्गादि फलरूप कल्याणको प्राप्ति कर
लभेरभिति पुनः प्रश्नद्वयम् ॥ २ ॥ सकते हैं ? ये दो प्रश्न और हैं ॥ २ ॥

को धर्मः सर्वधर्माणां भवतः परमो मतः ।

किं जपन्मुच्यते जन्तुर्जन्मसंसारबन्धनात् ॥ ३ ॥

कः, धर्मः, सर्वधर्माणाम्, भवतः, परमः, मतः ।

किम्, जपन्, मुच्यते, जन्तुः, जन्मसंसारबन्धनात् ॥

को धर्मः पूर्वोक्तलक्षणः सर्वधर्माणा आप सर्वधर्मों—समस्त धर्मोंमें पूर्वोक्त
सर्वेषां धर्माणां मध्ये भवतः परमः दृष्टांसे युक्त किस धर्मको परम—श्रेष्ठ
प्रकृष्टो मतः अभिप्रेत इति पञ्चमः मानते हैं ? यह पाँचवाँ प्रश्न है ।
प्रश्नः ।

किं जपन् किं जप्यं जपन् उच्चो तथा किस जपनीयका उच्च उपांशु
पांशुमानसलक्षणं जपं कुर्वन् जन्तु और मानस जप करनेसे जननधर्मा जीव
जननधर्मा । अनेन जन्तुशब्देन जन्म-संसार-बन्धनसे मुक्त हो जाता

जपार्चनस्तवनादिषु यथायोग्यं है ! इत 'जन्तु' शब्दसे जप, अर्चन
सर्वप्राणिनामधिकारं सूचयति । और स्तवन आदिमें समस्त प्राणियोंका
जन्मसंसारबन्धनात् जन्म अज्ञान- यथायोग्य अधिकार सूचित करते हैं ।
विजृम्भितानामविद्याकार्याणामुप- 'जन्म' शब्द अज्ञानसे प्रतीत होनेवाले
लक्षणम्, संसारोऽविद्या, ताभ्यां अविद्याके कार्योंको लक्षित करता है
जन्मसंसाराभ्यां यद्वन्धनं तस्मात् तथा 'संसार' अविद्याहीका नाम है ।
मुच्यते मुक्तो भवतीति पटुः प्रश्नः । उन जन्म और संसारका जो बन्धन है
मुच्यते मुक्तो भवतीति पटुः प्रश्नः । उससे कैसे छूटता है ' यह छटा प्रश्न है ।
मुच्यते जन्मसंसारबन्धनादि- 'जन्म-संसाररूप बन्धनसे कैसे
तीदमुपलक्षणम् इतरेषां फलानामपि छूटता है ' यह कहना मोक्षकी प्रधानता
एतद्ग्रहणं मोक्षस्य प्राधान्यख्याप- बतलानेके लिये है; अतः इन वाक्यसे
नार्थम् ॥ ३ ॥ अन्य फलोंका भी ग्रहण होता है ॥३॥

किमेकमिति पटुप्रश्नाः कथिताः । यहाँ 'वह एक देव कौन है' इत्यादि छटा
तेषु पाश्चात्त्योऽनन्तरो जप्यविषयः प्रश्न कहे गये हैं, उनमेंसे पाश्चात्त्य - अन्तिम
पटुः प्रश्नोऽनेन श्लोकेन परिह्रियते । यानी जपनीयविषयक छटे प्रश्नका
इस श्लोकसे समाधान किया जाता है ।

श्रीभीष्म उत्तरमुवाच—

भीष्मजीने उत्तर दिया—

जगत्प्रभुं देवदेवमनन्तं पुरुषोत्तमम् ।

स्तुवन्नामसहस्रेण पुरुषः सततोन्थितः ॥ ४ ॥

जगत्प्रभुम्, देवदेवम्, अनन्तम्, पुरुषोत्तमम् ।

स्तुवन्, नामसहस्रेण, पुरुषः, सततोन्थितः ॥

सर्वेषां बहिरन्तःशत्रूणां भय-
हेतुर्भीष्मः मोक्षधर्मादीनां प्रवक्ता
सर्वज्ञः ।

जगत् स्थावरजङ्गमात्मकं तस्य प्रभुं
स्वामिनम्, देवदेवं देवानां ब्रह्मादीनां
देवम्, अनन्तं देशतः कालतो वस्तु-
तश्चापरिच्छिन्नम्, पुरुषोत्तमं क्षरा-
क्षराभ्यां कार्यकारणाभ्यामुत्कृष्टम्,
नामसद्वत्त्वेण नाश्रां सहस्रेण स्तुवन्
गुणान्सङ्कीर्तयन् सततोप्यतो निरन्तर-
मुद्युक्तः । पुरुषः पूर्णत्वात् पुरि-
शयनाद्वा पुरुषः—‘सर्वदुःखातिगो
भवेत्’ इति सर्वत्र सम्बध्यते ॥४॥

मोक्षधर्म आदिका कथन करने-
वाले सर्वज्ञ [देवव्रत] ही वाच और
आन्तरिक समस्त शत्रुओंके भयके कारण
होनेसे ‘भीष्म’ कहे जाते हैं ।

स्थावर-जंगमरूप जो संसार है उसके
प्रभु—स्वामी, देवदेव—ब्रह्मादि देवोंके
देव, अनन्त अर्थात् देश, काल और वस्तु-
से अपरिच्छिन्न, कार्य-कारणरूप क्षर और
अक्षरसे श्रेष्ठ पुरुषोत्तमका सहस्रनामके
द्वारा निरन्तर तत्पर रहकर स्तवन-गुण-
संकीर्तन करनेसे पुरुष सब दुःखोंसे
पार हो जाता है । पूर्ण होनेसे अधवा
शरीररूप पुरुषे शयन करनेसे जीवका
नाम ‘पुरुष’ है । यहाँसे [छठे श्लोकके]
‘सर्वदुःखातिगो भवेत्’ (सब दुःखोंसे
पार हो जाता है) इस पदका प्रत्येक
श्लोकके साथ सम्बन्ध है ॥४॥

उत्तरेण श्लोकेन चतुर्थः प्रश्नः
समाधीयते—

अगले श्लोकमें चौथे प्रश्नका
समाधान किया जाता है—

तमेव चार्चयन्नित्यं भक्त्या पुरुषमव्ययम् ।

ध्यायन्स्तुवन्नमस्यंश्च यजमानस्तमेव च ॥ ५ ॥

तम्, एव, च, अर्चयन्, नित्यम्, भक्त्या, पुरुषम्, अव्ययम् ।

ध्यायन्, स्तुवन्, नमस्यन्, च, यजमानः, तम्, एव, च ॥

तमेव चार्चयन् बाह्यार्चनं कुर्वन् तथा उसी अव्यय विनाशक्रिया-
नित्यं सर्वेषु कालेषु भक्तिर्भजनं रहित पुरुषका नित्य अर्थात् सब समय

तात्पर्यं तथा भक्त्या पुरुषमन्ययं
विनाशक्रियारहितम्, तमेव च ध्यायन्
आभ्यन्तरार्चनं कुर्वन्, स्तुवन, पूर्वो-
क्तेन नमस्यन् नमस्कारं कुर्वन्, पूजा-
शेषभूतमुभयं स्तुतिनमस्कारलक्षणं -
यजमानः पूजकः फलभोक्ता ।

अथवा, अर्चयन्नित्यनेनोभयविध-
मर्चनमुच्यते । ध्यायंस्तुवन्नमस्यं-
श्चेत्यनेन मानसं वाचिकं कायिकं
चोच्यते ॥५॥

भजन अर्थात् तत्परताका नाम भक्ति है,
उस भक्तिसे युक्त होकर अर्चन अर्थात्
वाद्य पूजन करनेसे और उसीका ध्यान
यानी आन्तरिक पूजन तथा पूर्वोक्त
प्रकारसे [सहस्रनामद्वारा] स्तवन एवं
नमस्कार करनेसे अर्थात् पूजाके शेषभूत
स्तुति और नमस्कार करनेसे यजमान-
पूजा करनेवाला फल-भोक्ता [सब
दुःखोंसे छूट जाता है] ।

अथवा यों समझो कि 'अर्चयन्' शब्द-
से नाग और आन्तरिक दो प्रकारका
अर्चन कहा है तथा ध्यान, स्तवन और
नमन करते हुए—इमसे मानसिक,
वाचिक और कायिक पूजन बताया
गया है ॥५॥

तृतीयं प्रश्नं परिहरति उत्तर-
स्त्रिभिः पादैः—

अत्र अगले तीन पादोंसे तीसरे
प्रश्नका उत्तर देने है—

अनादिनिधनं विष्णुं सर्वलोकमहेश्वरम् ।

लोकाध्यक्षं स्तुवन्नित्यं सर्वदुःखातिगो भवेत् ॥ ६ ॥

अनादिनिधनम्, विष्णुम्, सर्वलोकमहेश्वरम् ।

लोकाध्यक्षम्, स्तुवन्, नित्यम्, सर्वदुःखातिगः, भवेत् ॥

अनादिनिधनं पदभावविकार-
वर्जितम्, विष्णुं व्यापनशीलम्,
सर्वं लोकयते इति लोको हृदय-

अनादिनिधन अर्थात् [होना,
जन्म लेना, बढ़ना, बढ़ना, क्षीण होना
और नष्ट होना—इन] छः भावविकारोंसे

वर्गो लोकस्तस्य नियन्तृणां ब्रह्मादी-
नामपीश्वरत्वात् सर्वलोकमहेश्वरः
तम्, लोकं दृश्यवर्गं स्वाभाविकेन
बोधेन साक्षात्पश्यतीति लोकाध्यक्षः
तं नित्यं निरन्तरं स्तुवन् सर्व-
दुःखातिगो भवेद् इति त्रयाणां
स्तवनार्चनजपानां साधारणं फल-
वचनम् । सर्वाण्याध्यात्मिकादीनि
दुःखान्यतीत्य गच्छतीति सर्वदुः-
खातिगः भवेत् स्यात् ॥६॥

रहित, विष्णु अर्थात् व्यापक तथा सम्पूर्ण
लोकोंके महेश्वर—जो दिखलायी दे उस
दृश्यवर्गका नाम लोक है, उसके नियन्ता
ब्रह्मादिके भी स्वामी होनेसे जो सर्वलोक-
महेश्वर और सारे दृश्यवर्गको अपने
स्वाभाविक ज्ञानसे साक्षात् देखनेके
कारण लोकाध्यक्ष है, उस (देव)
की निरन्तर स्तुति करनेमें मनुष्य सब
दुःखोंके पार हो जाता है । इस प्रकार
यहाँ स्तवन, अर्चन और जप इन तीनों-
का एक ही फल बतलाया गया है ।
सम्पूर्ण अर्थात् आध्यात्मिक आदि
तीनों प्रकारके दुःखोंको पार कर जाता
है, यानी सर्वदुःखातीत हो जाता है ॥६॥

पुनरपि तमेव स्तुत्यं विशिनष्टि—

उस स्तुति करनेयोग्य देवके ही
विशेषण फिर भी बतलाते हैं—

ब्रह्मण्यं सर्वधर्मज्ञं लोकानां कीर्तिवर्धनम् ।

लोकनाथं महद्भूतं सर्वभूतभवोद्भवम् ॥ ७ ॥

ब्रह्मण्यम्, सर्वधर्मज्ञम्, लोकानाम्, कीर्तिवर्धनम् ।

लोकनाथम्, महद्भूतम्, सर्वभूतभवोद्भवम् ॥

ब्रह्मण्यं ब्रह्मणे संप्रे ब्राह्मणाय
तपसे श्रुतये हितम्, सर्वान् धर्मान्
जानातीति सर्वधर्मज्ञः तम्, लोकानां

जो ब्रह्मण्य अर्थात् जगत्की
रचना करनेवाले ब्रह्माके तथा ब्राह्मण,
तप और श्रुतिके हितकारी हैं, सब
धर्मोंको जानते हैं, लोकोंके अर्थात्

प्राणिनां कीर्तयः यशांसि स्वशक्त्या-
नुप्रवेशेन वर्धयतीति तम् लोकैर्ना-
ध्यते लोकानुपतापयते शास्ते
लोकानामीष्ट इति वा लोकनाथः तम्,
महद् ब्रह्म-विश्वोत्कर्षेण वर्तमान-
त्वात्-महद्भूतं परमार्थसत्यम् सर्व-
भूतानां भवः संसारो यत्सकाशा-
दुद्भवतीति सर्वभूतभवोद्भवः तम् ॥७॥

प्राणियोंकी कीर्ति यानी यशको उनमें
अपनी शक्तिसे प्रविष्ट होकर बढ़ाते हैं,
जो लोकनाथ अर्थात् लोकोसे प्रार्थित
अथवा लोकोंको अनुत्तम या शासित
करनेवाले अथवा उनपर प्रभुत्व रखने-
वाले हैं, जो अपने समस्त उत्कर्षसे
वर्तमान होनेके कारण महद् अर्थात्
ब्रह्म तथा महद्भूत यानी परमार्थ सत्य
हैं और जिनकी सन्निधिमात्रसे समस्त
भूतोंका उत्पत्ति-स्थान संसार उत्पन्न
होता है, इसलिये जो समस्त भूतोंके
उद्भवस्थान हैं उन परमेश्वरका [स्तवन
करनेमें मनुष्य सब दुःखोंमें छूट जाता
है] ॥७॥

पञ्चमं प्रश्नं परिहरति-

अत्र पाँचवें प्रश्नका उत्तर देते हैं-

एष मे सर्वधर्माणां धर्मोऽधिकतमो मतः ।

यद्ब्रक्त्या पुण्डरीकाक्षं स्तवैरर्चेन्नरः सदा ॥८॥

एष, मे, सर्वधर्माणाम्, धर्मः, अधिकतमः, मतः ।

यत्, भक्त्या, पुण्डरीकाक्षम्, स्तवैः, अर्चेत्, नरः, सदा ॥

सर्वेषां चोदनालक्षणानां धर्माणामेष
वक्ष्यमाणो धर्मोऽधिकतम इति मे मम
मतः अभिप्रेतः, यद्ब्रक्त्या तात्पर्येण
पुण्डरीकाक्षं हृदयपुण्डरीके प्रकाश-
मानं वामुदेवं स्तवैर्गुणसङ्कीर्तन-

सम्पूर्ण विधिरूप धर्ममें मैं आगे
बतलाये जानेवाले इसी धर्मको सबसे
बड़ा मानता हूँ कि मनुष्य श्री-
पुण्डरीकाक्षका अर्थात् अपने हृदय-
कमलमें विराजमान भगवान् वामुदेवका
भक्तिपूर्वक-तत्परतासहित गुणसंकीर्तन-

लक्षणैः स्तुतिभिः सदा चैत् सत्कार-
पूर्वकमर्चनं करोति नरः मनुष्यः
इति यद् एष धर्म इति सम्बन्धः ।

अस्य स्तुतिलक्षणस्यार्चनस्या-
धिक्ये किं कारणम् उच्यते—

हिंसादिपुरुषान्तरद्रव्यान्तरदेश-
कालादिनियमानपेक्षत्वम् आधिक्यं
कारणम् ।

‘ध्यायन् कृते यजन् यज्ञे-
स्नेतायां द्वापरंऽर्चयन् ।
यदाप्नोति तदाप्नोति
कलौ सङ्कीर्त्य केशवम् ॥’

इति विष्णुपुराणे (६।२।१७)

‘जप्येनैव तु संसिध्येद्
ब्राह्मणो नात्र संशयः ।
कुर्यादन्यन्न वा कुर्या-
न्मैत्रो ब्राह्मण उच्यते ॥’

इति मानवं वचनम् (मनु० २।८७)।

‘जपस्तु सर्वधर्मैः
परमो धर्म उच्यते ।

अहिंसया च भूतानां
जपयज्ञः प्रवर्तते ॥’

इति महाभारते । ‘यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि’
(गीता १०।२५) इति भगवद्वचनम् ।

रूप स्तुतियोंसे सदा अर्चन करे या तो
मनुष्य आदरपूर्वक पूजन करे—इस
प्रकार जो यह धर्म है [यही मुझे
सबसे अधिक मान्य है] इस तरह
इसका पूर्वसे सम्बन्ध है ।

इस स्तुतिरूप अर्चनकी अधिक
मान्यताका कारण क्या है ? सो बतलाते
हैं—

हिंसादि पाप-कर्मका अभाव तथा
अन्य पुरुष एवं द्रव्य, देश और
कालादिके नियमकी अनावश्यकता ही
इसकी अधिकमान्यताका कारण है ।

विष्णुपुराणमें कहा है—‘सत्ययुगमें
ध्यानसे, त्रेतामें यज्ञानुष्ठानसे और
द्वापरमें पूजा करनेसे मनुष्य जो
कुछ पाना है वह कलियुगमें भगवान्
रुष्णका नाम-संकीर्तन करनेसे ही
पा लेता है ।’

मनुजीका वचन है—‘इसमें सन्देह
नहीं कि ब्राह्मण, अन्य कर्म करे या न
करे, वह केवल जपसे ही पूर्ण सिद्धि
प्राप्त कर लेता है । अतः ब्राह्मण
‘मैत्र’ (सयका मित्र) कहा जाता है ।’

महाभारतमें कहा है—‘सम्पूर्ण धर्मों-
में जप सर्वश्रेष्ठ धर्म कहा जाता है,
क्योंकि जपयज्ञ प्राणियोंकी हिंसा
किये बिना ही सम्पन्न हो जाता है ।’
भगवान्का भी वचन है कि ‘यज्ञोंमें मैं
जपयज्ञ हूँ ।’

एतत्सर्वमभिप्रेत्य

‘एष मे सर्वधर्माणा

धर्मोऽधिकतमो मतः ।’

(चि० म० ८)

इत्युक्तम् ॥८॥

इन सब बातोंको सोचकर ही

भीष्मजीने यह कहा है कि ‘मुझे समस्त

धर्मोंमें यही धर्म सबसे अधिक

मान्य है’ ॥८॥

द्वितीयं प्रश्नं समाधत्ते ।

द्विमे प्रश्नका समाधान करते हैं—

परमं यो महत्तेजः परमं यो महत्तपः ।

परमं यो महद्ब्रह्म परमं यः परायणम् ॥९॥

परमम्, यः, महत्, तेजः, परमम्, यः, महत्, तपः ।

परमम्, यः, महत्, ब्रह्म, परमम्, यः, परायणम् ॥

परमं प्रकृष्टं महद् बृहन् तेजः चैतन्य-
लक्षणं सर्वाविभाजकम्, ‘येन सूर्य-
स्तपति तेजसेद्वा ।’ (ते० ब्रा० ३।
१२।१७) ‘तदेवा ज्योतिषा ज्योतिः’
(वृ० उ० ४।४।१६) ‘न तत्र
सूर्यो भाति न चन्द्रतारकम्’ (मु०
उ० २।२।१०) इत्यादि-
श्रुतेः; ‘यदादिन्यगतं तेजः’ (गीता
१५।१२) इत्यादिस्मृतेश्च ।

परमं तपः तपत आज्ञापयतीति
तपः, ‘य इमं च लोकं परमं च लोकं
सर्वाणि च भूतानि योऽन्तरो यम-
यति’ (वृ० उ० ३।७।१) इत्यन्तर्या-
मिब्राह्मणे सर्वनियन्तृत्वं श्रयते ।

जो सबका प्रकाशक, परम अर्थात्
उत्तम और महान्—बृहत् चिन्मय
प्रकाश है, जिसके विषयमें ‘जिस
तेजसे प्रकाशित होकर सूर्य तपता
है’ ‘उसे देवगण ज्योतियोंकी ज्योति
[कहते हैं]’ ‘वहाँ न सूर्यका प्रकाश
पहुँचता है और न चन्द्रमा या
तारोंका’ इत्यादि श्रुतियोंसे तथा
‘सूर्यके अन्तर्गत जो तेज है’
इत्यादि स्मृतियोंसे भी यही प्रमाणित
होता है ।

जो परम तप अर्थात् तपनेवाला
यानी आज्ञा देनेवाला है, जैसा कि
‘जो इस लोकको, परलोकको तथा
समस्त प्राणियोंको उनके भीतर स्थित
होकर शासित करता है’ इस श्रुति-
द्वारा अन्तर्यामी ब्राह्मणमें उसको सब-
का नियामक कहा गया है ।

‘भीषास्माद्वातः पचते भीषोदेति
सूर्यः । भीषास्मादग्निश्चेन्द्रश्च मृत्यु-
र्धावति पञ्चमः’ (तै० उ० २।८।१)
इत्यादि तैत्तिरीयके ।

तपतीष्ट इति वा तपः तस्यैश्वर्य-
मनवच्छिन्नमिति महत्त्वम्, ‘एष सर्व-
ेश्वरः’ (मा० उ० ६) इत्यादिश्रुतेः ।

परमं सत्यादिलक्षणं ब्रह्म महनी-
यतया महत् । परमं प्रकृतं पुनरावृत्ति-
शङ्कारहितम् । परायणं परम् अयनं
परायणम् ।

परमग्रहणात्सर्वत्र अपरं तेजः
आदित्यादिकं व्यावर्त्यते । सर्वत्र
यो देव इति विशेष्यते च—

यो देवः परमं तेजः परमं तपः
परमं ब्रह्म परमं परायणं स एकं
सर्वभूतानां परायणमिति वाक्यार्थः

तैत्तिरीय श्रुतिमें भी कहा है—
‘इसीके भयसे वायु चलता है, इसी-
के भयसे सूर्य उदित होता है तथा
इसीके भयसे अग्नि, इन्द्र और
पाँचवाँ मृत्यु दौड़ता है ।’ इत्यादि ।

‘तपता है’ अथवा ‘शासन करता
है’ इसलिये वह तप है । उसका
ऐश्वर्य अपरिमित है इस कारण वह
महान् है । श्रुति भी कहती है कि
‘वह सर्वेश्वर है ।’

जो सत्यादि लक्षणोंवाला परब्रह्म
तथा महनायुक्त होनेके कारण महान् है
और जो पुनरावृत्तिकी शङ्कासे रहित
परम-श्रेष्ठ परायण है । परम अयन
(आश्रय) का नाम परायण है ।

यहाँ सर्वत्र ‘परम’ शब्दका ग्रहण
होनेसे सूर्यादि अन्य तेजोंका व्यावर्तन
(पृथक्करण) किया गया है और ‘जो
देव’ इस पदकी विशेषता बतायी
गयी है—

‘जो देव परम तेज, परम तप,
परम ब्रह्म और परम परायण है वही
समस्त प्राणियोंकी परम गति है’—यह
इस वाक्यका अर्थ है ॥९॥

इदानीं प्रथमप्रश्नस्योत्तरमाह— अब पहले प्रश्नका उत्तर देते हैं—

पवित्राणां पवित्रं यो मङ्गलानां च मङ्गलम् ।

दैवतं देवतानां च भूतानां योऽव्ययः पिता ॥१०॥

पवित्राणाम्, पवित्रम्, यः, मङ्गलानाम्, च, मङ्गलम् ।

दैवतम्, देवतानाम्, च, भूतानाम्, यः, अन्ययः, पिता ॥

पवित्राणां पवित्रं पावनानां तीर्था-
दीनां पवित्रम् । परमस्तु पुमान्
ध्यातो दृष्टः कीर्तितः स्तुतः
सम्पूजितः स्मृतः व्रणतः पाप्मनः
सर्वानुन्मूलयतीति परमं पवित्रम् ।

संसारबन्धहेतुभूतं पुण्यापुण्या-
त्मकं कर्म तत्कारणं चाज्ञानं मयं
नाशयति स्वयाथात्म्यज्ञानेनेति वा
पवित्राणां पवित्रम् ।

‘रूपमारोग्यमर्थाश्च

भोगाश्चैवानुपह्विकान् ।

ददाति ध्यायतो नित्य-

मपवर्गप्रदो हरिः ॥’

‘चिन्त्यमानः समस्तानां

ज्ञेशानां हानिदो हि यः ।

समुत्सृज्याखिलं चिन्त्यं

सोऽच्युतः किं न चिन्त्यते ॥’

२

जो पवित्रोंमें पवित्र अर्थात् पवित्र
करनेवाले तीर्थादिकोंमें पवित्र हैं ।
परमपुरुष परमात्मा ध्यान, दर्शन,
कीर्तन, स्तुति, पूजा, स्मरण तथा
प्रणाम किये जानेपर समस्त पापोंको
जड़से उखाड़ डालने हैं, इसलिये वे
परम पवित्र हैं ।

अथवा यों समझो कि परमात्मा
अपने स्वरूपके यथार्थ ज्ञानसे संसार-
बन्धनके हेतुभूत पुण्य-पापरूप कर्म
और उसके कारणरूप अज्ञान सबको
नष्ट कर देने हैं । इसलिये वे पवित्रोंमें
पवित्र हैं ।

‘मोक्षदाता श्रीहरिर्ध्यान करने-
वालेको सर्वदा रूप, आरोग्य, सम्पूर्ण
पदार्थ और प्रासङ्गिक भोग भी दे
देते हैं ।’

‘जो अपना स्मरण किये जानेपर
समस्त क्लेशोंको दूर कर देते
हैं, और सब चिन्तनीयोंको छोड़कर
उन अच्युतका ही चिन्तन क्यों
नहीं किया जाता ?’

‘ध्यायेन्नारायणं देवं
ज्ञानादिषु च कर्मसु ।
प्रायश्चित्तं हि सर्वस्य
दृष्टतस्येति वै श्रुतिः ॥’
(गरुड० १।२३०।२८)

‘संसारसर्पसन्दष्ट-
नष्टचेष्टैकभेषजम् ।
कृष्णेति वैष्णवं मन्त्रं
श्रुत्वा मुक्तो भवेन्नरः ॥’

‘अतिपातकयुक्तोऽपि
ध्यायन्निमिषमच्युतम् ।
भूयस्तपस्वी भवति
पङ्क्तिपावनपावनः ॥’

‘आलोल्य सर्वशास्त्राणि
विचार्य च पुनः पुनः ।
इदमेकं सुनिष्पन्नं
ध्येयो नारायणः सदा ॥’
(लिङ्ग० २।७।११)

‘हरिरिकः सदा ध्येयो
भवद्भिः सत्त्वसंस्थितैः ।
आमित्येवं सदा विप्राः
पठत ध्यात केशवम् ॥’
(हरि० ३।८९।९)

‘ज्ञानादि समस्त कर्मोंको करते
हुए श्रीनारायणदेवका ध्यान करना
चाहिये ।’ ‘यह (भगवत्स्मरण) ही
सम्पूर्ण दुष्कर्मोंका प्रायश्चित्त है,
इस विषयमें श्रुति भी सहमत है ।’

‘संसाररूप सर्पद्वारा डँसे जानेसे
निश्चेष्ट हुए पुरुषके लिये एकमात्र
औषधरूप ‘कृष्ण’ इस मन्त्रको सुन-
कर मनुष्य मुक्त हो जाता है ।’

‘अत्यन्त पापी पुरुष भी एक
पलके लिये भी अच्युतका ध्यान
करनेसे बड़ा भारी तपस्वी और
पंक्तिपावनोंको* भी पवित्र करने-
वाला हो जाता है ।’

‘समस्त शास्त्रोंका मन्थन करने-
पर और उनका पुनः-पुनः विचार
करनेपर यही निश्चित होता है कि
सर्वदा श्रीनारायणका ध्यान करना
चाहिये ।’

‘हे विप्रगण ! आपलोगोंको
सर्वदा सत्त्वगुणसम्पन्न होकर एक-
मात्र श्रीहरिका ही ध्यान करना
चाहिये । आप सदा ओंसेम्का जप
और श्रीकेशवका ध्यान करें ।’

❀ जो ब्राह्मण श्रोत्रिय और सम्पूर्ण ब्राह्मणोचित लक्षणोंसे युक्त होता है वह
‘पंक्तिपावन’ कहलाता है ।

‘मिथते हृदयग्रन्थि-
 त्तिष्ठन्ते सर्वसंशयाः ।
 क्षीयन्ते चास्य कर्माणि
 तस्मिन् दृष्टे परावरे ॥’
 (मु० उ० २।२।८)

‘यन्नामकीर्तनं भक्त्या
 विलापनमनुत्तमम् ।
 मैत्रेयाशेषपापानां
 धातनामिव पावकः ॥’
 (विष्णु० ६।८।२०)

‘अवशंनापि यन्नास्मि
 कीर्तिते सर्वपातकैः ।
 पुमान् विमुच्यते सद्यः
 सिंहत्रस्तैर्मृगैरिव ॥’
 (विष्णु० ६।८।१०)

‘व्यायन् कृते यजन् यज्ञै-
 स्वेताया द्वापरंऽर्चयन् ।
 यदामोति तदामोति
 कलौ सङ्कीर्त्य केशवम् ॥’
 (विष्णु० ६।२।१७)

‘हरिर्हरति पापानि
 दुष्टचित्तैरपि स्मृतः ।
 अनिच्छयापि संस्पृष्टो
 दहत्येव हि पावकः ॥’
 (बृ०नारद० १।११।१००)

‘उस परावर परमात्माका दर्शन
 कर लेनेपर जीवकी (अधिष्ठाकरूप)
 हृदय-ग्रन्थि दूट जाती है, उसके
 सम्पूर्ण संशय नष्ट हो जाते हैं और
 सारे कर्म क्षीण हो जाते हैं ।’

‘हे मैत्रेय ! सुवर्ण आदि धातुओं-
 को जिस प्रकार अग्नि पिघला देता
 है उसी प्रकार जिसका भक्तियुक्त
 नाम-संकीर्तन सम्पूर्ण पापोंका
 अत्युत्तम विलापन (लीन करने-
 वाला) है ।’

‘जिसके नामका विवश होकर
 कीर्तन करनेसे भी मनुष्य सिंहसे
 डरे हुए हरिणोंके समान तुरन्त ही
 समस्त पापोंसे दूष्ट जाता है ।’

‘सत्ययुगमें ध्यानसे, त्रेतामें
 यज्ञानुष्ठानसे और द्वापरमें भगवान्‌के
 पूजनसे मनुष्य जो कुछ प्राप्त करता है
 वह कलियुगमें श्रीकेशवका नाम-
 संकीर्तन करनेसे ही पा लेता है ।’

‘श्रीहरिका यदि दुष्टचित्त पुरुषों-
 से भी स्मरण किया जाय तो वे उनके
 समस्त पापोंको हर लेते हैं; जैसे
 अनिच्छासे स्पर्श करनेपर भी अग्नि
 जला ही डालता है ।’

‘ज्ञानतोऽज्ञानतो वापि
वासुदेवस्य कीर्तनात् ।
तत्सर्वं विलयं याति
तोयस्थं लवणं यथा ॥’

‘यस्मिन्न्यस्तमतिर्न याति नरकं
स्वर्गोऽपि यद्विन्तने,
विघ्नो यत्र निवेशिताभमनसो
ब्राह्मोऽपिलोकोऽन्पकः ।
मुक्तिं चेत्तसि यः स्थितोऽमलवियां
पुंसां ददात्यययः,
किं चित्रं यदपं प्रयाति विलयं
तत्राच्युते कीर्तिने ॥’
(विष्णु० ६।८।५७)

‘शमायालं जलं वद्वे-
स्तमसो भास्करोदयः ।
शान्तिः कलो गर्वाघ्न्य
नामसङ्कीर्तनं हरेः ॥’

‘हरेर्नामैव नामैव
नामैव मम जीवनम् ।
कर्त्रे नास्त्येव नास्त्येव
नास्त्येव गतिरन्यथा ॥’
(बृ० नारद० १।४१।१५)

‘स्तुत्वा विष्णुं वासुदेवं
विपापो जायते नरः ।

‘श्रीवासुदेवके, जानकर अथवा
बिना जाने, किसी प्रकार भी किये
हुए कीर्तनसे जलमें पड़े हुए नमकके
समान समस्त दोष लीन हो जाते हैं।’

‘जिसमें चित्त लगानेवाला नरक-
गामी नहीं होता, जिसके चिन्तनमें
स्वर्गलोक भी विघ्नरूप है, जिसमें
चित्त लग जानेपर ब्रह्मलोक भी तुच्छ
प्रतीत होता है तथा जो अविनाशी
प्रभु शुद्ध बुद्धिवाले पुरुषोंके हृदयमें
स्थित होकर उन्हें मुक्ति प्रदान करता
है, उस अच्युतका चिन्तन करनेसे
यदि पाप विलीन हो जाते हैं, तो
इसमें क्या आश्चर्य है?’

‘अग्निको शान्त करनेमें जल
और अन्धकारको दूर करनेमें सूर्य
समर्थ है, तथा कलियुगमें पाप-समूह-
की शान्तिका उपाय श्रीहरिका नाम-
संकीर्तन है।’

‘श्रीहरिका नाम ही, नाम ही,
नाम ही मेरा जीवन है: इसके
अतिरिक्त कलियुगमें और कोई
उपाय नहीं है।’

‘सर्वव्यापक विष्णुभगवानका
स्तवन करनेसे मनुष्य निष्पाप हो

विष्णोः सम्पूजनानित्यं

सर्वपापं प्रणश्यति ॥'

‘सर्वदा सर्वकार्येषु

नास्ति तेषाममङ्गलम् ।

देवां हृदिभ्यो भगवान्

मङ्गलायत्नो हरिः ॥'

(स्कन्ध० ५।३।१५०।७)

‘नित्यं सञ्चिन्तयेदेवं

योगयुक्तो जनार्दनम् ।

साम्यं मन्ये परा रक्षा

को हिनम्यभ्युत्ताश्रयम् ॥'

‘गङ्गास्नानसहस्रं

पुष्करस्नानकोटिपृ ।

यः पापं विलयं याति

स्मृतं नश्यति तद्धरा ॥'

(गरुड० १।२३०।१८)

‘मुहुर्नमपि यो ध्याये-

नारायणमनामयम् ।

सोऽपि सिद्धिमवाप्नोति

किं पुनस्तत्परायणः ॥'

‘प्रायश्चित्तान्यशेषाणि

तपःकर्मात्मकानि वै ।

यानि तेषामशेषाणां

कृष्णानुस्मरणं परम् ॥'

(विष्णु० २।६।३९)

जाता है। विष्णुभगवान्का नित्यप्रति पूजन करनेसे समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं ।'

‘जिनके हृदयमें समस्त मङ्गलोंके स्थान भगवान् श्रीहरि विराजते हैं उन्हें कभी किसी कार्यमें कोई अमङ्गल प्राप्त नहीं होता ।'

‘श्रीजनार्दन भगवान्का सदा समाहित होकर चिन्तन करना चाहिये; यही इस (जीव) की परम रक्षा है। भला जो भगवान्के आश्रित है उसे कौन कष्ट पहुँचा सकता है?'

‘हजार बार गङ्गास्नान करनेसे और करोड़ बार पुष्करक्षेत्रमें नहानेसे जो पाप नष्ट होते हैं वे श्रीहरिका स्मरण करनेसे ही नष्ट हो जाते हैं ।'

‘जो पुरुष अविनाशी नारायण-देवका एक मुहुर्त्त भी चिन्तन करता है वह भी सिद्धि प्राप्त कर लेता है; फिर जो भगवत्परायण है उसकी तो बात ही क्या है?'

‘जितने भी तप और कर्मरूप प्रायश्चित्त हैं उन सबमें श्रीकृष्णका स्मरण करना सर्वश्रेष्ठ है ।'

‘कलिकल्मषमत्युग्रं
नरकार्तिप्रदं नृणाम् ।
प्रयाति विलयं सद्य-
स्सकृच्चत्रापि संस्पृते ॥’
(विष्णु० ६।८।२१)

‘सकृस्मृतोऽपि गोविन्दो
नृणां जन्मशतैः कृतम् ।
पापराशिं दहत्याशु
तलाशिभिवानलः ॥’

‘यथाग्निरुद्धतशिखः
कक्षं दहति सानिलः ।
तथा चितस्थितो विष्णु-
योगिनां सर्वकिन्त्रिणम् ॥’
(विष्णु० ६।७।७४)

‘एकस्मिन्नायतिक्रान्ते
मुहूर्ते ध्यानवर्जिते ।
दस्युभिर्मुषितेनेव
युक्तमाक्रन्दितुं शृणु ॥’

‘जनार्दनं भूतपतिं जगद्गुरुं
स्मरन्मनुष्यः मतनं महामुने ।
दुःखानि सर्वाण्यपहन्ति साधय-
त्यशेषकार्याणि च यान्यभीप्सते ॥’

‘मनुष्योंको नरककी यातनाएँ
प्राप्त करानेवाले कलियुगके अति उग्र
दोष जिनका एक बार स्मरण करनेसे
भी तुरन्त लीन हो जाते हैं ।’

‘श्रीगोविन्द एक बार स्मरण किये
जानेपर भी मनुष्योंके सैकड़ों जन्मोंमें
किये हुए पाप-पुञ्जको इस प्रकार
तुरन्त ही भस्म कर देते हैं जैसे अग्नि
रुईके ढेरको जला डालता है ।’

‘जिस प्रकार ऊँची-ऊँची लपटों-
वाला अग्नि वायुके साथ मिलकर
सूखी घासके ढेरको जला डालता है
उसी प्रकार चित्तमें स्थित विष्णु-
भगवान् योगियोंके समस्त दोषोंको
नष्ट कर देते हैं ।’

‘बिना ध्यानके एक मुहूर्त निकल
जानेपर भी लुटेरोंसे लूटे जाते हुए
व्यक्तिके समान अत्यन्त रुदन करना
चाहिये ।’

‘हे महामुने ! समस्त प्राणियोंके
प्रभु जगद्गुरु जनार्दनका निरन्तर
स्मरण करनेसे मनुष्य समस्त दुःखों-
को दूर कर देता है और जिन-जिनकी
इच्छा करता है उन सभी कार्योंको
सिद्ध कर लेता है ।’

‘एवमेकाप्रचित्तः सन्
संस्मरन्मधुमूदनम् ।
जन्ममृत्युजराप्राहं
संसारान्धि तरिष्यति ॥’

‘कलावत्रापि दोषादर्थे
विषयासक्तमानसः ।
कृत्रापि सकलं पापं
गोविन्दं संस्मरञ्छुचिः ॥’
‘वासुदेवे मनो यस्य
जपहोमार्चनादिपृ ।
तस्यान्तरायो मैत्रेय
देवेन्द्रत्वादिकं फलम् ॥’
(विष्णु० २।६।४३)

‘लोकत्रयाधिपतिमप्रतिमप्रभाव-

मीपन् प्रणम्य शिरसा प्रभविष्णुमीशम् ।

जन्मान्तरप्रलयकल्पसहस्रजात-

माशु प्रणाशमुपयाति नरस्य पापम् ॥’

‘एकोऽपि कृष्णस्य कृतः प्रणामो

दशाश्वमेधावभृशेन तुल्यः ।

दशाश्वमेधी पुनरेति जन्म

कृष्णप्रणामी न पुनर्भवाय ॥’

(महा० शान्ति० ४०।९१)

‘इस प्रकार एकाप्रचित्त होकर
श्रीमधुसूदनका स्मरण करते रहनेसे
मनुष्य जन्म, मृत्यु और जरारूप
प्राहोंसे पूर्ण संसारसागरको पार कर
लेगा ।’

‘इस दोषपूर्ण कलियुगमें भी
विषयासक्त मनुष्य समस्त पापोंको
करके भी धीगोविन्दका चिन्तन
करनेसे पवित्र हो जाता है ।’

‘हे मैत्रेय ! जप, होम तथा
अर्चनादिमें जिसका चित्त भगवान्
वासुदेवमें लगा हुआ है उसके लिये
इन्द्रत्वादि फल विघ्नरूप ही हैं ।’

‘तीनों लोकोंके स्वामी, अनुपम
प्रभावशाली तथा अनेक रूपसे प्रकट
होनेवाले भगवान्को शिर झुकाकर
थोड़ा-सा प्रणाम करनेसे मनुष्यके
द्वारों महाकल्पोंमें, जन्म-जन्मान्तरों-
में किये हुए सम्पूर्ण पाप तुरन्त नष्ट
हो जाते हैं ।’

‘श्रीकृष्णचन्द्रको किया हुआ एक
प्रणाम भी दश अश्वमेध-यज्ञोंके
[यज्ञान्त] स्नानके समान [पवित्र
करनेवाला] है। उनमें भी दश अश्वमेध
करनेवालेका तो पुनर्जन्म होता है,
किन्तु कृष्णको प्रणाम करनेवालेका
नहीं होता ।’

‘अतसीपुष्पसङ्काशं
पीतवाससमच्युतम् ।
ये नमस्यन्ति गोविन्दं
न तेषां विद्यते भयम् ॥’
(महा० शांति० ४७।९०)

‘शाश्वेनापि नमस्कारः
प्रयुक्तश्चक्रपाणये ।

संसारस्थूलबन्धाना-
मुद्वेजनकरो हि सः ॥’

इत्यादिश्रुतिस्मृतीतिहासपुराण-

वचनेभ्यः ।

मङ्गलानां च मङ्गलं मङ्गलं सुखं
तत्साधनं तज्ज्ञापकं च, तेषामपि
परमानन्दलक्षणं परं मङ्गलमिति
मङ्गलानां च मङ्गलम् ।

दैवतं देवतानां च देवानां देवः,
द्योतनादिभिः समुत्कर्षेण वर्तमान-
त्वात् ।

भूतानां यः अव्ययः व्ययरहितः
पिता जनको यो देवः, स एकं
दैवतं लोक इति वाक्यार्थः ।

‘एको देवः सर्वभूतेषु गूढः
सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा ।

‘जिनका वर्ण अलसीके फूलके
समान है उन पीताम्बरधारी श्री-
अच्युत भगवान् गोविन्दको जो
प्रणाम करेंगे उन्हें किसी प्रकारका
भय नहीं है ।’

‘भगवान् चक्रपाणिको जो शठता
(दम्भ) से भी किया हुआ नमस्कार है
वह भी निस्सन्देह संसारके स्थूल
बन्धनोंको काटनेवाला होता है ।’
इत्यादि श्रुति, स्मृति, इतिहास और
पुराणोंके वचनोंसे [यही बात सिद्ध
होती है कि वह देव पवित्रोमे पवित्र है] ।

मङ्गलोंका मङ्गल—मङ्गल सुखको
कहते हैं; जो उसके साधन और ज्ञापक
है उनका भी परमानन्दरूप परम मङ्गल
होनेसे वह मङ्गलोंका मङ्गल है ।

‘दैवतं देवतानाम्’ अर्थात् देवोंका
देव है क्योंकि वह प्रकाशन आदिमें
सबसे बढ़कर है ।

तथा भूत—प्राणियोंका जो अव्यय-
नाशरहित पिता अर्थात् उत्पन्न करने-
वाला है । ऐसा जो देव है लोकमें
वही एकमात्र देव है । यह इस
वाक्यका अर्थ है ।

‘एक देव है जो सब प्राणियोंमें
छिपा हुआ है, सर्वत्र व्याप्त है, सब

कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः

साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च ॥'

(६।११)

'यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं

यो वै वेदाश्च प्रहिणोति तस्मै ।

त२६ देवमात्मबुद्धिप्रकाशं

मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये ॥'

(६।१०)

इति श्वेताश्वतराणां मन्त्रोपनिषदि ।

जीवोंका अन्तरात्मा है, कर्मोंका अध्यक्ष (कर्म-फलका विभाग करने-वाला) है, सब भूतोंका अधिष्ठान है तथा सबका साक्षी, सबकी चेतना देनेवाला, एकमात्र और निर्गुण है।

'जो सबसे पहले ब्रह्माकी रचना है और फिर उसे वेद प्रदान करता है, आत्मा और बुद्धिके प्रकाशस्वरूप उस देवकी मैं मुमुक्षु शरण लेता हूँ।' ऐसा श्वेताश्वतर-शाखाके मन्त्रोपनिषद्-में कहा है ।

'मेयं देवतैक्षत' (६।३।२)

'एकमेवाद्वितीयम्' (६।२।१) इति

छान्दोग्ये ।

छान्दोग्योपनिषद्में कहा है—

'इस पूर्वोंके देवताने ईक्षण किया ।'

'वह एक ही अद्वितीय था ।'

ननु कथम् एको देवः जीव-
परयोर्भेदात् ?

पृ०—जीवात्मा और परमात्मामे तो भेद है, फिर एक ही देव कैसे हो सकता है ।

न; 'तत्पृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्'
(तै० उ० २।६) 'म एष इह प्रविष्ट
आनखाग्नेभ्यः' (वृ० उ० १।४।७)
इत्यादिश्रुतिभ्योऽविकृतस्य परस्य
बुद्धितद्वृत्तिसाक्षित्वेन प्रवेश-
श्रवणादभेदः ।

उ०—ऐसा मत कहा; क्योंकि 'उसे रचकर उसीमें प्रविष्ट हो गया।' 'वह इस [शरीर] में नखसे लेकर [शिखा-पर्यन्त] अनुप्रविष्ट है' इत्यादि श्रुतियोंसे अविकारी परमात्माका ही बुद्धि तथा उसकी वृत्तियोंके साक्षीरूपसे प्रवेश कहे जानेके कारण उनमें अभेद है ।

प्रविष्टानामितरेतरभेदात् परात्मै-

यदि कहा कि प्रविष्ट हुआका तो परस्पर भेद होता है, फिर जीव और

०६७९

कत्वं कथमिति चेत्, न; 'एको देवः
बहुधा सन्निविष्टः' (तै० आ० ३।१४)
'एकः सन् बहुधा विचारः' (तै०
आ० ३।११) 'वमेकांऽसि बहून-
नुप्रविष्टः' (तै० आ० ३।१४)
इत्येकस्यैव बहुधा प्रवेशश्रवणात्
प्रविष्टानां च न भेदः ।

'हिरण्यगर्भः' (ऋ० वे० १० ।
१२१।१) इत्यष्टौ मन्त्राः ।
कस्मै देवाय इत्यत्र एकारलोपेनैक-
दैवतप्रतिपादकस्तैत्तिरीयके ।

'अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो
रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव ।
एकमनया सर्वभूतान्तरात्मा
रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिध ॥
'वायुर्यथैको भुवनं प्रविष्टो
रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव ।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा
रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिध ॥

परमात्माकी एकता कैसे हो सकती है,
तो ऐसा कहना ठीक नहीं, क्योंकि
'एक ही देव अनेक प्रकारसे स्थित है'
'एक होनेपर भी अनेक प्रकारसे
विचार किया जाता है' 'तुम एक
ही अनेकोंमें अनुप्रविष्ट हो' इत्यादि
श्रुतियोंसे एकका ही अनेक प्रकार
प्रवेश कहा जाता है । इसलिये प्रविष्ट
हुआमें भेद नहीं है ।

इसी विषयमें 'हिरण्यगर्भः' आदि
आठ मन्त्र हैं । 'कस्मै देवाय' इस
तैत्तिरीयक श्रुतिमें भी एकारका लोप
हुआ है; * अतः यह मन्त्र भी एक ही
देवका प्रतिपादक है ।

कठोपनिषद्में कहा है—'जिस
प्रकार संसारमें व्याप्त हुआ एक ही
अग्नि पृथक्-पृथक् आकारोंके संयोग-
से भिन्न-भिन्न रूपवाला होता है उसी
प्रकार समस्त प्राणियोंका एक ही
अन्तरात्मा भिन्न-भिन्न रूपोंके अनुरूप
और उनके बाहर भी स्थित है ।
जैसे एक ही विश्वव्यापी वायु भिन्न-
भिन्न रूपोंके अनुसार तद्रूप हो गया
है उसी प्रकार समस्त प्राणियोंका
एक ही अन्तरात्मा भिन्न-भिन्न रूपोंके
संयोगसे उनके अनुरूप है और उनसे

‘सूर्यो यथा सर्वलोकस्य चक्षु-

र्न लिप्यते चाक्षुषैर्वाघदोषैः ।

एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा

न लिप्यते लोकदुःखेन बाधः ॥

‘एको वशी सर्वभूतान्तरात्मा

एकं रूपं बहुधा यः करोति ।

तन्मात्रस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरा-

स्तेषां सुखं शाश्वतं नेतरंगाम् ॥

‘नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनाना-

मेको बहूनां यो विदधाति कामान् ।

तन्मात्रस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरा-

स्तेषां शान्तिः शाश्वती नेतरंगाम् ॥’

इति काठके (२ । ५ । ९-१३)

‘ब्रह्म वा इदमग्र आसीदेकमेव तदेकं

सन्न व्यभवत् (१ । ४ । ११)

‘नान्यदतोऽस्ति द्रष्टा’ (३ । ७ । २३)

इत्यादि बृहदारण्यके ।

‘अनेजदेकं मनसो जर्वायः’ (ई०

उ० ४) ‘तत्र को मोहः कः शोक

एकत्वमनुपश्यतः’ (ई० उ० ७) इति

ईशावास्ये ।

बाहर भी सर्वत्र व्याप्त है । जिस

प्रकार सम्पूर्ण जगत्का नेत्र सूर्य

दर्शनजन्य बाह्य दोषोंसे लिप्त नहीं

होता उसी प्रकार समस्त प्राणियोंका

एक अन्तरात्मा परमेश्वर उन सबके

दुःखोंसे लिप्त नहीं होता, क्योंकि

वास्तवमें वह शरीरसे भिन्न है । समस्त

भूतोंका एक ही अन्तरात्मा है, जो

सबको वशमें करनेवाला है और अपने

एक ही रूपको नानाप्रकारका कर

लेता है, अपने अन्तःकरणमें स्थित

उस देवको जो धीर पुरुष देखते हैं

उन्हींको नित्य-सुख प्राप्त होता है,

औरोंको नहीं । जो नित्योंका नित्य

और चेतनोंका चेतन है तथा जो अकेला

ही अनेकोंकी कामनाओंको पूर्ण करता

है उसे जो धीर पुरुष अपने अन्तः-

करणमें स्थित देखते हैं उन्हें ही नित्य-

शान्ति प्राप्त होती है, औरोंको नहीं ।’

बृहदारण्यकापनिषद्में कहा है-

‘प्रथम एकमात्र यह ब्रह्म ही था,

अकेला होनेसे उसे अपने ऐश्वर्यसे

तृप्ति न हुई, ‘इसके अतिरिक्त और

कोई द्रष्टा नहीं है’ इत्यादि ।

ईशावास्यमें कहा है- ‘वह एक है,

चलता नहीं है [तथापि] मनसे भी

अधिक वेगवाला है ।’ ‘एकत्व देखने-

वालेको फिर क्या शोक और क्या मोह ?’

‘आत्मा वा इदमेक एवाप्र आसीन्ना-
न्यत्किञ्चन मिषत् ।’ (ऐ० उ० १।१)
‘सर्वेषां भूतानामन्तरः पुरुषः स म
आत्मेति विद्यात् ।’ (ऐ० आ० ३।
४।१०) ‘एकं सद्ब्रिषा बहुधा
वदन्ति ।’ (ऋ० सं० १।२२।
१६४।४६) ‘एकं सन्नं बहुधा
कल्पयन्ति ।’ ‘द्यावाभूमी जनयन्देव
एकः ।’ ‘एको दाधार भुवनानि
विश्वा’ ‘एक एवाग्निर्वह्मना समिद्ध’
इति ऋग्वेदे । ‘मदेव सोम्येदमग्र
आसीदेकमेवाद्वितीयम्’ इति छान्दोग्ये
(६।२।१)

‘सर्वभूतस्थितं यो मा
भजत्येकत्वमास्थित’ ।
सर्वथा वर्तमानोऽपि
स योगी मयि वर्तते ॥’
(६।३१)

‘विद्याविनयसम्पन्ने
ब्राह्मणे गवि हस्तिनि ।
शुनि चैव श्वपाके च
पण्डिता समदर्शिनः ॥’
(५।१८)

‘अहमात्मा गुडाकेश
सर्वभूताशयस्थितः ।
अहमादिश्च मय्यं च
भूतानामन्त एव च ॥’
(१०।२०)

[श्रुति कहती है—] ‘पहले यह एक
आत्मा ही था और कुछ भी न था ।’
‘समस्त प्राणियोंके भीतर जो पुरुष
है वह मेरा आत्मा है—ऐसा जाने ।’
ऋग्वेदका भी कथन है—‘उस एकको
ही ब्राह्मण लोग नानाप्रकारसे कहते
हैं ।’ ‘उस एककी ही नानाप्रकारसे
कल्पना करते हैं ।’ ‘वह एक ही देव
पृथिवी और स्वर्गको रचता हुआ’ ‘वह
अकेला ही सम्पूर्ण लोकोंको धारण
किये हुए है ।’ ‘अनेक प्रकारसे बढ़ाया
हुआ अग्नि एक ही है ।’ छान्दोग्यमें भी
कहा है—‘हे सोम्य ! पहले एकमात्र
यह अद्वितीय सत् ही था ।’

श्रीगोतोपनिषद्में कहा है—‘जो
पुरुष एकत्वमें स्थित होकर सम्पूर्ण
भूतोंमें स्थित मुझ परमात्माको
भजता है वह योगी सब प्रकारसे
वर्तता हुआ भी मुझहीमें वर्तता है ।’
‘पण्डितजन विद्याविनयसम्पन्न
ब्राह्मणमें, गौमें, हाथीमें, कुत्तेमें और
चाण्डालमें भी समान दृष्टि रखनेवाले
होते हैं ।’ ‘हे अर्जुन ! मैं सम्पूर्ण भूतोंके
अन्तःकरणोंमें स्थित उनका आत्मा
हूँ तथा मैं ही समस्त प्राणियोंका
आदि, मध्य और अन्त भी हूँ ।’

‘यदा भूतपृथग्भाव-
मेकस्थमनुपश्यति ।
तत एव च विस्तारं
ब्रह्म सम्पद्यते तदा ॥’
(१३।३०)

‘यदा प्रकाशयत्येकः
कृत्स्नं लोकमिमं रविः ।
क्षेत्रं क्षेत्री तथा कृत्स्नं
प्रकाशयति भारत ॥’
(१३।३३)

‘सर्वधर्मान्परित्यज्य
मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो
मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥’
(१८।६६)

इति गीतोपनिषत्सु ।

‘हरिकं. सदा ध्येयो
भवद्भिः सत्त्वसंस्थिते ।
ओमित्येवं सदा विप्राः
पठन्त्यथान केशवम् ॥’
(हरि० ३।८९।९)

‘आश्चर्यं खलु देवाना-
मेकस्त्वं पुरुषोत्तम ।
धन्यश्चासि महाबाहो
लोके नान्योऽस्ति कश्चन ॥’

इति हरिवंशे ।

भवति मनोर्माहात्म्यख्यापिनी
श्रुतिः ‘यद्वै किञ्च मनुर्वदन्तज्ञेयजम्’

‘जिस समय भूतोंके पृथक्-पृथक्
भावको एक (परमात्माके संकल्प)
में ही स्थित देखता है और उसीसे
सब भूतोंका विस्तार हुआ जानता
है उस समय ब्रह्मको प्राप्त हो जाता
है ।’ ‘हे अर्जुन ! जिस प्रकार एक
ही सूर्य इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्डको
प्रकाशित करता है, उसी प्रकार एक
ही आत्मा सम्पूर्ण क्षेत्रको प्रकाशित
करता है ।’ ‘इसलिये, सर्व धर्मोंको
त्यागकर केवल एक मेरी ही
शरणको प्राप्त हो, मैं तुझको सम्पूर्ण
पापोंसे मुक्त कर दूँगा, तू शोक
मत कर ।’

‘हे विप्रगण ! आपलोगोंको
सत्त्वगुणमें स्थित होकर सर्वदा एक-
मात्र श्रीहरिका ही ध्यान करना
चाहिये; आप सदा ओंकारका जप
और श्रीकेशवका ध्यान करें ।’
‘हे पुरुषोत्तम ! निश्चय ही सम्पूर्ण
देवताओंमें एक आप ही आश्चर्यरूप
और धन्य हैं। हे महाबाहो ! संसारमें
[आपके समान] और कोई भी नहीं
है ।’ इस प्रकार हरिवंशमें कहा है ।

‘जो कुछ मनुने कहा है वह ओपधि-
रूप है’ यह श्रुति मनुका माहात्म्य

(तै० सं० २।२।१०।२) इति ।

मनुना चोक्तम्—

‘सर्वभूतस्य मात्मानं

सर्वभूतानि चात्मनि ।

सम्पश्यन्नात्मयाजी वै

स्वाराज्यमधिगच्छति ॥’

इति (मनु० १२।११) ।

‘सृष्टिस्थित्यन्तकर्णी

ब्रह्मविष्णुशिवात्मिकाम् ।

स संज्ञा याति भगवा-

नेक एव जनार्दनः ॥’

(विष्णु० १।२।६६)

‘तस्मान् विज्ञानमृतेऽस्ति किञ्चित्

क्वचित् कदाचिद्द्विज वस्तु जातम् ।

विज्ञानमेकं निजकर्मभेदाद्-

विभिन्नचित्तैर्बहुधाभ्युपेतम् ॥

‘ज्ञानं विशुद्धं विमलं विशोक-

मशेषलोभादिनिरस्तसङ्गम् ।

एकः सदैकः परमः परेशः

स वासुदेवो न यतोऽस्ति किञ्चित् ॥’

(विष्णु० २।१२।४३-४४)

‘यदा समस्तदेहेषु

पुमानेका व्यवस्थितः ।

तदा हि को भवान् सोऽह-

मित्येतद्विफलं वचः ॥’

(विष्णु० २।१३।९१)

वतलानेवाली है । और मनुजी कहते

हैं—‘समस्त भूतोंमें स्थित अपने आत्मा-

को और समस्त भूतोंको अपने आत्मा-

में देखता हुआ आत्मयज्ञ करनेवाला

पुरुष स्वाराज्य लाभ करता है ।’

‘वह एक ही जनार्दन भगवान्

संसारकी रचना, स्थिति और संहार

करनेवाली ब्रह्मा, विष्णु और शिवरूप

तीन संज्ञाओंको प्राप्त होता है ।’

‘इसलिये हे द्विज ! विज्ञानके

सिवा और कोई वस्तु कभी कुछ

भी नहीं है । यह एक विज्ञान हो

अपने-अपने कर्मोंके भेदसे विभिन्न

चित्तवालोंको भिन्न-भिन्न प्रकारका

प्रतीत हो रहा है । यह ज्ञान शुद्ध,

निर्मल, शोकहीन और लोभादि

सम्पूर्ण सङ्गोंसे रहित है । वही एक-

मात्र सत् श्रेष्ठ परमेश्वर है तथा

वही वासुदेव है—उससे पृथक्

और कुछ नहीं है ।’

‘जब कि समस्त देहमें एक ही

पुरुष व्याप्त है तब ‘आप कौन हैं ?

मैं अमुक हूँ ?’ यह कहना व्यर्थ है ।’

‘सितनीलादिभेदेन

यथैकं दृश्यते नमः ।

भ्रान्तदृष्टिभिरात्मापि

तथैकः सन्पृथक् पृथक् ॥

‘एकः समस्तं यदिहास्ति किञ्चि-

त्तदच्युतो नास्ति परं ततोऽन्यत् ।

सोऽहं स च त्वं स च सर्वमेत-

दात्मस्वरूपं त्यज भेदमोहम् ॥

‘इतीरितस्तेन स राजवर्ष-

स्तत्याज भेदं परमार्थदृष्टिः ।’

(विष्णु० २ । १६ । २२-२४)

यमेनोक्तम्—

‘सकृदमिदमहं च वासुदेवः

परमपुमान् परमेश्वरः स एकः ।

इति मतिरचला भवत्यनन्ते

हृदयगते ब्रज तान् विहाय दूरात् ॥’

(विष्णु० ३ । ७ । ३२)

‘यदाह वसुधा सर्वं

सत्यमेव दिवौकसः ।

अहं भवो भवन्तश्च

सर्वं नारायणात्मकम् ॥

‘विभूतयस्तु यास्तस्य

तासामेव परस्परम् ।

आधिक्यं न्यूनता बाध्य-

बाधकत्वेन वर्तते ॥’

(विष्णु० ५ । १ । ३०-३१)

‘जिस प्रकार [दृष्टि-दोषसे] एक

ही आकाश श्वेत, नील आदि अनेकों

भेदवाला दीख पड़ता है उसी प्रकार

भ्रान्त-दृष्टि पुरुषोंको एक ही आत्मा

अलग-अलग दिखायी देता है । यहाँ

जो कुछ है वह सब एक अच्युत

भगवान् ही है; उससे अतिरिक्त और

कुछ भी नहीं है । वही मैं हूँ, वही तू

है और वह आत्मस्वरूप ही यह सब

कुछ है; भेद-दृष्टिरूप मोहको छोड़ ।

उन (जडभरत) के इस प्रकार कहने-

पर उस परमार्थ-दृष्टिवाले नृपश्रेष्ठ

(रहूगण) ने भेद-भावको त्याग दिया ।’

यमराजने [अपने दूतोंसे] कहा

था—‘यह सम्पूर्ण संसार और मैं एक-

मात्र परमपुरुष परमेश्वर वासुदेव ही

हूँ—जिनकी हृदयस्थ अनन्त भगवान् में

ऐसी दृढ़ भावना हो गयी है उन्हें तुम

दूरसे ही छोड़कर निकल जाया करो ।’

‘हे देवगण ! पृथ्वीने जो कुछ

कहा है वह ठीक ही है; मैं, महादेवजी

और आप सब भी नारायणस्वरूप

ही हैं । जो उसकी विभूतियाँ हैं

उन्हींकी न्यूनता तथा अधिकता

परस्पर बाध्य-बाधकरूपसे रहती है ।’

‘भवानहं च विश्वात्म-

नेक एव हि कारणम् ।

जगतोऽस्य जगत्पथे

भेदेनावा व्यवस्थिता ॥’

(विष्णु० ५।९।३२)

‘धिया यदभयं दनं

तद्वत्तमखिलं मया ।

मनां विभिन्नात्मानं

द्रष्टुं नार्हसि शङ्कर ॥

‘योऽहं स त्वं जगच्चेदं

सदेवासुरमानुषम् ।

‘अविद्यामोहितात्मानः

पुरुषा भिन्नदर्शिनः ।’

(विष्णु० ५।३३।४०-४९)

इति श्रीविष्णुपुराणे ।

‘विष्णोरन्यं तु पश्यन्ति

ये मां ब्रह्माणमेव वा ।

कुतर्कमतयो मूढाः

पश्यन्ते नगकेष्वधः ॥

‘ये च मूढा दुरात्मानो

भिन्नं पश्यन्ति मां हरं ।

ब्रह्माणं च ततस्तस्माद्

ब्रह्महत्यासमं व्यवहृत् ॥’

इति भविष्योत्तरपुराणे महेश्वर-
वचनम् ।

तथा च हरिवंशे कैलाशयात्रायां
महेश्वरवचनम्—

[भगवान् कृष्ण बलरामसे कहते हैं] ‘हे विश्वात्मन ! आप और मैं दोनों इस संसारके एक ही कारण हैं। इस संसारके लिये ही हम दोनों भिन्नरूपसे स्थित हैं ।’

[श्रीकृष्णचन्द्र महादेवजीसे कहते हैं—] जो अभय आपने दिया है वह सब मैंने भी दे ही दिया; हे शंकर ! आप अपनेको मुझसे पृथक् न देखें। जो मैं हूँ वही आप और देवता, असुर तथा मनुष्योंके सहित यह सारा संसार है। जिन पुरुषोंका चित्त अविद्यासे मोहित हो रहा है वे ही भेदभाव देखनेवाले होते हैं ।’
—इस प्रकार विष्णुपुराणमें कहा है ।

भविष्योत्तरपुराणमें श्रीमहादेवजीका वचन है—‘जो लोग मुझे अथवा ब्रह्माजीको विष्णुसे अलग देखते हैं वे कुतर्कबुद्धि मूढजन नीचे नरकमें गिरकर दुःख भोगते हैं। तथा जो दुष्टबुद्धि मूढलोग मुझे और ब्रह्माजीको श्रीविष्णुसे पृथक् देखते हैं उन्हें उससे ब्रह्महत्याके समान पाप लगता है ।’

इसी प्रकार हरिवंशमें कैलास-यात्राके प्रसंगमें महेश्वरका कथन है—

‘आदिस्त्वं सर्वभावानां
मध्यमन्तस्तथा भवान् ।
त्वत्तः सर्वमभूद्विस्वं
त्वयि सर्वं प्रलीयते ॥’
(हरि० ३ । ८८ । ५१)

‘अहं त्वं सर्वगो देव
त्वमेवाहं जनार्दन ।
आवयोरन्तरं नास्ति
शब्दरथैर्जगत्त्रये ॥
‘नामानि तव गोविन्द
यानि लोके महान्ति च ।
तान्येव मम नामानि
नात्र कार्या विचारणा ॥

‘त्वदृपासा जगन्नाथ
सैवास्तु मम गोपते ।
यश्च त्वा द्रष्टुं भो देव
स मा द्रष्टुं न संशयः ॥

‘त्वद्विस्तारो यतो देव
त्वं भूतपतिस्ततः ।
न तदस्ति विभो देव
यत्ने विरहितं क्वचित् ॥

‘यदासीद्वर्तते यच्च
यच्च भावि जगत्पते ।
सर्वं त्वमेव देवेश

विना किञ्चित्त्वया न हि ॥’

(हरि० ३ । ८८ । ६०-६४)

३

‘समस्त भावोंके आवि, मध्य
ओर अन्त आप ही हैं । यह सम्पूर्ण
विश्व आपहीसे हुआ है और आपही-
में लीन होता है ।’

‘हे जनार्दन ! हे सर्वव्यापक देव !
मैं ही तू है और तू ही मैं हूँ । सम्पूर्ण
त्रिलोकीमें हम दोनोंका शब्दसे या
अर्थसे किसी प्रकार भी भेद नहीं है ।
हे गोविन्द ! संसारमें जो-जो आपके
महान् नाम हैं वे ही मेरे भी हैं—इसमें
कोई सन्देह नहीं है । हे गोपते ! हे जग-
न्नाथ ! जो आपकी उपासना है वही मेरी
हो । हे देव ! जो आपसे द्वेष करता है,
इसमें सन्देह नहीं, वह मुझसे भी द्वेष
करता है । हे देव ! क्योंकि मैं भूत-
पति भी आपहीका विस्तार हूँ
इसलिये हे सर्वव्यापक देव !
ऐसी कहीं कोई वस्तु नहीं है
जो आपसे रहित हो । जो कुछ
था, जो कुछ है और जो कुछ होगा
हे जगत्पते ! हे देवेश्वर ! वह सब
आप ही हैं, आपसे अतिरिक्त और
कुछ नहीं है ।’

इत्यादिवाक्यान्त्येकत्वप्रतिपाद-
कानि ।

अपि च—‘आत्मेति तपगच्छन्ति
ग्राहयन्ति च’ (ब्र० सू० ४।१।३)
आत्मेत्येवं शास्त्रोक्तलक्षणः परमा-
त्मा प्रतिपत्तव्यः । तथा हि पर-
मात्मप्रक्रियायां जाबाला आत्मत्वे-
नैवैनमभ्युपगच्छन्ति—‘त्वं वा अह-
मस्मि भगवो देवते अहं वै त्वमस्मि’
इति । तथान्येऽपि—‘यदेवेह तदमुत्र
यदमुत्र तदन्विह’ (क० उ० ४।१०)
‘स यश्चायं पुरुषे । यश्चासावादित्ये ।
स एकः’ (तै० उ० २।८।१२)
‘तदात्मानमेवावेदहं ब्रह्मास्मीति’ (बृ०
उ० १।४।१०) ‘तदेतद्ब्रह्मापूर्वमन-
परमन्तरमबाह्यमयमात्मा ब्रह्म’ (बृ०
उ० २।५।१९) ‘स वा एष
महानज आत्माजरोऽमरोऽमृतोऽमयो
ब्रह्म’ (बृ० उ० ४।४।२५) इत्येव-
मादय आत्मत्वोपगमा द्रष्टव्याः ।
ग्राहयन्ति च बोधयन्ति चात्मत्वे-
नेश्वरं वेदान्तवाक्यानि—‘एष त
आत्मान्तर्गम्यमृतः’ (बृ० उ० ३।७)
‘यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनो मतम् ।

ये सत्र वाक्य एकत्वका प्रतिपाद-
करनेवाले हैं ।

और भी—‘[परमात्माको] आत्म-
स्वरूपसे ही प्राप्त होते हैं और [आत्म-
स्वरूपसे ही] ग्रहण कराते हैं ।’
इस सूत्रमें ‘आत्मा’ ऐसा कहकर
शास्त्रोक्त लक्षणविशिष्ट परमात्माका
ही प्रतिपादन करना अभीष्ट है ।
तथा जाबाल शास्त्रवाले भी परमात्म-
प्रक्रियामें ‘हे भगवन् ! हे देव ! तू ही
मैं हूँ और मैं ही तू है’ ऐसा कहकर
उसको आत्मस्वरूपसे स्वीकार करते
हैं । तथा ‘जो यहाँ है वही अन्यत्र
है, जो अन्यत्र है वही यहाँ है’ ‘जो यह
इस पुरुषमें है और जो आदित्यमें है
वह एक ही है’ ‘तब उसने अपनेही-
को जाना कि मैं ब्रह्म हूँ’ ‘वह यह ब्रह्म
अपूर्व, अनन्य, अनन्तर और अबाह्य है;
यह आत्मा ही ब्रह्म है’ ‘वह यह महान्
अजन्मा आत्मा जरा, मरण, मृत्यु
और भयसे रहित ब्रह्म ही है’ इत्यादि
ब्रह्मको आत्मस्वरूपसे स्वीकार कराने-
वाले और भी बहुतसे दृष्टान्त ध्यानमें
रखने योग्य हैं । इनके सिवा ‘यह तैरा
अन्तर्यामी अमर आत्मा है’ ‘जो
मनसे मनन नहीं किया जाता बल्कि

तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपास्ते'
(कै० उ० १।५) 'तत्सत्यं स आत्मा
तत्त्वमसि' (छा० उ० ६।८।१६)
इत्येवमादीनि ।

ननु प्रतीकदर्शनमिदं विष्णु-
प्रतिमान्यायेन भविष्यति ।

तदयुक्तम्, गौणत्वप्रसङ्गात्,
वाक्यवैरूप्याच्च । यत्र हि प्रतीक-
दृष्टिभिप्रेयते सकृदेव तत्र वचनं
भवति । यथा—'मनो ब्रह्म' (छा०
उ० ३।१८।१) 'आदित्यो ब्रह्म'
(छा० उ० ३।१९।१) इति । इह
पुनः 'त्वमहमस्मि अहं वै त्वमसि'
इत्याह । अतः प्रतीकश्रुतिवैरूप्या-
दभेदप्रतिपत्तिः । भेददृष्ट्यपवा-
दाच्च । तथा हि—'अथ योऽन्या
देवतामुपास्ते अन्योऽसावन्योऽहमस्मीति
न स वेद यथा पशुः' (वृ० उ० १।
४।१०) 'मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य
इह नानेव पश्यति' (वृ० उ० ४।४।

जिसके कारण मनका मनन करना
कहा जाता है, तू उसीको ब्रह्म जान,
ये लोग जिसकी उपासना करते हैं वह
ब्रह्म नहीं है' 'वह सत्य है, वही आत्मा
है और वही तू है' इत्यादि अन्य वेदान्त-
वाक्य भी ईश्वरका आत्मभावसे ग्रहण
और बोध कराते हैं ।

पू०—प्रतिमामें विष्णुदृष्टि करनेके
समान यह प्रतीक-दर्शन ही होगा ।

उ०—ऐसा कहना ठीक नहीं; इससे
[परमात्मामें] गौणता आ जायगी
और वाक्यका रूप भी बिगड़ जायगा ।
जहाँ प्रतीक-दृष्टि अभीष्ट होती है वहाँ
केवल एक बार ही कहा जाता है; जैसे—
'मन ब्रह्म है' 'आदित्य ब्रह्म है' इत्यादि।
किन्तु यहाँ 'तू मैं हूँ और मैं ही तू है'
इस प्रकार [परस्पर अभेद करके]
कहा है । अतः प्रतीकश्रुतिसे विरु-
प्ता होनेके कारण अभेदकी ही प्राप्ति
होती है । इसके सिवा भेददृष्टिकी
निन्दा करनेसे भी यही सिद्ध होता
है, जैसा कि—'जो अन्य देवताकी
यह समझकर उपासना करता है कि
यह अन्य है और मैं अन्य हूँ, वह
नहीं जानता, अतः वह [देवताओंके]
पशुके समान है' 'जो इस लोकमें
अनेकवत् देखता है वह मृत्युसे मृत्यु-

१९) 'यपोदकं दुर्गे वृष्टं पर्वतेषु
विधावति । एवं धर्मान्पृथक्पश्यंस्ताने-
वानुविधावति' (क० उ० ४ । १४)

'द्विर्तायाद्वै भयं भवति' (बृ० उ० १ ।

४ । २) 'यदा त्वेवैष एतस्मिन्नुदरमन्तरं
कुरुते । अथ तस्य भयं भवति । तत्त्वेन भयं

विदुषो मन्वानस्य' (तै० उ० २ । ७)

'सर्वं तं परादाद्योऽन्यत्रात्मनः सर्वं वेद'

(बृ० उ० २ । ४ । ६) इत्येवमाद्या

भूयसी श्रुतिर्भेददृष्टिमपवदति ।

तथा 'आत्मैवेदं सर्वम्' (छा० उ०

७ । २५ । २) 'आत्मनि विज्ञाते सर्व-

मिदं विज्ञातं भवति' 'इदं सर्वं यदयमा-

त्मा' (बृ० उ० २ । ४ । ६) 'ब्रह्मैवेदं

विश्वम्' (सु० उ० २ । २ । ११)

इति श्रुतिः ।

तथा स्मृतिरपि

'यज्ज्ञात्वा न पुनर्मोह-

मेवं याम्यसि पाण्डव ।

येन भूतान्यशेषेण

द्रक्ष्यस्यात्मन्यथो मयि ॥'

(गा० ४ । ३५)

क्षेत्रक्षेत्रज्ञेश्वरैकत्वं सर्वोपनिषत्-

प्रसिद्धं द्रक्ष्यसीत्यर्थः ।

को प्राप्त होता है' जिस प्रकार पर्वत-
शिखरपर बरसा हुआ जल पर्वतोंमें
(पर्वतोंके निम्न भागोंमें) फैल जाता है
उसी प्रकार आत्मा धर्मों (देहधारी
जीवों) को विभिन्न देखकर उन
(उपाधियों)हीका अनुगमन करता है'
'दूसरेसे निश्चय ही भय होता है' जिस
समय यह इस (आत्मा) में थोड़ा-
सा भी अन्तर करता है तभी इसे भय
होता है । ऐसा माननेवाले विद्वान्को
भी वह (भेदज्ञान) भयरूप ही है'
'जो सबको आत्मासे भिन्न देखता
है उसका सब तिरस्कार कर देते हैं'
इत्यादि । इसी प्रकारकी अनेकों श्रुतियाँ
भेददृष्टिकी निन्दा करती हैं ।

तथा 'यह सब आत्मा ही है'

'आत्माको जान लेनेपर यह सब जान

लिया जाता है' 'यह जो कुछ है सब

आत्मा ही है' 'यह सब ब्रह्म ही है'

इत्यादि श्रुतियाँ [अभेदका प्रतिपादन

करती हैं] ।

स्मृति भी कहती है—'हे पाण्डव !

जिसे जानकर फिर तू इस प्रकार मोह-

को प्राप्त नहीं होगा और जिसके द्वारा

तू सम्पूर्ण भूतोंको अपने आत्मामें

और मुझमें भी देखेगा' अर्थात् क्षेत्र

और क्षेत्रज्ञ ईश्वरकी सम्पूर्ण उपनिषदोंमें

प्रसिद्ध एकता देखेगा ।

‘सर्वभूतेषु येनैकं

भावमन्ययमीक्षते ।

अविभक्तं विभक्तेषु

तज्ज्ञानं विद्धि सात्त्विकम् ॥’

(गीता १८ । २०)

इति अद्वैतात्मज्ञानं सम्यग्दर्शन-
मित्युक्तं भगवतापि । तस्मादात्म-
न्यवेश्वरे मनो दधीत ।

‘भूतात्मा चेन्द्रियात्मा च

प्रधानात्मा तथा भवान् ।

आत्मा च परमात्मा च

त्वमेकः पञ्चधा स्थितः ॥’

(विष्णु० ५ । १८ । ५०)

इति च ।

‘अथवा बहुनैतेन

किं ज्ञातेन तवार्जुन ।

विष्टभ्याहमिदं कृत्स्न-

मेकांशेन स्थितो जगत् ॥’

(गीता १० । ३२)

इति च ।

अविद्योपाधिपक्षेऽपि प्रमाणवादः
समास्त-

‘एक एव महानात्मा

सोऽहङ्कारोऽभिधीयते ।

‘जिसके द्वारा सम्पूर्ण भूतोंमें
एक अविनाशी भाव देखता है और
[उस आत्मतत्त्वको] विभिन्न भूतों-
में अभिन्नरूपसे स्थित जानता है उस
ज्ञानको सात्त्विक जानो ।’ इस प्रकार
भगवान् ने भी ‘अद्वैत-आत्मदर्शन ही
सम्यग्दर्शन है’ ऐसा कहा है । अतः
आत्मस्वरूप ईश्वरमें ही मनको स्थिर
करना चाहिये ।

इसके मिथ्या आप भूतात्मा,
इन्द्रियात्मा, प्रधानात्मा ‘आत्मा ओर
परमात्मा हैं; इस प्रकार आप अकेले
ही पाँच प्रकारसे स्थित हैं ।’

तथा ‘अथवा हे अर्जुन ! इन सबको
बहुत जाननेसे तुम्हें क्या प्रयोजन
है ? मैं अपने एक अंशमें ही इस
सम्पूर्ण जगत् में प्रविष्ट होकर स्थित हूँ ।’
इत्यादि [स्मृतियाँ भी यही बतलाती हैं]

अविद्यारूप उपाधिके सम्बन्धमें
भी यह प्रमाणवाद है—‘एक ही
महान् आत्मा है, वही अहंकार कहा
जाता है और उसे ही तत्त्वज्ञानी-

स जीवः सोऽन्तरात्मेति
गीयते तत्त्वचिन्तकैः ॥'

तथा विष्णुपुराणे—

'विभेदजनकेऽज्ञाने
नाशमात्यन्तिकं गते ।
आत्मनो ब्रह्मणो भेद-
मसन्तं कः करिष्यति ॥'
(६।७।९६)

'परात्मनोर्मनुष्येन्द्र
विभागोऽज्ञानकल्पितः ।
क्षये तस्यात्मपरयो-
र्विभागोऽभाग एव हि ॥'

इति ।

विष्णुधर्म—

'ययैकस्मिन्घटाकाशे
रजोधूमादिभिर्युते ।
नान्ये मलिनता यान्ति
दूरस्थाः कुत्रचित्कुचित् ॥
'तथा द्वन्द्वैरनेकैस्तु
जीवे च मलिनं कृते ।
एकस्मिन्नापरे जीवा
मलिनाः सन्ति कुत्रचित् ॥'

इति ।

ब्रह्मयाज्ञवल्क्ये—

'आकाशमेकं हि यथा
घटादिषु पृथग्भवेत् ।
तथात्मैकोऽप्यनेकेषु
जलाधारेष्विवांशुमान् ॥'

लोग जीव या अन्तरात्मा कहकर
वर्णन करते हैं ।'

तथा विष्णुपुराणमें कहा है—
'विभेदजनक अज्ञानके आत्यन्तिक
नाशको प्राप्त हो जानेपर आत्मा और
ब्रह्मका भेद, जो सर्वथा असत्य है,
कौन करेगा ?'

'हे राजन् ! आत्मा और परमात्मा-
का विभाग अज्ञानकल्पित ही है। उस
(अज्ञान)के नष्ट हो जानेपर जीव और
ब्रह्मका विभाग अभागरूप ही है ।'

विष्णुधर्ममें कहा है—'जिस प्रकार
एक घटाकाशके धूलि या धुएँसे
व्याप्त होनेपर उससे दूरवर्ती अन्य
घटाकाश कहीं किसी समय मलिन
नहीं होते, उसी प्रकार अनेकों द्वन्द्वों-
से एक जीवके मलिन हो जानेपर
अन्य जीव कभी मलिन नहीं हो
सकते ।'

ब्रह्मयाज्ञवल्क्यमें कहा है—

'जिस प्रकार एक ही आकाश घट
आदि उपाधियोंमें पृथक्-पृथक्
प्रतीत होता है उसी प्रकार जलके
पात्रोंमें प्रतिबिम्बित सूर्यके समान
एक ही आत्मा अनेक उपाधियोंमें
अनेक-सा जान पड़ता है ।'

‘क्षरात्मानाधीशते देव एकः’ इति ।
 श्वेताश्वतरम्* । छान्दोग्ये—
 ‘स एकधा भवति’ (७।२.६।२) इत्यादि ।
 ‘स तत्र पर्येति’ ‘स वा एष एतेन दैवेन
 चक्षुषा मनसैतान्कामान्पश्यन्मते’
 ‘परोऽविकृत एवात्मा स्वात्मायं जीवः’
 इति श्रुतेः । ‘स एष इह प्रविष्टः’
 इति बृहदारण्यकश्रुतिः । ‘आत्मेत्ये-
 वोपासीत’ ‘तदेतद्ब्रह्मापूर्वम्’ (बृ० उ०
 २।५।१०) ‘नान्योऽतोऽस्मि द्रष्टा
 नान्योऽतोऽस्ति विज्ञाता’ (बृ० उ०
 ३।७।२३) ‘म वा एष महानज
 आत्मा योऽयं विज्ञानमयः’ (बृ० उ०
 ४।४।२२) ‘अथ योऽन्या देवता-
 मुपास्ते’ (बृ० उ० १।४।१०)
 ‘ऐतदात्म्यमिदं सर्वम्’ (छा० उ०
 ६।८।१६) इत्यादि ।

‘निश्चरन्ति यथा लोह-

पिण्डात्मात्सुकुल्लिङ्गकाः ।

श्वेताश्वतरमें कहा है—‘क्षर
 (जडवर्ग) और आत्मा (चेतन) इन
 दोनोंका एक ही देश शासन करता है।’
 छान्दोग्योपनिषद्का कथन है—
 ‘वह एक ही प्रकार है’ इत्यादि ।
 श्रुति कहती है—‘वह वहाँ सब
 ओर व्याप्त है’ ‘वह इन विध्य नेत्रोंसे
 मनहीके द्वारा इन भोगोंको देखता
 हुआ रमण करता है’ ‘अविकारी
 परमात्मा ही यह अपना आत्मारूप
 जीव है’ तथा ‘वही यह इसमें अनु-
 प्रविष्ट है’ ऐसी बृहदारण्यक श्रुति
 भी है । इसके सिवा ‘वह आत्मा है—इस
 प्रकार ही उपासना करे’ ‘वह यह
 ब्रह्म अपूर्व है’ [इस आत्माके सिवा]
 कोई अन्य द्रष्टा या अन्य विज्ञाता
 नहीं है’ ‘यह जो विज्ञानमय है वही
 महान् अज आत्मा है’ ‘तथा जो
 अन्य देवताकी उपासना करता है’
 ‘यह सब इसीका रूप है’ इत्यादि
 और श्रुतियाँ भी हैं ।

योगी याज्ञवल्क्यका वचन है—

‘जिस प्रकार तथायं हुए लोहेसे

* हमें श्वेताश्वतर उपनिषद्में यह श्रुति नहीं मिली; हमों भाष्यकी एक और
 श्रुति मिलती है, जिसका पाठ इस प्रकार है—‘विद्याविद्ये ईशते यस्तु सोऽन्यः’
 (श्वे० उ० ५।१) ।

सकाशादात्मनस्तद्वत्
प्रभवन्ति जगन्ति हि ॥'
इति योगियाज्ञवल्क्ये ।

'अजः शरीरग्रहणात्
स जात इति कीर्त्यते ।'
इति ब्राह्मे ।

'सर्पवद्रज्जुखण्डस्तु
निशायां वेश्ममध्यगः ।
एको हि चन्द्रो द्वौ व्योम्नि
तिमिराहतचक्षुषः ॥

'आभाति परमात्मा च
सर्वोपाधिषु संस्थितः ।
नित्योदितः स्वयंज्योतिः
सर्वगः पुरुषः परः ॥
अहङ्काराविवेकेन
कर्ताहमिति मन्यते ।'

इति ।

'एवमेवायं पुरुषः प्राज्ञेनात्मना
संपरिध्वक्तः' (बृ० उ० ४ । ३ । २१)
'सता सोम्य तदा सम्पन्नो भवति'
(छा० उ० ६ । ८ । १) इति ।

एवं—

'स्वमायया स्वमात्मानं
मोहयन् द्वैतमायया ।
गुणाहतं स्वमात्मानं
लभते च स्वयं हरिः ॥'

चिनगारियाँ निकलती हैं, उसी प्रकार
आत्मासे अनेकों जगत् प्रकट
होते हैं ।'

ब्रह्मपुराणमें कहा है—'वह अजन्मा
ही शरीर ग्रहण करनेके कारण जात
(जन्मा हुआ) कहा जाता है ।'

[इसके सिवा] 'जिस प्रकार
रात्रिके समय घरमें पड़ा हुआ
रस्सीका टुकड़ा सर्पके समान प्रतीत
होता है तथा निमिरोगसे पीड़ित
नेत्रोंवालेको आकाशमें एक ही
चन्द्रमा दो-जैसा जान पड़ता है
उसी प्रकार एक ही नित्योदित स्वयं-
ज्योतिः सर्वगामी परम पुरुष
परमात्मा समस्त उपाधियोंमें स्थित
होकर भास रहा है। वह अहंकाररूप
अविवेकके कारण ही 'मैं कर्ता हूँ'
ऐसा मानता है ।'

तथा 'इसी प्रकार यह पुरुष
प्राज्ञात्माके साथ मिलकर' और
'हे सोम्य ! उस समय वह सत्सेयुक्त
हो जाता है' इत्यादि

एवं 'श्रीहरि अपनी मायासे
अपनेको मोहित कर द्वैतरूप मायाके
कारण अपनेको गुणयुक्त अनुभव
करते हैं ।'

तथा 'क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि' (गीता १३।२) 'उत्क्रामन्तं स्थितं वापि' (गीता १५।१०) 'अज्ञानेनावृतं ज्ञानम्' (गीता ५।१५) 'अव्यक्ता-दिविशेषान्तमविद्यालक्षणं स्मृतम्' 'आसीदिदं तमोभूतम्' (मनु० १।५) 'वाचारम्भणम्' (छा० उ० ६।१।४) 'यत्र हि द्वैतमिव भवति तदितर इतरं पश्यति । यत्र त्वस्य सर्वमात्मैवा-भूत् तत्केन कं पश्येत् तत्केन कं जिघ्रेत्' (बृ० उ० २।४।१४)

'यस्मिन्सर्वाणि भूतान्या-

त्मैवाभूद्विजानत' ।

तत्र को मोहः कः शोक

एकत्वमनुपश्यतः ॥'

(इ० उ० ७)

'यत्र नान्यत्पश्यति नान्यद् विजानाति' (छा० उ० ७।२४।१) 'भेदोऽयमज्ञाननिबन्धनः' 'नेह नानास्ति किञ्चन' (क० उ० ४।११) 'मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति' (क० उ० ४।१०) 'विश्वतश्चक्षुः' (श्वे० उ० ३।३) 'यो योनिमधितिष्ठत्येको विश्वानि रूपाणि योनीश्च सर्वाः'

तथा 'क्षेत्रज्ञं भी मुझे ही जान' 'ऊपर-को ज्ञाते अथवा स्थित होते हुए' 'ज्ञान अज्ञानसे ढका हुआ है' 'अव्यक्तसे विशेष-(पञ्चभूत) पर्यन्त सब अविद्यारूप ही माना गया है' 'यह सब अन्धकारमय था' '[विकार] बाणीका विलासमात्र है' 'जहाँ द्वैतक समान होता है वहीं अन्य अन्यको देखता है, जहाँ इसके लिये सब आत्मस्वरूप ही हो गया वहाँ किससे किसको देखे और किससे किसको सँभे?' 'जिम अवस्था-में सब भूत आत्मस्वरूप ही हो जाते हैं वहाँ एकत्व देखनेवाले उस ज्ञानीको क्या मोह और क्या शोक हो सकता है?' 'जहाँ अन्य कुछ नहीं देखता और न अन्य कुछ जानता ही है' 'यह भेद अज्ञानके ही कारण है' 'यहाँ नाना कुछ भी नहीं है' 'हम लोकमें जो अनेकवत् देखता है वह मृत्युसे मृत्यु-को प्राप्त होता है' 'सब ओर चक्षुवाला है' 'जो योनि (मूल) में स्थित है वह एक ही सम्पूर्ण रूप और योनियाँ है'

‘अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां

बह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपाः ।

अजो लोको जूषमाणोऽनुशंते

जहात्येनां मुक्तभोगामनोऽन्यः ॥’

(श्वे० उ० ४ । ५)

‘देवात्मशक्तिं विदधे’ ‘न तु तद्-
द्वितीयमस्ति ततोऽन्यद्विभक्तं यत्पश्येत्’

(बृ० उ० ४ । ३ । २३) ‘एको हि

रुद्रो न द्वितीयाय तस्थुः’ (श्वे० उ०

३ । २) इत्यादि ।

‘मनोदृश्यमिदं द्वैतं

यत्किञ्चित्सचराचरम् ।

मनसो ह्यमनीभावे

द्वैतं नैवोपलभ्यते ॥’

(३ । ३१)

‘प्रपञ्चो यदि विद्येत

निर्वर्तेत न संशयः ।

मायामात्रमिदं द्वैत-

मद्वैतं परमार्थतः ॥’

(१ । १७)

‘यथा स्वप्ने द्रव्याभासं

स्पन्दते मायया मनः ।

तथा जाग्रदद्रव्याभासं

स्पन्दते मायया मनः ॥’

(३ । २९)

इत्यादि गौडपादे ।

‘अपने ही समान बहुत-सी प्रजा
उत्पन्न करनेवाली एक लोहित श्वेत
और कृष्ण वर्ण अजाको सेवन करने-
वाला एक अज उसका अनुगमन
करता है और दूसरा उसे भोगकर
त्याग देता है’ * ‘देवात्मशक्तिको
धारण किया’ ‘[सुषुप्तिमें] उससे
दूसरा (बुद्धिरूप प्रमाता) अन्य
(इन्द्रियरूप करण) अथवा पृथक्
(विषय) कोई नहीं है जिसे वह देखे’
‘एक ही रुद्र था दूसरा कोई नहीं’
इत्यादि ।

तथा गौडपादकारिकामें भी कहा

है—‘यह जो कुछ चराचर द्वैत है
सब मनका ही दृश्य है, मनका
अमनीभाव हो जानेपर द्वैत उपलब्ध
ही नहीं होता ।’ ‘इसमें सन्देह नहीं,
प्रपञ्च यदि होता तो अवश्य निवृत्त
हो सकता था; किन्तु द्वैत केवल
मायामात्र है परमार्थतः तो अद्वैत
ही है ।’ ‘जिस प्रकार स्वप्ने में मन
मायासे ही द्वैतका स्फुरण करता है
उसी प्रकार मायावश मन ही जागृति-
में द्वैतका स्फुरण करता है’ इत्यादि ।

ॐ यहाँ अजा (बकरी) के रूपकसे प्रकृति और पुरुषादिका वर्णन किया है ।
अजन्मा होनेके कारण मूल-प्रकृतिका नाम ‘अजा’ है; रज, सख और तम—यही
कमलः उसके लोहित, शुक्ल और कृष्ण-वर्ण हैं । बद्ध पुरुष हो उसे सेवन करने-
वाला अज (बकरा) है और मुक्त पुरुष उसे भोगकर त्याग देनेवाला अज है ।

‘तर्केणापि प्रपञ्चस्य
मनोमात्रत्वमिष्यताम् ।
दृश्यत्वात्सर्वभूतानां
स्वप्नादिविषयो यथा ॥’
‘द्वितीयाद्वै भयं भवति ।’ (बृ० उ०
१।४।२) ‘ज्ञाते त्वात्मनि नास्त्येतत्
कार्यकारणतात्मनः ।’ ‘एकौ देवः सर्वभूतेषु
गृहः’ (श्वे० उ० ६।११) ‘असङ्गो ह्ययं
पुरुषः’ (बृ० उ० ४।३।१५)
इति च ।

‘विस्तारः सर्वभूतस्य
विष्णोः सर्वमिदं जगत् ।
द्रष्टव्यमात्मवत्तस्मा-
दभेदेन विचक्षणैः ॥’
(१।१७।८४)
‘सर्वत्र दैत्याः समतामुपेत
समत्वमाराधनमच्युतस्य ॥’
(१।१७।९०)
‘सर्वभूतात्मके तात
जगन्नाथे जगन्मये ।
परमात्मनि गोविन्दे
मित्रामित्रकथा कुतः ॥’
(१।१८।३७)

इति विष्णुपुराणे ।

‘तत्त्वमसि’ (छा० उ० ६।८)
‘अहं ब्रह्मास्मि’ (बृ० उ० १।४।१०)
‘इदं सर्वं यदयमात्मा’ (बृ० उ० २।
४।६) ‘अयमात्मा ब्रह्म’ (बृ० उ० २।
५।१९) ‘तरति शोकमात्मवित्’ (छा०
उ० ७।१।३) ‘तत्र को मोहः कः
शोक एकत्वमनुपश्यतः’ (ई० उ० ७)

तथा ‘स्वप्नादि विषयोंके समान
सम्पूर्ण भूत दृश्यरूप हैं; इसलिये
तर्कसे भी प्रपञ्चकी मनोमात्रता ही
जानो।’ ‘दूसरेसे निश्चय ही भय होता
है’ ‘आत्माको जान लेनेपर यह
आत्माकी कार्य-कारणता नहीं रहती’
‘एक ही देव सम्पूर्ण भूतोंमें छिपा
हुआ है’ ‘यह पुरुष असंग ही है’ आदि ।

विष्णुपुराणमें भी कहा है—

‘यह सम्पूर्ण जगत् सर्वभूत विष्णुका
ही विस्तार है । अतः विचक्षण
पुरुषोंको इसे आत्माके समान अभेद-
रूपसे देखना चाहिये । हे दैत्य-
गण ! तुम सर्वत्र समताको प्राप्त हो,
क्योंकि समता ही श्रीअच्युतकी
आराधना है ।’ ‘हे तात ! सर्वभूतमय
विश्वरूप परमात्मा जगदीश्वर श्री-
गोविन्दमें शत्रु-मित्रकी बात कहाँसे
हो सकती है ?’

तथा ‘तू वह है’ ‘मैं ब्रह्म हूँ’ ‘यह
जो कुछ है सब आत्मा है’ ‘यह
आत्मा ब्रह्म है’ ‘आत्मज्ञानी
शोकको पार कर जाता है’
एवं ‘एकत्व देखनेवालेको क्या
मोह और क्या शोक ?’

इत्यादि श्रुतिस्मृतितिहास-
पुराणलौकिकेभ्यश्च ।

सिद्धेऽर्थेऽपि वेदस्य प्रामाण्य-
मेष्टव्यम्—

‘स्वपक्षसाधनैरकार्य-

मर्थजानमाह चेत् ।

तथा परोऽपि वेद चे-

च्छ्रुतिः परात्मदृङ् न किम् ॥’

इत्यभिधुक्तैरुक्तम् ।

अन्यान्वितस्वार्थे पदानां

सामर्थ्यं न कार्यान्वितस्वार्थे, तथा

सत्यर्थवादानामनन्वयप्रसङ्गात् अ-

न्वयबुद्धेः स्तुतित्वात् । न हि भवति

‘वायव्यं श्वेतमालभेत भूतिकामो वायुर्वै

क्षेपिष्ठा देवता’ इति । रागस्यैव

प्रवर्तकत्वम्, न नियोगस्य ।

इत्यादि श्रुति, स्मृति, इतिहास
और लोकोक्तियोंसे भी [यही बात
सिद्ध होती है] ।

सिद्ध अर्थ (ब्रह्म) में भी वेदका
प्रमाण मानना चाहिये; यथा—

‘यदि स्वपक्ष और साधनोंसे
[प्रभाकरमतावलम्बी] अर्थसमूहको
अकार्य (क्रियाके अयोग्य) बतलाता
है तो दूसरे लोचन श्रुतिको परमात्मा-
का ज्ञान करानेवाली क्यों न मानें ?’
ऐसा श्रेष्ठ पुरुषोक्ता कथन है ।

पदोंका सामर्थ्य अन्यान्वितस्वार्थ
(अन्य पदसे युक्त अपने अर्थ) में है,

कार्यान्वितस्वार्थ (कार्यसे युक्त अपने
अर्थ) में नहीं । यदि ऐसा हो तो
अर्थवादों (प्रशंसा-वाक्यों) का अन्वय
नहीं हो सकता^१, क्योंकि उनकी
अन्वय-बुद्धि स्तुतिरूप ही है । जैसे—

‘धनकी इच्छावाला वायु-सम्बन्धी
द्वेषतः पशुका आलभन करे, वायु
निश्चय ही शीघ्र फल देनेवाला
देवता है’ इस वाक्यमें [कार्यताका बोध]
नहीं होता । इस प्रकार [स्वर्गादि-
विषयक] राग ही [यागादिमें] प्रवर्तक
होता है, कार्य नहीं ।

१ जैसे ‘गौं लाओ’ इस वाक्यमें ‘गौ’ पदका ‘लाना’ क्रियासे सम्बद्ध
प्रभुविशेषमें अभिप्राय है ।

२ जैसे ‘गोप’ शब्दका अभिप्राय ‘गोपालन’ कार्यान्वित व्यक्तिमें नहीं बल्कि
जातिविशेषमें है ।

३ क्योंकि उनमें कार्यताबोधक लिङ्-लोट् आदिका अभाव होता है ।

तथा च श्रुतिः—‘अथो खल्वाहुः
काममय एवायं पुरुष इति स यथा-
कामो भवति तत्क्रतुर्भवति यत्क्रतुर्भवति
तत्कर्म कुरुते यत्कर्म तदभिसम्पद्यते ।’

तथा च स्मृतिरपि—
‘अकामतः क्रिया काचिद्-
दृश्यते नेह कस्यचित् ।
यद्यद्वि कुरुते कर्म
तत्तत्कामस्य चेष्टितम् ॥’
इति ।

‘काम एष क्रोध एषः’ (गीता ३ । ३७)
इति । अन्यपराणामपि मन्त्रार्थ-
वादानां प्रामाण्यमङ्गीकर्तव्यम् ।
तेषामप्रामाण्यकथनेन उरगत्वं गत-
वान्नहुषः । तत्कथम् ?—

ऋषयस्तु परिश्रान्ता
वाद्यमाना दुरात्मना ।
देवर्षयो महाभागा-
स्तथा ब्रह्मर्षयोऽमलाः ॥८॥
प्रपञ्चुः संशयं ते तु
नहुषं पापचेतमम् ।
य इमे ब्रह्मणा प्रोक्ता
मन्त्रा वै प्रोक्षणे गवाम् ॥९॥
एते प्रमाणं भवत
उताहो नेति वासव ।
नहुषो नेति तानाह
सहसा मूढचेतनः ॥१०॥

श्रुति भी कहती है—‘कहा भी
है—यह पुरुष कामनामय है; यह
जैसी कामनावाला होता है वैसा ही
संकल्प करता है, जैसा संकल्प करता
है वैसा ही कर्म करता है और जैसा
कर्म करता है, उसीको प्राप्त हो जाता है।’

तथा स्मृति भी कहती है—‘इस
लोकमें बिना कामनाके किसीका कर्म
नहीं देखा जाता; जो-जो भी कर्म किया
जाता है सब कामनाकी ही चेष्टा होती
है।’ तथा ‘यह काम है क्रोध है’—

इत्यादि । अतः अन्य विषय-सम्बन्धी मन्त्र
और अर्थवादोंकी भी प्रामाणिकतास्वाकार
करनी चाहिये, क्योंकि उन्हें अप्रामा-
णिक कहनेसे नहुष सर्पयोनिको प्राप्त
हुआ था । सां किस प्रकार ? [सुनिये—]

दुरात्मा नहुषद्वारा शिषिका उठाने
में नियुक्त किये हुए निर्मल-स्वभाव
महाभाग ऋषि, ब्रह्मर्षि और देवर्षियों-
ने थक जानेपर पापी नहुषसे यह
शङ्का की—‘हे इन्द्र ! वेदोंमें गौओंका
प्रोक्षण करनेके लिये जो मन्त्र कहे हैं
आप उन्हें प्रामाणिक मानते हैं या
नहीं ?’ मूढ़बुद्धि नहुष उनसे सहसा
कह उठा, ‘नहीं ।’

अथ उचुः—

अधर्मे सम्प्रवृत्तस्त्वं

धर्मं च विजिघृक्षसि ।

प्रमाणमेतदस्माकं

पूर्वं प्रोक्तं महर्षिभिः ॥११॥

अगस्त्य उवाच—

ततो विवदमानः सन्

ऋषिभिः सह पार्ष्विः ।

अथ मामस्पृशन्मूर्ध्नि

पादेनाधर्मपीडितः ॥१२॥

तेनाभूद्रतचेताः स

निःश्रीकश्च शचीपते ।

ततस्तमहमुद्विग्न-

मनोचं भयपीडितम् ॥१३॥

यस्मात्पूर्वं कृतं मार्गं

महर्षिभिरनुष्ठितम् ।

अदृष्टं द्रपयसि वै

यच्च मूर्ख्यस्पृशः पदा ॥१४॥

यच्चापि त्वमृषीन्मूढ

ब्रह्मकल्पान्दुरासदान् ।

बाहान्कृत्वा वाहयसि

तेन स्वर्गाद्व्रतप्रभः ॥१५॥

त्वं स्वपापपरिभ्रष्ट

क्षीणपुण्यो महोपते ।

दशवर्षसहस्राणि

सर्परूपधरो महीम् ॥१६॥

विचरिष्यसि तीर्णश्च

पुनः स्वर्गमवाप्स्यसि ॥१७॥

इति श्रीमहाभारते (उद्योग० १७) ।

ऋषियोंने कहा—तू अधर्ममें प्रवृत्त

हो रहा है और धर्मको त्यागना

चाहता है; पूर्वकालमें महर्षियोंने हमें

वे मन्त्र प्रामाणिक बतलाये हैं ।

अगस्त्यजी बोले—तब राजा

नहुषने ऋषियोंके साथ विवाद करते

हुए अधर्मातुर हो मेरे शिरका पाँवसे

स्पर्श किया। हे इन्द्र ! इससे वह नष्ट-

बुद्धि और श्रीहीन हो गया। उस

समय मैंने भयातुर और उद्विग्नचित्त

नहुषने कहा—‘रे मूढ ! तूने पूर्वकाल-

में महर्षियोंद्वारा बनाये और पालन

किये निर्दोष मार्गको दूषित किया

है, मेरे शिरपर पैर रक्ता है और

जिनका मिलना अत्यन्त कठिन है

उन ब्रह्मतुल्य महर्षियोंको वाहक बना-

कर अपनी शिबिका वहन करायी है,

इसलिये, हे राजन् ! इस अपराधके

कारण तू अपने पापसे पतित, पुण्य-

हीन और निस्तेज होकर सर्परूप

धारणकर दश सहस्र वर्षतक

पृथिवीपर विचरेगा और फिर

शापमुक्त होकर पुनः स्वर्ग प्राप्त

करेगा ।’ ऐसा महाभारतमें कहा है ।

अतः श्रद्धेयमात्मज्ञानम्—

‘अश्रद्धधानाः पुरुषा
धर्मस्यास्य परंतप ।
अप्राप्य मां निवर्तन्ते
मृत्युसंसारवर्त्मनि ॥’
(गीता ९।३)

इति श्रीभगवद्वचनात् ।

ऐतरेयके च ‘एष पन्था एतत्कर्म-
तद्ब्रह्मैतत्सत्यं तस्मान्न प्रमाद्येत्तन्नानीयान्न
ह्यत्यायन्पूर्वं येऽत्यायस्ते परावभूवुः ।’
(ऐ० आ० २।१।१)

तदुक्तमृषिणा—‘प्रजा ह तिस्रो

अत्यायमीयुर्न्यया अर्कमभितो विविश्रे ।

वृहद् तस्यो भुवनेष्वन्तः पवमानो हरित

आविवेश’ (ऐ० आ० २।१।४)

इति ।

‘प्रजा ह तिस्रो अत्यायमीयुरिति या
वै ता इमाः प्रजाः तिस्रोऽत्यायमीयुस्ता-
नीमानि वयांसि वङ्गा वगधाश्चेरपादाः’
(ऐ० आ० २।१।५) इति
श्रुतम् । वङ्गा वनगाः वृक्षाः । वगधाः
ओषधयश्च । इरपादा उरःपादाः
सर्पादयः ।

अतः आत्मज्ञानमें श्रद्धा करनी

चाहिये । श्रीभगवान्का भी कथन है—

‘हे शत्रुदमन ! इस धर्ममें अधश्चा
करनेवाले पुरुष मुझे न पाकर मृत्यु-
रूप संसार-मार्गमें लौट आते हैं ।’

ऐतरेयक श्रुतिमें भी कहा है—

‘यही मार्ग है, यही कर्म है, यही ब्रह्म
है और यही सत्य है; अतः इससे
प्रमाद न करे, इसका त्याग न करे ।
जिनोंने पहले इसका त्याग किया
था वे पराभवको प्राप्त हुए ।’

वेदमन्त्र भी कहता है—‘तीन

प्रसिद्ध प्रजाओंने धर्मका त्याग किया
था, अन्य प्रजा सब प्रकार अर्क(अर्च-
नीय अग्नि) की उपासनामें तत्पर
हुई । कुछ सकल भुवनोंमें महान सूर्य-
की उपासना करने लगी । जगत्को
पवित्र करनेवाला वायु सब दिशाओं-
में प्रविष्ट हुआ [कुछ उसकी उपासना
करने लगी] ।’

‘तीन प्रसिद्ध प्रजाओंने धर्म त्याग

किया । जिन तीन प्रजाओंने धर्मका
त्याग किया था वे पक्षी, वङ्ग, वगध
और इरपाद हैं’ ऐसी श्रुति है । ‘वङ्ग’
वनके वृक्ष हैं, ‘वगध’ ओषधियाँ हैं
और ‘इरपाद’ उर (हृदय) ही जिनके
पाद हैं वे सर्पादि हैं ।

तथा च ईशावास्ये अविद्वान्नि-
न्दार्थो मन्त्रः—

‘असुर्या नाम ते लोका
अन्धेन तमसावृताः ।
तास्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति
ये के चात्महानो जनाः ॥’

इति (ई० उ० ३) ।

‘असन्नेव स भवति । असद्ब्रह्मेति
वेद चेत्’ इति तैत्तिरीये (२ । ६) ।

तथा शकुन्तलोपाख्याने—

‘योऽन्यथा सन्तमात्मान-
मन्यथा प्रतिपद्यते ।

किं तेन न कृतं पापं
चोरेणात्मापहारिणा ॥’*

इत्यलमतिप्रसङ्गेन ।

सहस्रनामजपस्य अनुरूपं
मानसस्नानमुच्यते—

‘यस्मिन्देवाश्च वेदाश्च
पवित्रं कृष्णमेकताम् ।
ब्रजेत्तन्मानसं तीर्थं
तत्र स्नात्वामृतो भवेत् ॥

‘ज्ञानहृदे ध्यानजले
रागद्वेषमलापहे ।

यः स्नाति मानसे तीर्थे
स याति परमां गतिम् ॥

तथा ईशावास्योपनिषद्में अविद्वान्-
की निन्दाविषयक यह मन्त्र है—

‘वे असुर्य नामक लोक घोर अन्धकार-
से व्याप्त हैं; जो कोई आत्मघाती
पुरुष होते हैं वे मरनेपर उन्हींको
प्राप्त होते हैं ।’

तैत्तिरीय उपनिषद्में कहा है—
‘ब्रह्म असत् है—यदि ऐसा जानता
है तो वह (जाननेवाला) असत् ही
हो जाता है’ तथा शकुन्तलोपाख्यान-
का वचन है—‘जो अन्य प्रकारसे
स्थित अपने आत्माको अन्य प्रकार
जानता है उस आत्मघाती चोरने
कौन पाप नहीं किया ?’ अस्तु ! अब
अधिक प्रसङ्ग बढ़ानेकी आवश्यकता
नहीं ।

अब, सहस्रनाम-जपके अनुरूप
मानस-स्नानका वर्णन किया जाता है—
‘जिसमें देवता और वेद पूर्ण एकता-
को प्राप्त हो गये हैं उस परम पवित्र
मानस-तीर्थको जाय और उसमें
स्नान कर अमर हो जाय । जो मनुष्य
मानस-तीर्थमें स्नान-सरोवरके भीतर
राग-द्वेषरूप मलको दूर करनेवाले
ध्यानरूप जलमें स्नान करता है वह
परमगति प्राप्त करता है । सरस्वती

'सरस्वती रजोरूपा
तमोरूपा कल्मिदजा ।
सत्त्वरूपा च गङ्गा च
न यान्ति ब्रह्म निर्गुणम् ॥
'आत्मा नदी संयमतोऽपवर्णा
सत्यहृदा शीलतटा दयोर्मिः ।
तत्रावगाहं कुरु पाण्डुपुत्र
न वारिणा शुष्यति चान्तःशाला ॥'
इति महाभारते ।

'मानसं ज्ञानं विष्णुचिन्तनम्' इति
स्मृता ।

'जपेनैव तु संसिध्ये-
ब्राह्मणो नात्र संशयः ।
कुर्यादभ्यन्तं वा कुर्या-
न्मैत्रो ब्राह्मण उच्यते ॥'
इति मानवं वचनम् (मनु० २८।७)

'जपस्तु सर्वधर्मेभ्यः'
परमो धर्म उच्यते ।
अहिंसया च भूतानां
जपयज्ञः प्रवर्तते ॥'
इति ।

'यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि ।' इति श्री-
गीतासु (१०।२४)

✓ 'अपवित्रः पवित्रो वा
सर्वावस्था गतोऽपि वा ।
यः स्मरेत्पुण्डरीकाक्षं
स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः ॥'
इत्यादि । (पद्म० ९।८०।१२) ॥१०॥

रजोमयी है; यमुना तमोमयी है और
गङ्गाजी सत्त्व-स्वरूपा हैं; अतः वे
निर्गुण प्रसूतक नहीं जा सकतीं ।
आत्मा नदी है, वह संयमरूप जलसे
भरी हुई है, सत्य उसका हृद
(जलाशय) है, शील तट है और दया
तरङ्ग है । हे पाण्डुपुत्र ! उसमें ज्ञान
करो, जलसे अन्तःकरण शुद्ध नहीं
हो सकता ।' ऐसा महाभारतमें कहा है ।

स्मृतिका कथन है—'श्रीविष्णु-
भगवानका चिन्तन मानसिक ज्ञान है ।'

मनुजी कहते हैं—'इसमें सन्देह
नहीं ब्राह्मण कोई और कर्म करे या न
करे, केवल जपसे ही शुद्ध हो जाता
है; अतः ब्राह्मण 'मैत्र' (सबका मित्र)
कहा जाता है ।'

[इसके सिवा] 'जप सम्पूर्ण धर्मों-
में श्रेष्ठ कहा गया है, क्योंकि जप-
यज्ञ प्राणियोंकी हिंसाके बिना सम्पन्न
हो जाता है ।' इत्यादि तथा गीताके—
'यज्ञोंमें मैं जपयज्ञ हूँ' आदि एवं
'अपवित्र हो अथवा पवित्र सभी
अवस्थाओंमें स्थित हुआ भी जो श्री-
कमलनयन भगवानका स्मरण करता
है वह व्याहर-भीतरसे पवित्र हो जाता है'
इत्यादि [वचन भी जप-यज्ञका महत्त्व
बतलाते हैं] ॥१०॥

यदेकं दैवतं प्रस्तुतं तस्योप-
लक्षणमुच्यते—

जिस एक देवकी प्रस्तावना की
गयी है उसीका लक्षण बतलाते हैं—

यतः सर्वाणि भूतानि भवन्त्यादियुगागमे ।

यस्मिंश्च प्रलयं यान्ति पुनरेव युगक्षये ॥ ११ ॥

यतः, सर्वाणि, भूतानि, भवन्ति, आदियुगागमे ।

यस्मिन्, च, प्रलयम्, यान्ति, पुनः, एव, युगक्षये ॥

यतः यस्मात् सर्वाणि भूतानि आदियुग (सत्ययुग) के लगनेपर—
भवन्ति उद्भवन्ति आदियुगागमे कल्पके आदिमे जिससे सम्पूर्ण भूत
कल्पादी । उत्पन्न होते हैं ।

यस्मिंश्च प्रलयं विलयं यान्ति
विनाशं गच्छन्ति पुनः भूयः, एव
इत्यवधारणार्थः; नान्यस्मिन्नि-
त्यर्थः । युगक्षये महाप्रलये ।

और फिर युगका क्षय होनेपर—
महाप्रलयमें जिसमें विलीन अर्थात्
नाशको प्राप्त होते हैं । 'एव' का प्रयोग
अवधारणके लिये हुआ है, तात्पर्य यह
कि [जिससे सब भूत उत्पन्न होते हैं,
उसीमें लीन होते हैं] दूसरेमें नहीं ।

चकारान्मध्यंऽपि यस्मिंस्तिष्ठन्ति
'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन
जातानि जीवन्ति यत्प्रयन्त्यभिसं-
विशन्ति' (तै० उ० ३ । १) इति
श्रुतेः ॥ ११ ॥

'च' कारका भाव यह है कि मध्यमें
भी जिसमें स्थित रहते हैं । जैसा कि
श्रुति भी कहती है—'जिससे ये भूत
उत्पन्न होते हैं, जिससे उत्पन्न होनेपर
जांचित रहते हैं और फिर मरकर
जिसमें प्रवेश करते हैं' ॥ ११ ॥

तस्य लोकप्रधानस्य जगन्नाथस्य भूपते ।

विष्णोर्नामसहस्रं मे शृणु पापभयापहम् ॥ १२ ॥

तस्य, लोकप्रधानस्य, जगन्नाथस्य, भूपते ।
विष्णोः, नामसहस्रम्, मे, शृणु, पापमयापहम् ॥

तस्य एवंलक्षणलक्षितस्यैकदैव-
तस्य लोकप्रधानस्य लोकनहंतुभिः
विद्यास्थानैः प्रतिपाद्यमानस्य जग-
न्नाथस्य जगतां नाथः स्वामी माया-
शब्दः परमात्मा निर्लेपश्च तस्य
भूपते महीपाल, विष्णोः व्यापन-
शीलस्य नामसहस्रम्, नाम्नां सहस्रं
अशुभकर्मकृतं पापं संसारलक्षण-
भयं चापहन्तीति पापमयापहं त्वं मे
मत्तः शृणु एकाग्रमना भूत्वा-
वधारयेत्यर्थः ।

‘एकस्यैव समस्तस्य
ब्रह्मणो द्विजसत्तम ।
नाम्ना बहुत्वं लोकाना-
मुपकारकरं शृणु ॥
‘निमित्तशक्तयो नाम्नां
भेदिन्यस्तदुद्दीरणात् ।
विभिन्नान्येव साध्यन्ते
फलानि द्विजसत्तम ॥
‘यच्छक्ति नाम यत्तस्य
तत्तस्मिन्नेव वस्तुनि ।
साधकं पुरुषस्याप्र-
सौम्यं क्रूरं वस्तुपु ॥’

इति विष्णुधर्मवचनाद्यद्यपि
परस्य ब्रह्मणः षष्ठीगुणक्रियाजाति-
रूढीनां शब्दप्रवृत्तिहेतुभूतानां

हे पृथिवीपते ! ऐसे लक्षणोंसे
बतलाये हुए उस एक देवके, जो लोक-
प्रधान—लोकन (प्रतीति) के कारण-
रूप विद्यास्थानोंसे प्रतिपादित, जग-
न्नाथ—संसारके स्वामी अर्थात् माया-
शब्द और निर्लेप परमात्मा तथा
विष्णु—व्यापनशील हैं, उनके अशुभ-
कर्मजनित पाप और संसाररूप भयको
दूर करनेवाले सहस्र—हजार नाम मुझसे
सुनो; अर्थात् मनको एकाग्र करके
ग्रहण करो ।

‘हे द्विजश्रेष्ठ ! एक ही समस्त ब्रह्म-
के नामोंका लोकोंका उपकार करने-
वाला विस्तार सुनो । हे द्विजराज !
उन नामोंके अलग-अलग भेद करनेमें
उनकी निमित्त-शक्तियाँ ही कारण हैं
और इसीलिये उनके उच्चारणसे फल
भी भिन्न-भिन्न ही सिद्ध होते हैं । हे
पुरुषसिंह ! जो नाम जिस शक्तिवाला
है, वह उसी सौम्य या क्रूर वस्तुका
साधक है ।’ इन विष्णुधर्मोत्तरपुराणके
वचनोंसे, यद्यपि परब्रह्ममें शब्द-प्रवृत्तिकी
हेतुभूत षष्ठी, गुण, क्रिया, जाति और
रूढ़ि—इन निमित्त-शक्तियोंका होना

निमित्तशक्तीनां चासम्भवः, तथापि
सगुणे ब्रह्मणि सविकारे च सर्वा-
त्मकत्वात्तेषां शब्दप्रवृत्तिहेतूनां
सम्भवात् सर्वे शब्दाः परस्मिन्पुंसि
वर्तन्ते ॥१२॥

असम्भव है; तथापि सर्वात्मक होनेके
कारण सगुण और सविकार ब्रह्ममें
उन शब्द-प्रवृत्तिके हेतुओंकी सम्भावना
होनेसे सम्पूर्ण शब्द परमपुरुष परमात्मा-
में लग जाते हैं ॥१२॥

तत्र—

उनमें—

यानि नामानि गौणानि विख्यातानि महात्मनः ।

ऋषिभिः परिगीतानि तानि वक्ष्यामि भूतये ॥१३॥

यानि, नामानि, गौणानि, विख्यातानि, महात्मनः ।

ऋषिभिः, परिगीतानि, तानि, वक्ष्यामि, भूतये ॥

यानि नामानि गौणानि गुण-
सम्बन्धीनि गुणयोगात्प्रवृत्तानि तेषु
च यानि विख्यातानि प्रसिद्धानि ऋषि-
भिः मन्त्रैस्तद्दर्शिमिश्च परिगीतानि
परितः समन्ततः परमेश्वराख्यानेषु
तत्र तत्र गीतानि महान्वासावात्मेति
महात्मा—

‘यच्चाप्नोति यदादत्ते

यच्चास्ति विषयानिह ।

यच्चास्ति सन्ततो भाव-

स्तस्मादात्मेति कीर्त्यते ॥’

(लिङ्ग० १।७०।९६)

इति वचनादयमेव महानात्मा ।
तस्याचिन्त्यप्रभावस्य

जो नाम गौण—गुणसम्बन्धी अर्थात्
गुणके कारण प्रवृत्त हुए हैं उनमेंसे जो
विख्यात—प्रसिद्ध हैं और मन्त्र तथा
मन्त्रद्रष्टा मुनियोद्वारा परिगीत अर्थात्
सर्वत्र भगवत्कथाओंमें जहाँ तहाँ गाये गये
हैं, उस महात्मा—अचिन्त्यप्रभाव देवके
उन समस्त नामोंको पुरुषार्थचतुष्टयके
इच्छाओंकी भूति—पुरुषार्थ-सिद्धिके
लिये वर्णन करता हूँ। जो महान् आत्मा
है उसे महात्मा कहते हैं। ‘क्योंकि यह
पुरुष [सुषुप्तिमें द्रव्यभावको] प्राप्त हो
जाता है, [स्वप्नमें बिना इन्द्रियोंके
विषयोंको] ग्रहण करता है और

वक्ष्यामि । भूतये पुरुषार्थचतुष्टय-
सिद्धयै भूतये पुरुषार्थ-
चतुष्टयार्थिनामिति ॥ १३ ॥

[जायृतिमें] यहाँ विषयोंको भोगता
है तथा निरन्तर वर्तमान रहता है,
इसलिये 'आत्मा' कहलाता है ।
इस वाक्यसे यह देव ही महात्मा है ।

अथ सहस्रनाम

अत्र नाममहम्ने आदित्यादि-
शब्दानामर्थान्तरे प्रसिद्धानामादि-
त्याद्यर्थानां तद्विभूतित्वेन तद-
भेदात् तस्यैव स्तुतिरिति प्रसिद्धार्य-
ग्रहणेऽपि तत्स्तुतित्वम् ।

‘भूतात्मा चन्द्रियात्मा च

प्रधानात्मा तथा भवान् ।

आत्मा च परमात्मा च

त्वमेकः पञ्चधा स्थितः ॥’

(विष्णु० ५ । १८ । ५०)

‘उयोतींषि विष्णुर्भुवनानि विष्णु-

र्वनानि विष्णुर्गिर्यां दिशश्च ।

नद्यः समुद्राश्च स एव सर्व

यदस्ति यत्नास्ति च विप्रवर्य ॥’

(विष्णु० २ । १२ । ३८)

इति विष्णुपुराणे ।

‘आदित्यानामहं विष्णुः’ (१० ।

२१) इत्यारम्य ‘अथवा बहुनैतेन

इन सहस्रनामोंमें आये हुए
आदित्य आदि शब्दोंके दूसरे अर्थोंमें
प्रसिद्ध मर्यादि अर्थ भी भगवान्की
ही विभूति होनेके कारण उनसे
उनका अभेद है । इसलिये उन
शब्दोंका प्रसिद्ध अर्थ ग्रहण करनेसे
भी भगवान्की ही स्तुति होती है;
जैसा कि विष्णुपुराणमें कहा है—
‘भूतात्मा, इन्द्रियात्मा, प्रधानात्मा,
आत्मा और परमात्मा—ये सब आप
ही हैं; आप एक ही इन पाँच रूपोंमें
स्थित हैं ।’ ‘नक्षत्रगण विष्णु हैं, भुवन
विष्णु हैं तथा वन, पर्वत, नदियाँ और
दिशाएँ भी विष्णु ही हैं । हे विप्रवर्य !
जो है और जो नहीं है वह सब कुछ
एकमात्र वे ही हैं ।’

श्रीगीताजीमें ‘आदित्योंमें मैं विष्णु
हूँ’ यहाँसे लेकर ‘हे अर्जुन ! इन

किं ज्ञानेन तवार्जुन । विष्टभ्याहमिदं
कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत् ॥'
(१० । ४२) इतिपर्यन्तं गीतासु ।
'ब्रह्मैवेदं विश्वमिदं वरिष्ठम्' (मु० उ०
२ । २ । ११) 'पुरुष एवेदं विश्वम्'
(मु० उ० २ । १ । १०) इति श्रुतिश्च ।

विष्ण्वादिशब्दानां पुनरुक्ता-
नामपि वृत्तिभेदेनार्थभेदान्न पौन-
रुक्त्यम् । श्रीपतिर्माधव इत्यादीनां
वृत्त्येकत्वेऽपि शब्दभेदान्न पौन-
रुक्त्यम् । अर्थेकत्वेऽपि न पौनरुक्त्यं
दोषाय, नाम्नां सहस्रस्य किमेकं
दैवतमिति पृष्टरेकदैवतविषयत्वात् ।

यत्र पुंलिङ्गशब्दप्रयोगस्तत्र
विष्णुविशेष्यः; यत्र स्त्रीलिङ्गशब्द-
स्तत्र देवता विशेष्यते यत्र नपुंसक-
लिङ्गशब्दस्तत्र ब्रह्मेति विशेष्यते ।

'यतः सर्वाणि भूतानि' (वि० स०
११) इत्यारभ्य जगदुत्पत्तिस्थिति-
लयकारणस्य ब्रह्मण एकदैवतत्वेना-

सबके बहुत जाननेसे क्या है ?
मैं अपने एक अंशसे इस सम्पूर्ण
जगत्को व्याप्त करके स्थित हूँ ।'
इस वाक्यतक यही बात है । तथा—
'यह सम्पूर्ण विश्व परमोत्कृष्ट
ब्रह्म ही है' 'यह विश्व पुरुष ही है'
इत्यादि श्रुतियाँ भी यही कहती है ।

'विष्णु' आदि शब्दोंकी पुनरुक्ति
होनेपर भी वृत्तिके भेदसे अर्थका भेद
होनेके कारण उनमें पुनरुक्तता नहीं
है । तथा श्रीपति, माधव आदि शब्दोंकी
वृत्ति एक होनेपर भी शब्द-भेद होनेसे
उनकी पुनरुक्ति नहीं है । अर्थकी एकता
होनेपर भी यहाँ पुनरुक्ति दोषावह नहीं
हो सकती, क्योंकि ये सहस्रनाम 'एक
देवता कौन है ?' इस प्रकार पृच्छनेके
कारण एक देवताविषयक ही है ।

इनमें जहाँ पुंलिङ्ग शब्दका प्रयोग
हो वहाँ विष्णु, जहाँ स्त्रीलिङ्ग शब्द हो
वहाँ देवता और जहाँ नपुंसकलिङ्ग
हो वहाँ ब्रह्मको विशेष्य समझना
चाहिये ।

'यतः सर्वाणि भूतानि' यहाँसे
लेकर संसारकी उत्पत्ति, स्थिति और
लयके कारणरूप ब्रह्मको ही एक
देवतारूपसे कहा गया है; इसलिये

मिहितत्वादादावुभयविधं
विश्वशब्देनोच्यते—

ब्रह्म [निरुपाधिक और सोपाधिक] दोनों
प्रकारका ब्रह्म पहले विश्व शब्दसे
बतलाया जाता है—

ॐ विश्वं विष्णुर्वषट्कारो भूतभव्यभवत्प्रभुः ।

भूतकृद्भूतभृद्भावो भूतात्मा भूतभावनः ॥१४॥

१ विश्वम्, २ विष्णुः, ३ वषट्कारः, ४ भूतभव्यभवत्प्रभुः ।

५ भूतकृत्, ६ भूतभृत्, ७ भावः, ८ भूतात्मा, ९ भूतभावनः ॥

विश्वस्य जगतः कारणत्वेन विश्वम् । विश्व अर्थात् जगत्का कारण होनेसे
इत्युच्यते ब्रह्म । आदौ तु विश्वमिति ब्रह्मको 'विश्व' कहा गया है ।
कार्यशब्देन कारणग्रहणम्, कार्य- पहले यहाँ यह दिखलानेके लिये कि
भूतविरिञ्च्यादिनामभिरपि उप- कार्यरूप विरिञ्चि आदि शब्दोंसे भी
पन्ना स्तुतिर्विष्णोरिति दर्शयितुम् । विष्णुकी स्तुति उपपन्न हो सकती है,
'विश्व' इस कार्यशब्दसे कारणका ग्रहण
किया गया है ।

यद्वा, परस्मात्पुरुषान्न भिन्नमिदं । अथवा, यह विश्व वास्तवमें परम-
विश्वं परमार्थतस्तेन विश्वमित्यभि- पुरुष परमात्मासे भिन्न नहीं है इसलिये
धीयते ब्रह्म, 'ब्रह्मैवेदं विश्वमिदं विश्व ब्रह्मको कहा गया है । 'यह
वरिष्ठम् ।' (मु० उ० २ । २ । ११) 'पुरुष विश्व परमोत्कृष्ट ब्रह्म ही है । 'यह सब
एवेदं विश्वम्' (मु० उ० २ । १ । १०) पुरुष ही है' इत्यादि श्रुतिसे भी वास्तव-
इत्यादिश्रुतिभ्यः तद्विभं न में ब्रह्ममे अतिरिक्त और कुछ भी सत्य
किञ्चित्परमार्थतः सदस्ति । नहीं है ।

अथवा, विशतीति विश्वं ब्रह्म । अथवा प्रवेश करता है—इसलिये
'तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्' (तै० उ० ब्रह्म विश्व है, जैसा कि श्रुति कहती है
२ । ६) इति श्रुतेः । किञ्च 'उसे रचकर उसीमें प्रविष्ट हो गया'
अथवा 'जिसमें मरकर प्रविष्ट होते हैं'

संहतौ विशन्ति सर्वाणि
भूतान्यस्मिन्निति विश्वं ब्रह्म 'यत्
प्रयन्त्यमिसंविशन्ति' (तै० उ० ३ ।
१) इति श्रुतेः । तथा हि—सकलं
जगत्कार्यभूतमेव विशत्यत्र
चाविलं विशतीत्युभयथापि विश्वं
ब्रह्म इति ।

'अन्यत्र धर्मादन्यत्राधर्मात्' (क०
उ० १ । २ । १४) इत्यारभ्य—
'सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति

तपासि सर्वाणि च यद्वदन्ति ।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति
तत्ते पदं संप्रहेण ब्रवीम्यो-
मित्येतत् ॥' (क० उ० १ । २ । १५)

'एतद्वयेवाक्षरं ब्रह्म
एतद्वयेवाक्षरं परम् ।

एतद्वयेवाक्षरं ज्ञान्वा

यो यदिच्छति तस्य तत् ॥'

(क० उ० १ । २ । १६)

इति काठके ।

'एतद्वै सत्यकाम परं चापरं च ब्रह्म
यदोङ्कारः' (५ । २) इत्युपक्रम्य 'यः
पुनरेतं त्रिमात्रेणोमित्येतैनैवाक्षरेण परं
पुरुषमभिध्यायीत' (५ । ५) इति
प्रश्नोपनिषदि । 'ओमिति ब्रह्म ।

इस श्रुतिके अनुसार प्रलयकालमें समस्त
प्राणी इसमें प्रवेश कर जाते हैं इसलिये
ब्रह्म ही विश्व है । इस प्रकार वह
कार्यरूप सम्पूर्ण जगत्में प्रविष्ट है,
तथा सम्पूर्ण जगत् उसमें प्रवेश करता
है इसलिये दोनों ही प्रकारसे ब्रह्म
विद्य है ।

कठोपनिषद्में 'धर्ममे अलग है
और अधर्मसे भी अलग है'
इस प्रकार प्रसंग आरम्भ करते हुए
कहा है—'सब वेद जिस पदका प्रति-
पादन करते हैं तथा सारे तप जिसे
प्राप्त कराते हैं, जिसकी इच्छासे
ब्रह्मचर्यका आचरण करते हैं उस
पदका मैं तुमसे संक्षेपमें वर्णन करता
हूँ—वह 'ॐ' बस यही है ।' 'यह अक्षर
ही ब्रह्म है, यह अक्षर ही परम श्रेष्ठ है,
इस अक्षरको जान लेनेपर जो जिस
वस्तुकी इच्छा करता है उसे वही
प्राप्त हो जाती है ।'

प्रश्नोपनिषद्में भी 'हे सत्यकाम !
यह ओंकार ही पर और अपर ब्रह्म है'
इस प्रकार उपक्रम करके यह कहा है कि
'जो 'ॐ' इस तीन मात्रावाले अक्षरसे
परम पुरुषका ध्यान करता है [वह
मुक्त हो जाता है] ।' यजुर्वेदीय आरण्यकमें

ओमितीदं सर्वम् ।' (तै० उ० १।८) इति यजुर्वेदारण्यके । 'तद्यथा शङ्कुना सर्वाणि पर्णानि सन्तृण्णान्येवमोङ्कारेण सर्वा वाक् सन्तृण्णा । ओङ्कार एवेदं सर्वम् ।' इति छान्दोग्ये (२।२३।३) ।

'ओमित्येतदक्षरमिदं सर्वम्' (मा० उ० १) इत्युपक्रम्य

'प्रणवो व्यपरे ब्रह्म

प्रणवश्च पर स्मृतः ।

अपूर्वोऽनन्तरोऽव्याहो-

ऽनपरः प्रणवोऽन्यथ ॥

'सर्वस्य प्रणवो व्यादि-

र्मध्यमन्तस्तथैव च ।

एवं हि प्रणवं ज्ञात्वा

व्यस्तुते तदनन्तरम् ॥

'प्रणवं होश्वरं विद्यात्

सर्वस्य हृदये स्थितम् ।

सर्वव्यापिनमोङ्कारं

मत्वा धीरो न शोचति ॥

'अमात्रोऽनन्तमात्रश्च

द्वैतस्योपशमः शिवः ।

ओङ्कारो विदितो येन

स मुनिर्नेतरो जनः ॥'

(माण्डू० का० १। २६-२९)

इत्यन्ता माण्डूक्योपनिषत् ।

कहा है—'ॐ' बस यही ब्रह्म है और यही सब कुछ है ।' तथा छान्दोग्यका कथन है । 'जिस प्रकार सब पत्ते शंकु (पत्तेकी नसों) से व्याप्त होते हैं उसी प्रकार ओंकारसे सम्पूर्ण वाणी व्याप्त है, यह सब कुछ ओंकार ही है ।'

माण्डूक्योपनिषद्मे भी 'ॐ' यह अक्षर ही सब कुछ है' इस प्रकार उपक्रम करके 'प्रणव ही अपर ब्रह्म है और प्रणव ही परब्रह्म कहा गया है । वह अपूर्व अनन्तर और अव्याह्य है [अर्थात् उससे पहले, पीछे या बाहर कुछ भी नहीं है] और उसका कोई कार्य भी नहीं है । वह प्रणव अव्यय है । प्रणव ही सबका आदि, मध्य और अन्त है; प्रणवका ऐसा जानकर फिर उसीको प्राप्त हो जाता है । प्रणवहीको सबके हृदयमें स्थित ईश्वर समझे; सर्वव्यापी ओंकारको जान लेनेपर धीर पुरुष शोक नहीं करता । जिसने मात्राहीन और अनन्त मात्राओंवाले द्वैतशून्य कल्याणस्वरूप ओंकारको जान लिया है, वही मुनि है, और कोई नहीं ।' यहाँतक ऐसा ही कहा है ।

‘ॐ तद्ब्रह्म । ॐ तद्वायुः । ॐ
तदात्मा । ॐ तत्सत्यम् । ॐ तत्सर्वम् ।’
(ना० उ० १८)

इत्यादिश्रुतिभिः ।

‘ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म
व्याहरन् मामनुस्मरन् ।
यः प्रयाति त्यजन् देहं
स याति परमां गतिम् ॥’
(गीता ८ । १३)

‘यदक्षरं वेदविदो वदन्ति
विशन्ति यद्यतयो वीतरागाः ।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति
तत्ते पदं संप्रहेण प्रवक्ष्ये ॥’
(गीता ८ । ११)

‘रसोऽश्मप्सु कौन्तेय
प्रभास्मि शशिसूर्ययोः ।
प्रणवः सर्ववेदेषु
शब्दः खे पौरुषं नृषु ॥’
(गीता ७ । ८)

‘महर्षीणां भृगुरहं
गिरामस्थेकमक्षरम् ।
यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि
स्थावराणां हिमालयः ॥’
(गीता १० । १५)

‘आद्यं च त्र्यक्षरं ब्रह्म
त्रयी यस्मिन्प्रतिष्ठिता ।’

‘एकाक्षरं परं ब्रह्म
प्राणायामः परं तपः ॥’
(अधि० १ । ११)

[इनके सिवा] ‘वह ॐ ही ब्रह्म
है, ॐ ही वायु है, ॐ ही आत्मा है,
ॐ ही सत्य है, ॐ ही सब कुछ है’
इत्यादि श्रुतियोंसे, तथा—

‘जो पुरुष ॐ इस एकाक्षर ब्रह्म-
का उच्चारण कर मुझे स्मरण करता
हुआ शरीर त्यागकर जाता है वह
परमगतिको प्राप्त होता है ।’ ‘जिस
अक्षर (ॐकार) का वेदज्ञजन बखान
करते हैं, जिसमें विरक्त यतिजन
प्रवेश करते हैं तथा जिसे प्राप्त करने-
की इच्छासे ब्रह्मचर्यका आचरण करते
हैं वह पद तुम्हें संश्लेषसे यताता हूँ ।’
‘हे कुन्तीपुत्र! जलमें मैं रस हूँ, चन्द्रमा
और सूर्यमें प्रकाश हूँ, सम्पूर्ण वेदोंमें
प्रणव हूँ, आकाशमें शब्द हूँ और
पुरुषोंमें पुरुषत्व हूँ ।’ ‘मैं महर्षियोंमें
भृगु हूँ, घाणीमें एकाक्षर (ओंकार)
हूँ, यज्ञोंमें जपयज्ञ हूँ तथा स्थावरों-
में हिमालय हूँ ।’ ‘त्र्यक्षर (तीन
अक्षरवाला) ब्रह्म (ओंकार) ही
आदिमें है, जिसमें वेदत्रयी स्थित है ।’
‘एकाक्षर ओंकार ही परब्रह्म है और
प्राणायाम ही परम तप है ।’

‘प्रणवाद्याख्यो वेदाः

प्रणवे पर्यवस्थिताः ।

वाङ्मयं प्रणवं सर्वं

तस्मात्प्रणवमभ्यसेत् ॥’

(अत्रि० १।९)

इत्यादिस्मृतेश्च विश्वशब्देनो-
द्धारोऽभिधीयते—वाच्यवाचकयो-
रत्यन्तभेदाभावात् विश्वमित्यो-
द्धार एव ब्रह्मेत्यर्थः ।

‘सर्वस्वत्विदं ब्रह्म तज्जनानिति शान्त
उपासीत’ (छा० उ० ३।१४।१)

इति एतदुक्तं भवति—यस्मा-
त्सर्वमिदं विकारजानं ब्रह्म तज्जत्वा-
त्तद्व्यवस्थात्तदनत्वाच्च । न च
सर्वस्यैकात्मत्वं रागादयः सम्भ-
वन्ति । तस्माच्छान्त उपासीत
इति श्रुतेः ।

‘श्रूयता धर्मसर्वस्वं

श्रुत्वा चैवावधार्यताम् ।

आत्मनः प्रतिकूलानि

परेषा न समाचरेत् ॥’

(विष्णुधर्म० ३।२५५।४४)

‘आत्मौपग्येन सर्वत्र

समं पश्यति योऽर्जुन ।

‘तीनों वेद प्रणवसे आरम्भ होनेवाले हैं
और प्रणवमें ही समाप्त हो जाते हैं,
सम्पूर्ण वाणीमात्र प्रणवरूप है,
इसलिये प्रणवका अभ्यास करे ।’
इत्यादि स्मृतियोंसे भी ‘विश्व’ शब्दसे
ओंकारका ही निरूपण किया गया है;
क्योंकि वाच्य और वाचकका आत्यन्तिक
भेद नहीं होता, इसलिये तात्पर्य यह है
कि विश्व अर्थात् ओंकार ही ब्रह्म है ।

‘यह मन्त्र निःसन्देह ब्रह्म ही है
क्योंकि उसीमें उत्पन्न होता, उसीमें
लीन होता और उसीमें चेष्टा करता
है, इस प्रकार शान्तभावसे उपासना
करे’ इस श्रुतिसे यह वतलाया गया है
कि यह सम्पूर्ण विकार ब्रह्महींसे उपन-
हानेके कारण, ब्रह्महीमें लीन होनेके
कारण और उसीमें चेष्टा करनेके कारण
ब्रह्म ही है । इस प्रकार सब एकरूप
होनेसे इनमें रागादि दोष सम्भव नहीं
हैं; इसलिये शान्तभावसे उपासना करे ।

‘धर्मका सार-सर्वस्व सुनिये
और सुनकर उसे हृदयमें धारण
कीजिये—जो कार्य अपने प्रतिकूल
हों उनका दूसरोंके प्रति भी आचरण
नहीं करना चाहिये ।’

‘हे अर्जुन ! जो योगी सुख और
दुःखको अपनी ही तरह सर्वत्र

सुखं वा यदि वा दुःखं
स योगी परमो मतः ॥'
(गीता ६।३९)

'निर्गुणः परमात्मात्र
देहे व्याप्य व्यवस्थितः ।
तमहं ज्ञानविज्ञेयं
नायमन्ये न लङ्घये ॥
'यद्यागमैर्न विन्देयं
तमहं भूतभावनम् ।
क्रमेयं त्वां गिरि चेमं
हनूमानिव सागरम् ॥'
(महा० वन० १४७।८-९)

'बद्धवैराणि भूतानि
द्वेषं कुर्वन्ति चेत्ततः ।
शोभ्यान्यहंऽतिमोहेन
व्याप्तानीति मनीषिणाम् ॥
'एते भिन्नदशा दैव्या
विकल्पाः कथिता मया ।
कृत्वाभ्युपगमं तत्र
संक्षेपः श्रूयता मम ॥
'विस्तारः सर्वभूतस्य
विष्णोः सर्वमिदं जगत् ।
द्रष्टव्यमात्मवत्तस्मा-
दभेदेन विचक्षणैः ॥

समान देवता है, मेरे विचारसे वही
परम योगी है ।'

[भीमसेनने हनुमान्जीसे कहा है—]
'इस देहमें निर्गुण परमात्मा ही व्याप्त
होकर स्थित है; उस ज्ञानगम्य
परमात्माका मैं अनादर और लंघन
नहीं कर सकता हूँ। यदि मैं शास्त्रों-
द्वारा उन भूतभावन परमात्माका
अनुभव न करता तो हनुमान्जीके
समुद्रोलङ्घनके समान तुम्हें और
इस पर्वतको भी लाँघ जाता ।'

[प्रह्लादजी दैत्यपुत्रोंसे कहते हैं—]
'यदि जीव आपसमें वैर बाँधकर
एक-दूसरेसे द्वेष करते हैं तो उन्हें
देखकर बुद्धिमानोंको (उनके लिये)
इस प्रकार शोक करना चाहिये कि
'ओह ! ये अत्यन्त मोहग्रस्त हैं ।' हे
दैत्यगण ! ये सब मैंने एक-
पथको स्वीकार करके भेददृष्टि-
वालोंके [साधनविषयक] विकल्प
बतलाये, अब तुम मुझसे उन सबका
सार सुनो। यह सम्पूर्ण संसार
विश्वरूप विष्णुका विस्तार है। इस-
लिये बुद्धिमानोंको इसे आत्माके
समान अभिन्न-भावसे देखना

‘समुत्सृज्यासुरं भावं

तस्माद्ययं तथा वयम् ।

तथा यत्नं करिष्यामो

यथा प्राप्स्याम निर्वृतिम् ॥

(विष्णु० १ । १७ । ८२-८५)

‘सर्वत्र दैत्याः समतामुपेत

समन्वमाराधनमच्युतस्य ।’

(विष्णु० १ । १७ । ९९)

‘न मन्त्रादिकृतस्तात

न च नैसर्गिको मम ।

प्रभाव एष सामान्यो

यस्य यस्याच्युतो हृदि ॥

‘अन्येषा यो न पापानि

चिन्तयन्त्यात्मनो यथा ।

तस्य पापागमस्तात

हेत्वभावात् विद्यते ॥

‘कर्मणा मनसा वाचा

परपीडा करोति यः ।

तद्दीर्घं जन्म फलति

प्रभूतं तस्य चाशुभम् ॥

‘सोऽहं न पापमिच्छामि

न करोमि वदामि वा ।

चिन्तयन्सर्वभूतस्थ-

मात्मन्यपि च वेशवम् ॥

चाहिये । इसलिये तुम और हम अपने

आसुरी भावको छोड़कर ऐसा प्रयत्न

करें जिससे शान्तिको प्राप्त हों । ...

... हे दैत्यगण ! सर्वत्र समानभाव

रक्खो क्योंकि समता ही श्रीअच्युत-

की आराधना है ।’

[प्रह्लादजी अपने पितासे कहते हैं--]

‘हे तात ! मेरा यह प्रभाव न तो किसी

मन्त्रादिके कारण है और न यह मुझमें

स्वाभाविक ही है । यह तो, जिस

जिसके हृदयमें श्रीहरि विराजमान

हैं उस-उसके लिये साधारण बात है ।

हे तात ! अपने ही समान जो

दूसरोंके लिये भी, अनिष्ट-चिन्तन

नहीं करता, कोई हेतु न रहनेके कारण

उसे पापोंका फलरूप दुःख नहीं होता ।

जो पुरुष मन, वचन या कर्मसे

दूसरोंको दुःख देता है, उस पापकर्म-

रूप बीजसे उसे पुनर्जन्म और अत्यन्त

अशुभ-प्राप्तिरूप फल होता है । किन्तु मैं

अपने हृदयमें और समस्त प्राणियोंमें

विराजमान श्रीकेशवका स्मरण करता

हुआ न किसीका अनिष्ट चाहता हूँ, न

करता हूँ और न कहता ही हूँ ।

‘शारीरं मानसं बाह्यं

दैवं भूतभवं तथा ।

सर्वत्र समचित्तस्य

तस्य मे जायते कुतः ॥

‘एवं सर्वेषु भूतेषु

भक्तिरव्यभिचारिणी ।

कर्त्तव्या पण्डितैर्ज्ञात्वा

सर्वभूतमयं हरिम् ॥

(विष्णु० १।१९।४-९)

‘साम चोपप्रदानं च

भेददण्डौ तथापरी ।

उपायाः कथिता त्वेते

मित्रादीनां च साधने ॥

‘तानेवाहं न पश्यामि

मित्रादींस्तात मा क्रुधः ।

साध्याभावे महाबाहो

साधनैः किं प्रयोजनम् ॥

‘सर्वभूतात्मके तात

जगन्नाथे जगन्मये ।

परमात्मनि गोविन्दे

मित्रामित्रकथा कुतः ॥

(विष्णु० १।१९।३५-३७)

‘जडानामविवेकाना-

मशूराणामपि प्रभो ।

भाग्यभोग्यानि राज्यानि

सन्त्यजनीतिमतामपि ॥

‘तस्माद्यतेत पुण्येषु

य इच्छेन्महतीं श्रियम् ।

यतितव्यं समत्वे च

निर्वाणमपि चेच्छता ॥

इस तरह सर्वत्र समानचित्त

रहनेवाले मुखे शारीरिक, मानसिक,

वाचिक, दैविक अथवा भौतिक दुःख

कैसे प्राप्त हो सकता है ? इस प्रकार,

श्रीहरिको सर्वभूतमय जानकर

पण्डितोंको समस्त प्राणियोंमें अवि-

चल भक्ति करनी चाहिये । ‘‘साम,

दान, दण्ड और भेद-ये सभी

उपाय शत्रु-मित्रादिको वशमें करने-

के लिये बताये गये हैं, किन्तु

पिताजी ! कोधन कीजिये । मुखे तो

कोई शत्रु-मित्रादि दिखलायी ही नहीं

देते । अतः हे महाबाहो ! जब कोई

साध्य ही नहीं है तो साधनसे क्या

लाभ ? हे तात ! सर्वभूतात्मक विश्व-

रूप जगत्पति परमात्मा गोविन्दमें

शत्रु-मित्र आदि भावकी बात ही

कहाँ है ? ‘‘हे प्रभो ! ये राज्यादि

तो भाग्यसे प्राप्त होनेवाले हैं । ये तो

मूर्ख, अविवेकी, दुर्बल और अनीति-

मानोंको भी प्राप्त होते देखे जाते हैं ।

इसलिये जिसे महान् वैभवकी

इच्छा हो वह पुण्य-सम्पादनका

प्रयत्न करे और जो मुक्त होना चाहे

वह समत्वके लिये प्रयत्न करे ।

‘देवा मनुष्याः पशवः
पक्षिवृक्षसरीसृपाः ।
रूपमेतदनन्तस्य
विष्णोर्मिन्नमिव स्थितम् ॥
‘एतद्विजानता सर्वं
जगत्स्थावरजङ्गमम् ।
द्रष्टव्यमात्मवद्विष्णु-
र्यतोऽयं विश्वरूपधृक् ॥
‘एवं ज्ञाते स भगवा-
ननादिः परमेश्वरः ।
प्रसादय्यच्युतस्तस्मि-
न्प्रसन्ने क्लेशसंक्षयः ॥’
(विष्णु० १ । १९ । ४५-४९)

‘बहूना जन्मनामन्ते
ज्ञानवान्मा प्रपद्यते ।
वासुदेवः सर्वमिति
स महात्मा सुदुर्लभः ॥’
(गीता ७ । १३)

इत्यादिवचनैश्च ।

हिंसादिरहितेन स्तुतिनमस्का-
रादि कर्त्तव्यमिति दर्शयितुं विश्व-
शब्देन ब्रह्माभिधीयत इति वा ।

वैश्वता, मनुष्य, पशु, पक्षी, वृक्ष और
सर्प आदि सब अनन्त विष्णु
भगवान्के ही रूप हैं, ये पृथक्-पृथक्
स्थित-से दिखायी देते हैं [किन्तु
वास्तवमें एक ही हैं]-ऐसा जानने-
वालेको यह सम्पूर्ण स्थावर-जङ्गम
जगत् अपने समान ही देखना चाहिये,
क्योंकि यह विश्व-रूपधारी विष्णु
ही है ? ऐसा जान लेनेपर वह अनादि
और अविनाशी परमेश्वर प्रसन्न होता
है, तथा उसके प्रसन्न होनेपर सम्पूर्ण
क्लेशोंका* अन्त्य हो जाता है ।

तथा गीतामें भी कहा है कि ‘अनेक
जन्मोंके अनन्तर अन्तिम जन्ममें
ज्ञानवान्पुरुषमुझे इस प्रकार जानता
है कि ‘सब कुछ वासुदेव ही हैं’ वह
ऐसा महात्मा अत्यन्त दुर्लभ है ।’
इन वचनोंसे यही बात सिद्ध होती है ।

अथवा हिंसा आदिसे रहित होकर
विश्वमात्रकी स्तुति और नमस्कार
आदि करने चाहिये, यह दिखलानेके
लिये ब्रह्म ‘विश्व’ शब्दसे कहा गया है ।

❁ पातञ्जलयोगदर्शन (सावनपाद सू० ३) में कहा है-‘अविद्याअस्मिताराग-
द्वेषाभिनिवेशाः क्लेशाः’ अर्थात् अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश—ये
पाँच क्लेश हैं ।

‘भक्तकर्मकृन्मत्परमो

मद्भक्तः सङ्गवर्जितः ।

निर्वैरः सर्वभूतेषु

यः स मामेति पाण्डव ॥’

(गीता ११ । ५५)

इति ।

‘न चलति निजवर्णधर्मतो यः

सममतिरात्मसुहृद्विपक्षपक्षे ।

न हरति न च हन्ति किञ्चिदुच्चैः

स्थितमनसंतमवेहि विष्णुभक्तम् ॥

(विष्णु० ३ । ७ । २०)

‘विमलमतिरमत्सरः प्रशान्तः

शुचिचरितोऽखिलसत्त्वमित्रभूतः ।

प्रियहितवचनोऽस्तमानमायो

वसति सदा हृदि तस्य वासुदेव ॥

‘वसति हृदि सनातने च तस्मिन्

भवति पुमाञ्गतोऽस्य सौम्यरूपः ।

क्षितिरसमतिरग्न्यात्मनोऽन्तः

कथयति चारुतयैव सालपोतः ॥’

(विष्णु० ३ । ७ । २४-२५)

‘सकलमिदमहं च वासुदेवः

परमपुमान्परमेश्वरः स एकः ।

[गीतामें भी कहा है—] ‘जो मेरे ही

लिये कर्म करनेवाला, मेरे ही परायण

रहनेवाला, मेरा भक्त, आसक्तिरहित

और समस्त प्राणियोंमें वैररहित

होता है, हे पाण्डव ! वह मुझे ही

प्राप्त हो जाता है ।’ इत्यादि

[यमराजने भी अपने दूतोंसे कहा

है—] ‘जो अपने वर्णधर्मसे विचलित

नहीं होता, अपने सुहृद् और विरो-

धियोंके पक्षमें समबुद्धि है तथा किसी

वस्तुका हरण या किसी जीवका हनन

नहीं करता उस अत्यन्त स्थिर-चित्त

पुरुषको विष्णुका भक्त जानो ।

... वह निर्मलचित्त, मत्सरहीन,

शान्त, पवित्र-चरित्र, समस्त प्राणियों-

का मित्र, प्रिय और हितकर वचन

बोलनेवाला, तथा मान और माया-

रहित होता है । उसके हृदयमें

श्रीवासुदेव सर्वदा निवास करते

हैं । उस सनातन प्रभुके हृदयमें

निवास करते ही पुरुष इस लोकमें

प्रियदर्शन हो जाता है, जिस प्रकार

सालका नवीन पौधा अपनी सुन्दरता-

से ही अपने अन्तर्वर्ती अति रमणीय

पार्थिव रसकी सूचना दे देता है ।

... यह सङ्पूर्ण जगत् और मैं एकमात्र

परपुरुष परमेश्वर वासुदेव ही हूँ—

जिनकी ऐसी मति हृदयस्थ परमेश्वर

इति मतिरचला भवत्यनन्ते
हृदयगते व्रज तान्विहाय दरात् ॥

(विष्णु० ३।७।३२)

‘यमनियमविधूतकलमपाणा-

मनुदिनमभ्युतमक्तमानसानाम् ।

अपगतमदमानमत्सराणां

व्रजभट्ट दुरतरं मानवानाम् ॥’

(विष्णु० ३।७।२६)

इत्यादिवचनैर्वैष्णवलक्षणस्यैवंप्र-
कारत्वाच्च हिमादिरदितेन विष्णोः
स्तुतिनमस्कारादि कर्तव्यमिति ।

‘अथवा देयं अश्रद्धयाऽदेयम्’ (तै०
उ० १।११।३) ‘अश्रद्धयाग्निः समिद्धयते’
इत्यादिश्रुतेः

‘श्रद्धापूर्तं वदान्यस्य

हतमश्रद्धयेतरत् ।’

(म० शान्ति० २६४।१३)

‘इमं स्तवमर्थीयानः

श्रद्धामक्तिसमन्वितः ॥’

(वि० स० १३२)

‘अश्रात्रियं श्राद्धमधीतमव्रत-

मदक्षिणं यज्ञमनुविजानुतम् ।

अश्रद्धया दत्तममंस्कृतं हवि-

र्भागाः पडेते तव दैत्यसत्तम ॥

‘पुण्यं मदद्वेपिणा यच्च

मद्वक्तद्वेपिणा तथा ।

श्रीमनन्तमें अधिचल हो गयी हो,
उन्हें तुम दूरहीसे छोड़कर निकल
जाना । ‘... ‘अरे दूतो ! यम-नियमा-
दिसें जिनके दोष दूर हो गये हैं, जो
नित्यप्रति श्रीअच्युतमें मन लगाये
रहते हैं तथा जिनके मद, भान
और मत्सरादि निकल गये हैं उन
मनुष्योंसे दूर रहकर ही निकल
जाना ।’

इत्यादि वचनोंसे वैष्णवके लक्षण
ऐसे ही होनेके कारण विष्णु-भक्तको
हिंसादि दोषोंसे दूर रहकर श्रीविष्णुके
स्तुति-नमस्कारादि करने चाहिये [यह
वात सिद्ध होनी है] ।

‘अथार्थपूर्वक देना चाहिये, अथर्था-
से नहीं’ ‘अर्थासे अग्नि प्रज्वलित की
जाती है’ इत्यादि श्रुतियोंसे तथा
‘दाताका [दान] अर्थासे पवित्र
होता है और अन्य अथर्थाके
कारण नष्ट हो जाता है ।’ ‘इस स्तोत्र-
का अर्था और भक्तिपूर्वक पाठ करने-
वाला [आत्मसुख, शान्ति, लक्ष्मी,
धृति, स्मृति और कीर्तिसें युक्त होता
है]’ ‘हे दैत्यधेष्ट ! बिना श्रोत्रियका
श्राद्ध, बिना व्रतका अध्ययन, बिना
दक्षिणाका यज्ञ, बिना अतिवृत्ती
आहुति, बिना अर्थाका दान और

क्रयविक्रयसक्तानां

पुण्यं यच्चाग्निहोत्रिणाम् ॥

‘अश्रद्धया च यद्दानं

यजतां ददता तथा ।

तत्सर्वं तव दैत्येन्द्र

मत्प्रसादाद्द्विष्यति ॥’

(हरि० ३ । ७२ । ३७-३९)

‘अश्रद्धया हुतं दत्तं

तपस्तप्तं कृतं च यत् ।

असदित्युच्यते पार्थ

न च तत्प्रेत्य नो इह ॥’

(गीता १७ । २८)

इत्यादिस्मृतिभिश्च श्रद्धया

स्तुतिनमस्कारादि कर्तव्यमश्रद्धया

न कर्तव्यम् ।

‘ॐ तत्सदिति निर्देशो

ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः ।’

(गीता १७ । २३)

इति भगवद्वचनात् स्तुतिनमस्कारादिकं कर्मासात्त्विकं विगुणमपि श्रद्धापूर्वकं ब्रह्मणोऽभिधानत्रयप्रयोगेण सगुणं सात्त्विकं सम्पादितं भवति ।

आत्मानं विष्णुं ध्यात्वार्चन-
स्तुतिनमस्कारादि कर्तव्यम् ।

विना संस्कार किया हुआ इचि—ये छः तेरे भाग हैं । मुझसे द्वेष करने-वालोंका, मेरे भक्तोंसे द्वेष करनेवालोंका, निरन्तर क्रय-विक्रयमें आसक्त रहनेवालोंका, [विधिहीन] अग्नि-होत्र करनेवालोंका पुण्य तथा श्रद्धापूर्वक यज्ञ या दान करने-वालोंका दान, हे दैत्येन्द्र ! ये सब मेरी कृपासे तुझे प्राप्त होगा । ‘हे पार्थ ! जो हवन, दान या तप श्रद्धासे किया जाता है वह असत् कहलाता है । उसका न यहाँ और न मरनेपर ही कोई फल होता है ।’

इत्यादि स्मृतियोंमें भी [यही सिद्ध होता है कि] श्रद्धापूर्वक ही स्तुति-नमस्कारादि करने चाहिये, अश्रद्धा-में नहीं ।

‘ॐ तत्सन् यह ब्रह्मका तीन

प्रकारका नाम कहा गया है’ भगवान्-के इस वचनसे [यह सिद्ध होता है कि] स्तुति और नमस्कार आदि कर्म यदि असात्त्विक और गुणहीन भी हों तो भी ब्रह्मके इन तीन नामोंका श्रद्धा-पूर्वक प्रयोग करनेसे गुणयुक्त और सात्त्विक हो जाते हैं ।

ये पूजा, स्तुति और नमस्कारादि विष्णु भगवान्को आत्मरूपसे चिन्तन

‘नाविष्णुः कीर्तयेद्विष्णुं

नाविष्णुर्विष्णुमर्चयेत् ।

नाविष्णुः संस्मरेद्विष्णुं

नाविष्णुर्विष्णुमामुयात् ॥’

इति महाभारते कर्मकाण्डे ।

‘मर्वाण्येतानि नामानि

परम्य ब्रह्मणोऽनघ ।’

(विष्णुधर्म० ३ । १२३ । १३)

‘यं यं काममभिव्याये-

नं तमाप्नोत्यसंशयम् ।

सर्वकामानवाप्नोति

समागम्य जगद्गुरुम् ॥

‘तन्मयत्वेन गोविन्द-

मेत्येतद्दान्य नान्यथा ।

तन्मयो वाञ्छितान्कामा-

न्यदवाप्नोति मानवः ॥’

इति विष्णुधर्मे ।

‘सर्वभूतस्थितं यो मा

भजत्येकमवास्थितः ।

सर्वथा वर्तमानोऽपि

स योगी मयि वर्तते ॥’

इति भगवद्गीतासु (६ । ३१)

‘अहं हरिः सर्वमिदं जनार्दनो

नान्यत्ततः कारणकार्यजातम् ।

करके करने चाहिये । महाभारत-कर्म-काण्डमें कहा है—‘बिना विष्णुरूप हुए विष्णुका कीर्तन न करे, बिना विष्णु हुए विष्णुका पूजन न करे, बिना विष्णु हुए विष्णुका स्मरण न करे और न बिना विष्णु हुए विष्णुको प्राप्त हो ।’

विष्णुधर्ममें कहा है—‘हे अनघ !

ये सब नाम परब्रह्मके ही हैं ।’ ‘भक्त जिस-जिस वस्तुकी इच्छा करता है निःसन्देह उसीको प्राप्त कर लेता है । उन जगद्गुरुकी आराधना करनेसे सब इच्छाएँ पूर्ण हो जाती हैं । हे दाल्भ्य ! मनुष्य गोविन्दको तन्मयता-से ही प्राप्त कर सकता है, जो पुरुष तन्मय हो जाता है वह अपनी इच्छित वस्तुओंको प्राप्त कर लेता है इसमें कुछ भी अन्यथा नहीं है ।’

श्रीभगवद्गीतामें कहा है—‘जो पुरुष

एकवचने स्थित होकर समस्त भूतोंमें स्थित मुझ परमात्माका भजन करता है वह सब प्रकारसे वर्तता हुआ भी मुझहीमें वर्तता है ।’

विष्णुपुराणका कथन है—‘मैं श्री-हरि हूँ, यह समस्त संसार जनार्दन ही है, उस (परमात्मा) से अतिरिक्त और

ईदृक् मनो यस्य न तस्य भूयो

भवोद्भवा द्वन्द्वगदा भवन्ति ॥'

इति विष्णुपुराणे (१।२२।८७)

'गुरोर्यत्र परीवादो

निन्दा वापि प्रवर्त्तते ।

कर्णो तत्र पिपातव्यो

गन्तव्यं वा ततोऽन्यतः ॥'

(विष्णुधर्म० ३।२३३।९२)

'तस्माद्ब्रह्मैवाचार्य-

स्वरूपेणावतिष्ठते ।'

इति स्मृतेः ।

'वरं हुतबह्वज्वाला-

पुष्कम्यान्तर्यवम्पितिः ।

न शौरिचिन्ताविमुख-

जनसंवासवैशसम् ॥'

इति कात्यायनवचनाद् यत्र
देशे वासुदेवनिन्दा तत्र वामो न
कर्त्तव्यः ।

'यस्य देवे परा भक्ति-

र्यथा देवे तथा गुरौ ।

तस्यैते कथिता त्रयः

प्रकाशन्ते महामनः ॥'

(६।२३)

इति श्वेताश्वतरोपनिषन्मन्त्र-
वर्णात् हरौ गुरौ च परा भक्तिः
कार्येति ।

कोई कार्य-कारणादि नहीं है-जिसका
ऐसा चित्त है उसे फिर जन्मादिसे
होनेवाली द्वन्द्वरूप व्याधियाँ नहीं
होती ।'

स्मृति कहती है—'जहाँ गुरु-

का अपवाद या निन्दा होती हो

वहाँ कान मूँद लेने चाहिये अथवा

वहाँसे कहीं अन्यत्र चला जाना

चाहिये ।' 'अतः ब्रह्म ही आचार्यरूपसे

स्थित है ।'

'अग्निकी प्रचण्ड ज्वालाके

भीतर रहना अच्छा है, किन्तु श्रीहरि-

चिन्तनसे विमुख लोगोंके साथ रहने-

का दुःख अच्छा नहीं'—कात्यायनजीके

इस वाक्यसे भी [यहाँ तात्पर्य निकलता

है कि] जहाँ श्रीवासुदेवकी निन्दा हाँती

हो वहाँ नहीं रहना चाहिये ।

'जिसकी भगवान्में अत्यन्त भक्ति

है और भगवान्के समान ही गुरुमें

भी है उस महात्माको ही इन ऊपर

कहे हुए अर्थोंका प्रकाश होता है'

श्वेताश्वतरोपनिषद्के इस मन्त्रसे भी

यही सिद्ध होता है कि श्रीहरि और

गुरुमें परा भक्ति करनी चाहिये ।

‘अवशेनापि यन्नास्ति
कीर्तिते सर्वपातकैः ।
पुमान्विमुच्यते सद्यः
सिंहव्रत्सैवृकैरिव ॥’
(विष्णु० ६।८।१९)

‘जिसके नामका विवश होकर भी
कीर्तन करनेसे पुरुष, सिंहसे डरे हुए
गोदड़ोंके समान सम्पूर्ण पापोंसे
तुरन्त मुक्त हो जाता है ।’

‘ज्ञाननोऽज्ञाननो वापि
वासुदेवस्य कर्त्तनात् ।
तन्मयं विलयं याति
तोयस्य लवणं यथा ॥’

‘ज्ञानकर अथवा ज्ञाना जाने भी
वासुदेवका कीर्तन करनेसे समस्त
पाप जलमें पड़े हुए नमकके समान
लीन हो जाते हैं ।’

‘कलिकम्पमन्यग्रं
नरकातिप्रदं नृणाम् ।
प्रयाति विलयं सद्यः
सकृन् कृष्णस्य संस्मृतैः ॥’
(विष्णु० ६।८।२१)

‘मनुष्योंको नरककी पीडा देनेवाले
कलिके अत्यन्त उग्र पाप श्रीकृष्णका
एक बार भी भली प्रकार स्मरण
करनेसे तुरन्त लीन हो जाते हैं ।’

‘सकृत्स्मृतोऽपि गोविन्दो
नृणा जन्मशतैः कृतम् ।
पापराशि दहयाशु
तूलाशिमिवानलः ॥’

‘श्रीगोविन्द एक बार भी स्मरण
किये जानेपर मनुष्योंके सैकड़ों
जन्मोंमें किये हुए पापोंके समूहको
इस प्रकार शीघ्र ही भस्म कर डालते
हैं जैसे अग्नि रुईको ढेरको ।’

‘सैयं वदनवन्माक-
वासिनी रसनोरगी ।
या न गोविन्द गोविन्द
गोविन्देति प्रभापते ॥’

‘जो जिह्वा ‘गोविन्द ! गोविन्द !
गोविन्द !’ ऐसा नहीं कहती वह मुख-
रूपी विलमें रहनेवाली सर्पिणीके
ही समान है ।’

‘पापवल्ली मुखे तस्य
जिह्वारूपेण निष्ठति ।
या न वक्ति दिवा रात्रौ
गुणान् गोविन्दसम्भवान् ॥’

‘जो जिह्वा दिन-रात श्रीगोविन्द-
के गुण नहीं गायी वह मनुष्यके मुखमें
जिह्वारूपसे पापकी बेल ही रहती है ।’

‘सकृदुच्चरित येन
हरितियक्षरद्वयम् ।
बद्धः परिकरस्तेन
मोक्षाय गमनं प्रति ॥’
(पद्मपुराण ६ । ८० । १६१)

‘एकोऽपि कृष्णस्य कृतः प्रणामो
दशाश्वमेधावभृतेन तुल्यः ।
दशाश्वमेधी पुनरेति जन्म
कृष्णप्रणामी न पुनर्भवाय ॥’
(महा० शान्ति० ४७ । ९१)

एवमादिवचनैः श्रद्धाभक्त्यो-
रभावेऽपि नामसङ्कीर्तनं समस्तं
दुरितं नाशयतीत्युक्तम्, किमुत
श्रद्धादिपूर्वकं सहस्रनामसङ्कीर्तनं
नाशयतीति ।

‘मनसा वा अग्रे सङ्कल्पयत्यथ वाचा
व्याहरति’ ‘यद्भि मनसा ध्यायति तद्वाचा
वदति’ इति श्रुतिभ्यां स्मरणं ध्यानं च
नामसङ्कीर्तनेऽन्तर्भूतम् ।

‘यस्मिन्त्यस्तमतिर्न याति नरकं
स्वर्गोऽपि यच्चिन्तने
विघ्नो यत्र निवेशिते च मनसि
ब्राह्मोऽपि लोकोऽल्पकः ।

‘जिसने एक बार भी ‘हरि’ इन दो
अक्षरोंका उच्चारण किया है उसने
मानो मोक्षकी ओर जानेके लिये
कमर कस ली है ।’

‘श्रीकृष्णको किया हुआ एक भी
प्रणाम दश अश्वमेध-यज्ञोंके यज्ञान्त-
स्नानके समान है, उनमें भी दश
अश्वमेध-यज्ञ करनेवालेका तो फिर
जन्म होता है, किन्तु कृष्णको प्रणाम
करनेवालेका पुनर्जन्म नहीं होता ।’
इस प्रकारके वचनोंसे यहाँ कहा गया
है कि श्रद्धा-भक्तिका अभाव होनेपर
भी नामसंकीर्तन समस्त पापोंको नष्ट
कर देता है; फिर श्रद्धा-भक्ति-सहित
किया हुआ सहस्रनामका कीर्तन उन्हें
नष्ट कर देता है—इसमें तो कहना
ही क्या है ?

‘पहले मनसे संकल्प करता है
फिर वाणीसे बोलता है ।’ ‘मनसे जो
घात सोचता है वही वाणीसे कहता
है ।’ इन श्रुतियोंसे स्मरण और ध्यान भी
नामसंकीर्तनके अन्तर्गत ही सिद्ध होते हैं ।

विष्णुपुराणके अन्तमें श्रीपराशरजी-
ने इस प्रकार उपसंहार किया है—
‘जिसमें दत्तचित्त हुआ पुरुष नरक-
गामी तो होता ही नहीं बल्कि

मुक्तिं चेतसि यः स्थितोऽमलधियां

पुंसां ददात्यव्ययः

किं चित्रं यदधं प्रयाति विलयं

तत्राच्युते कीर्तिते ॥'

इति विष्णुपुराणान्ते (६ । ८ ।

५७) श्रीपराशरेणोपसंहृतम् ।

'आलोड्य सर्वशास्त्राणि

विचार्य च पुनः पुनः ।

इदमेकं मुनिष्पन्नं

ध्येयो नारायणः सदा ॥'*

इति श्रीमहाभारतान्ते भगवता

श्रीवेदव्यासेनोपसंहृतम् ।

'हरिरंकः सदा ध्येयो

भवद्भिः सत्त्वमंस्थितैः ।

आमित्येवं सदा विप्राः

पठत ध्यात केशवम् ॥'

इति हरिवंशे (३।८९।९) कैलास-

यात्रायां हरिरेको ध्यातव्य इत्युक्तं
महेश्वरेणापि ।

स्वर्ग भी जिसका चिन्तन करनेमें
विघ्नरूप है तथा जिसमें चित्त
लग जानेपर ब्रह्मलोक भी कुछ
मान्दम होता है और जो अविनाशी
प्रभु शुद्धचित्त पुरुषोंके अन्तःकरणमें
स्थित होकर उन्हें मोक्ष प्रदान करता
है उस अच्युतका कीर्तन करनेसे यदि
पाप नष्ट हो जाते हैं तो इसमें आश्चर्य
क्या है ?'

भगवान् श्रीवेदव्यासजीने भी महा-
भारतके अन्तमें इसी प्रकार उपसंहार
किया है कि 'समस्त शास्त्रोंका मन्थन
करके उनका बारम्बार विचार करने-
पर यही एक बात सिद्ध होती है कि
सदा श्रीनारायणका ध्यान करना
चाहिये ।'

'आपलोगोंको सत्त्वगुणमें स्थित
होकर निरन्तर एक श्रीहरिका ही
ध्यान करना चाहिये । हे विप्रगण !
'ॐ' इस प्रकार सदा जप करो और
केशवका ध्यान करो' इस प्रकार हरि-
वंशमें कैलासयात्राके प्रसंगमें महेश्वरने भी 'एक हरिहीका ध्यान करना
चाहिये' ऐसा कहा है ।

❖ हमें यह श्लोक महाभारतके अन्तमें नहीं मिला । हिमपुराणका (२।७।११)

श्लोक सर्वथा इसी प्रकार है ।

एतत्सर्वमभिप्रेत्य 'एष मे सर्व-
धर्माणां धर्मोऽधिकतमो मतः' इत्या-
धिक्यमुक्तम् ।

'किमेकं दैवतम्' (वि० स० २)
इत्यारभ्य 'किं जपन् मुच्यते जन्तुः'
(वि० स० ३) इति षट्प्रश्नेषु
'यतः सर्वाणि' (वि० स० ११) इति
प्रश्नोत्तराभ्यां यद्ब्रह्मोक्तं तद्विश्व-
शब्दनोच्यत इति व्याख्यातम् ।

तत्किमित्याकाङ्क्षायामाह—विष्णुः
इति । तथा च ऋग्वेदे—'तमु
स्तोतारः पूर्यं यथाविद क्रतस्य गर्भं जनुषा
पिपर्तन। आस्य जानन्तो नाम चिद्धि-
वक्तन महस्ते विष्णो सुमतिं भजामहे'
(२।२।२६) इत्यादिश्रुतिभिर्विष्णो-
र्नामसङ्कीर्तनं सम्यग्ज्ञानप्राप्तये विहि-
तम् । तमेव स्तोतारः पुराणं यथा-
ज्ञानेन सत्यस्य गर्भं जन्मसमाप्तिं
कुरुत । जानन्तः आस्य विष्णोः
नामापि आवदत अन्ये वदन्तु मा

इन सब वचनोंके अभिप्रायसे ही
'सब धर्मोंमें मुझे यह धर्म सबसे
अधिक मान्य है' इस प्रकार इसकी
अधिकता बतलायी गयी है ।

इस प्रकार 'लोकमें एक देव कौन
है?' यहाँसे लेकर 'जीव किसका जप
करनेसे मुक्त हो जाता है' । इन छः
प्रश्नोंके उत्तरमें 'जिससे सब भूत हुए हैं'
इत्यादि प्रश्नोत्तरोंसे जिस ब्रह्मका वर्णन
किया है वह 'विश्व' शब्दमें कहा
जाता है—ऐसी व्याख्या की गयी है ।

अब, 'वह विश्व कौन है ?' ऐसी
जिज्ञासा होनेपर कहते हैं 'विष्णु' ।
ऋग्वेदमें भी 'तमु स्तोतारः पूर्यं
यथाविद क्रतस्य गर्भं जनुषा पिपर्तन
आस्य जानन्तो नाम चिद्धिवक्तन
महस्ते विष्णो सुमतिं भजामहे'
इत्यादि श्रुतियोंसे सम्यक् ज्ञानकी
प्राप्तिके लिये श्रीविष्णुके नामसंकीर्तन-
का विधान किया है । इस श्रुतिका
अभिप्राय यह है कि हे स्तुति करनेवाले !
सत्यके सारभूत उस पुराणपुरुषको
ही यथार्थ जानकर जन्मकी समाप्ति
करो । इन विष्णुके नामोंको जानते
हुए उनका उच्चारण भी करते रहो ।
अन्य लोग उनका जप करे चाहे न
करें परन्तु हम तो हे विष्णो !

वा हे विष्णो वयं ते सुमतिं शोभनं
महः भजामहे इति श्रुतेरभिप्रायः ।

आपके सुन्दर तेज और सुमतिको ही
भजते हैं ।

वेवेष्टि व्याप्नोतीति विष्णुः
विषेर्व्याप्त्यभिधायिनो नुकप्रत्य-
यान्तस्य रूपं विष्णुरिति । देशकाल-
वस्तुपरिच्छेदशून्य इत्यर्थः ।

‘वेवेष्टि’ अर्थात् जो व्याप्त हो
उसका नाम विष्णु है । व्याप्ति अर्थके
वाचक नुकप्रत्ययान्त ‘विप्’ धातुका
रूप ‘विष्णु’ बनता है । तात्पर्य यह है
कि वह देश-काल-वस्तु-परिच्छेदसे
रहित है ।

‘व्याप्ते मे रोदसी पार्थ
क्रान्तिश्चात्मयिका स्थिता ।
‘क्रमणाच्चाप्यहं’ पार्थ
विष्णुर्गित्यभिर्मोक्षितः ॥’
इति महाभारते (शान्ति०
३४१।४२-४३) ।

महाभागमें कहा है—‘हे पार्थ !
पृथिवी और आकाश मुझसे व्याप्त
हैं तथा मेरा विस्तार भी बहुत है,
इस विस्तारके कारण ही मैं विष्णु
कहलाता हूँ ।’

‘यच्च किञ्चिज्जगत्सर्वं
द्रव्यते श्रूयतेऽपि वा ।
अन्तर्बहिश्च तत्सर्वं
व्याप्य नारायणः स्थितः ॥’
इत्यादिश्रुतेर्बृहन्नारायणे (१३।
१।२) ।

बृहन्नारायणोपनिषद्की श्रुति है—
‘जो कुछ भी संसार दिखायी या
सुनायी देता है, श्रीनारायण उस
सबको बाहर-भीतरसे व्याप्त करके
स्थित हैं ।’

‘सर्वभूतस्यमेकं नारायणं कारण-
पुरुषमकारणं परं ब्रह्म शोकमोह-
विनिर्मुक्तं विष्णुं ध्यायन्न सीदति’
इत्यात्मबोधोपनिषदि (?)

आत्मबोधोपनिषद्में कहा है—
‘सर्वभूतोंमें स्थित, एक, एकाकार,
कारकरूप, शोक-मोह-आदिसे रहित, पर-
ब्रह्म नारायण विष्णुका ध्यान करनेसे
[मनुष्य] दुःख नहीं पाता ।’

विशतर्वा नुकप्रत्ययान्तस्य रूपं
विष्णुरिति

अथवा नुकप्रत्ययान्त विश् धातुका
रूप विष्णु है; जैसा कि विष्णुपुराणमें

‘यस्माद्विष्टमिदं सर्वं

तस्य शक्त्या महात्मनः ।

तस्मादेवोध्यते विष्णु-

विशेषार्थातोः प्रवेशनात् ॥’

इति विष्णुपुराणे (३।१।४५) ।

यदुद्देशेनाध्वरे वषट् क्रियते स

वषट्कारः । यस्मिन्यज्ञे वा वषट्क्रिया,

स वषट्कारः ‘यज्ञो वै विष्णुः’ (तै०

सं० १।७।४) इति श्रुतेर्यज्ञो

वषट्कारः । येन वषट्कारादि-

मन्त्रात्मना वा देवान्प्रीणयति स

वषट्कारः । देवता वा, ‘प्रजापतिश्च

वषट्कारश्च’ इति श्रुतेः ।

‘चतुर्भिश्च चतुर्भिश्च

द्वाभ्यां पञ्चभिरेव च ।

हूयते च पुनर्द्वाभ्यां

स मे विष्णुः प्रसीदतु ॥’

इत्यादिस्मृतेश्च ।

भूतं च भव्यं च भवच्च भूतभ-

व्यभवन्ति तेषां प्रभुः भूतभव्यभवत्-

प्रभुः कालभेदमनादृत्य सन्मात्र-

कहा है—‘उस महात्माकी शक्ति इस सम्पूर्ण विश्वमें प्रवेश किये हुए है; इसलिये वह विष्णु कहलाता है, क्योंकि विश्वात्तुका अर्थ प्रवेश करना है ।’

जिसके उद्देश्यसे यज्ञमें ‘वषट्’ किया जाता है उसे वषट्कार कहते हैं अपवा ‘यज्ञ ही विष्णु है’ इस श्रुतिके अनुसार जिस यज्ञमें वषट् किया होती है वह यज्ञ वषट्कार है । अथवा जिस वषट्कारादि मन्त्ररूपसे देवताओंको प्रसन्न किया जाता है, वही वषट्कार है । अपवा ‘प्रजापतिश्च वषट्कारश्च’ इस श्रुतिके तथा ‘चारं, चारं, दो, पाँच और दो’ अक्षरवाले मन्त्रोंसे जिनका यजन किया जाता है, वे विष्णुभगवान् सुन्नपर प्रसन्न हों ।’ इस स्मृतिके अनुसार देवता ही वषट्कार है ।

भूत, भव्य (भविष्यत्) और भवत् (वर्तमान) इनका नाम भूतभव्यभवत् है, उनका जो प्रभु हो वह भूतभव्य-भवत्प्रभु कहलाता है । इस देवका सन्मात्रप्रतियोगिक ऐश्वर्य* कालभेदकी

१ ओष्ठावय, २ अस्तु औषट्, ३ यज, ४ ये यजामहे, ५ वषट् ।

॥ ओ ऐश्वर्य केवल सन्मात्र ही है ।

प्रतियोगिकमैश्वर्यमस्येति प्रभुत्वम् ।

उपेक्षा करके रहता है, इसलिये यह प्रभु है ।

रजोगुणं समाश्रित्य विरिञ्चि-
रूपेण भूतानि करोतीति भूतकृत् ।
तमोगुणमास्थाय स रुद्रात्मना
भूतानि कुन्तति कृणोति हिनस्तीति
भूतकृत् ।

रजोगुणका आश्रय लेकर यह ब्रह्मा-
रूपसे भूतोंकी रचना करता है, इस-
लिये भूतकृत् है । अथवा तमोगुणको
स्वीकार कर रुद्ररूपसे भूतोंको काटता
अर्थात् उनकी हिंसा करता है, इसलिये
भूतकृत् है ।

सत्त्वगुणमधिष्ठाय भूतानि
विभर्ति पालयति धारयति पोष-
यतीति वा भूतभृत् ।

सत्त्वगुणके आश्रयसे भूतोंका भरण—
पालन—धारण अथवा पोषण करता
है, इसलिये भूतभृत् है ।

प्रपञ्चरूपेण भवतीति, केवलं
भवतीत्येव वा भावः । भवनं भावः
सत्तात्मको वा ।

प्रपञ्चरूपसे उत्पन्न होता है अथवा
केवल है ही, इसलिये भाव है । उत्पन्न
होनेका नाम भाव है अथवा सत्तामात्र-
को भी भाव कहते हैं ।

भूतात्मा भूतानामात्मान्तर्या-
मीति भूतात्मा 'एष त आत्मान्तर्या-
म्यमृतः' (बृ० उ० ३।७।३-२२)
इति श्रुतेः ।

भूतात्मा—'यह तेरा आत्मा
अन्तर्यामी और अमर है' इस श्रुतिके
अनुसार भूतोंका आत्मा अर्थात्
अन्तर्यामी होनेसे भूतात्मा है ।

भूतानि भावयति जनयति वर्ध-
यतीति वा भूतभावनः ॥ १४ ॥

भूतोंकी भावना करता है अर्थात्
उनकी उत्पत्ति या वृद्धि करता है,
इसलिये भूतभावन है ॥ १४ ॥

पूतात्मा परमात्मा च मुक्तानां परमा गतिः ।

अव्ययः पुरुषः साक्षी क्षेत्रज्ञोऽक्षर एव च ॥ १५ ॥

१० पूतात्मा, ११ परमात्मा, च, १२ मुक्तानां परमा गतिः ।

१३ अव्ययः, १४ पुरुषः, १५ साक्षी, १६ क्षेत्रज्ञः, १७ अक्षरः, एव, च ॥

भूतकृदादिभिर्गुणतन्त्रत्वं प्राप्तं
प्रतिपिच्यते पूतात्मा इति, पूत आत्मा
यस्य स पूतात्मा, कर्मधारयो वा
'केवलो निर्गुणश्च' (श्लो० उ० ६ । ११)
इति श्रुतेः । गुणोपरागः स्वेच्छातः
पुरुषस्येति कल्प्यते ।

परमश्चासावात्मा चेति परमात्मा
कार्यकारणविलक्षणो नित्यशुद्ध-
बुद्धमुक्तस्वभावः ।

मुक्तानां परमा प्रकृष्टा गति-
र्गन्तव्या देवता पुनरावृत्त्यसम्भवा-
त्तद्रतस्येति मुक्तानां परमा गतिः ।

‘मामुपेत्य तु कौन्तेय

पुनर्जन्म न विद्यते ॥’

(गीता ८ । १६)

इति भगवद्वचनम् ।

न व्यति नास्य व्यथो विनाशो

भूतकृत् आदि नामोंसे उसमें गुणा-
धीनताका दोष प्राप्त होता है अतः
अब पूतात्मा (पवित्रस्वरूप) कहकर
उस (दोष) का प्रतिपेध करते हैं ।
पूतात्मा—पवित्र है आत्मा (स्वरूप)
जिसका उसे पूतात्मा कहने हैं अथवा
कर्मधारय समास किया जा सकता है*
'वह केवल और निर्गुण है' इस श्रुति-
में भी यही सिद्ध होता है । पुरुषका
गुणोंके साथ सम्बन्ध स्वेच्छासे ही
माना जाता है ।

जो परम (श्रेष्ठ) हो तथा आत्मा
भी हो, उसका नाम परमात्मा है । वह
कार्य-कारणसे भिन्न नित्य-शुद्ध-बुद्ध-
मुक्त-स्वभाव है ।

मुक्त पुरुषोंकी जो परम अर्थात्
सर्वश्रेष्ठ गति—गन्तव्य देव है वह
मुक्तानां परमा गतिः (मुक्तोंकी परमा
गति) कहलाना है; क्योंकि वहाँ
पहुँचे हुएका फिर लौटना नहीं होता ।
भगवान् ने भी कहा है—‘हे कौन्तेय !
मुझे प्राप्त होकर पुनर्जन्म नहीं
होता ।’

जो वीत नहीं होता अर्थात् जिसका

* तब यह अर्थ होगा—‘जो पवित्र हो और आत्मा भी हो वह पूतात्मा है ।’

विकारो वा विद्यत इति अव्ययः ।
'अजरोऽमरोऽव्ययः' इति श्रुतेः ।

पुरं शरीरं तस्मिन् शेते पुरुषः ।
'नवद्वारं' पुरं पुण्य-
मेतैर्भावैः समन्वितम् ।

व्याप्य शेते महात्मा य-
स्तस्मात्पुरुष उच्यते ॥'
इति महाभारते।(शान्ति० २१.०।३७)

यद्वा अस्तेर्व्यत्यस्ताक्षरयोगात्
आसीत्पुरा पूर्वमेवेति विग्रहं कृत्वा
व्युत्पादितः पुरुषः । 'पूर्वमेवाहमि-
हासमिति तत्पुरुषस्य पुरुषत्वम्'
इति श्रुतेः ।

अथवा पुरुषु भूरिषु उत्कर्ष-
शालिषु मत्त्वेषु सीदतीति, पुरुणि
फलानि सनोति ददातीति वा,
पुरुणि भुवनानि संहारसमये
स्यति अन्तं करोतीति वा,
पूर्णत्वात्पूरणाद्वा सदनाद्वा पुरुषः
'पूरणात्सदनाच्चैव ततोऽसौ पुरुषोत्तमः'
इति पञ्चमवेदे (उद्योग० ७०।११)।

साक्षादव्यवधानेन स्वरूपबोधे-

व्यय—विनाश या विकार नहीं होता
वह अव्यय है। श्रुति कहती है—'अजर
है, अमर है, अव्यय है' इत्यादि ।

पुर अर्थात् शरीर, उसमें जो शयन
करे वह पुरुष कहलाता है। महाभारतमें
कहा है—'वह महात्मा इन पूर्वोक्त
भावोंसे युक्त नौ द्वारवाले पवित्र
पुरको व्याप्त करके शयन करता है
इसलिये यह पुरुष कहलाता है ।'

अथवा अम् धातुके अक्षरोंको
उल्टा करके 'पुरा' शब्दके साथ जोड़-
कर पुरा यानी पहलेसे ही 'आसीत्'
या—ऐसा पदच्छेद मानकर यह 'पुरुष'
शब्द निम्न हुआ है । जैसा कि श्रुति
कहती है—'मैं यही पूर्वमें ही था । यही
उस पुरुषका पुरुषत्व है ।'

अथवा पुरु अर्थात् बहुत-से उत्कर्ष-
शाली सत्त्वों (जीवों) में स्थित है
इसलिये, या अत्रिक फल देता है इस-
लिये, अथवा संहारके समय प्रचुर
भुक्तियोंको नष्ट करता है इसलिये, अथवा
पूर्ण होने, पुरित करने या स्थित होनेके
कारण वह पुरुष है । पञ्चम वेद (महा-
भारत) में भी कहा है 'पूर्ण करने और
स्थित होनेके कारण यह पुरुषोत्तम है ।'

साक्षात् अर्थात् बिना किसी

न ईक्षते पश्यति सर्वमिति साक्षी
'साक्षाद्द्रष्टरि संज्ञायाम्' (पा० सू०
५।२।९१) इति पाणिनिवचनादि-
निप्रत्ययः ।

क्षेत्रं शरीरं जानातीति क्षेत्रज्ञः;
'आतोऽनुपसर्गे कः' (पा० सू० ३।
२।३) इति कप्रत्ययः 'क्षेत्रज्ञं चापि
मां विद्धि' (गीता १३।२) इति
भगवद्भचनात् ।

'क्षेत्राणि हि शरीराणि

बीजं चापि शुभाशुभम् ।

तानि वेत्ति स योगात्मा

ततः क्षेत्रज्ञ उच्यते ॥'

इति महाभारते (शान्ति० ३५१।६) ।

स एव न क्षरतीति अक्षरः
परमात्मा । अश्नातेरश्नोतेर्वा सर-
प्रत्ययान्तस्य रूपमक्षर इति ।

एवकारात् क्षेत्रज्ञाक्षरयोरभेदः
परमार्थतः, 'तत्त्वमसि' (छा० उ०
६।८) इति श्रुतः चकाराद्व्या-
वहारिको भेदश्च, प्रसिद्धेरप्रमाण-
त्वात् ॥ १५ ॥

व्यवधानके अपने स्वरूपभूत ज्ञानसे
सब कुछ देखता है इसलिये साक्षी
है । 'साक्षाद्द्रष्टरि संज्ञायाम्' इस
पाणिनिके वचनसे यहाँ इनि प्रत्यय
हुआ है ।

क्षेत्र अर्थात् शरीरको जानता है
इसलिये क्षेत्रज्ञ है । 'आतोऽनुपसर्गे कः'
इस मूलके अनुसार यहाँ कप्रत्यय
हुआ है । 'क्षेत्रज्ञ भी मुझे ही जान'
भगवान् के इस वचनसे [क्षेत्रज्ञ है] । तथा
महाभारतमें भी कहा है—'शरीर ही
क्षेत्र हैं, शुभाशुभ कर्म उनका बीज
है । वह योगात्मा उन्हें जानता है;
इसलिये क्षेत्रज्ञ कहलाता है ।'

जो क्षर अर्थात् क्षीण नहीं होता,
वह अक्षर परमात्मा है । 'अक्ष' या
'अशृ' धातुके अन्तमें 'सर' प्रत्यय
होनेपर 'अक्षर' रूप बनता है ।

'एव' शब्दसे यह दिखलाया है कि
'तत्त्वमसि' इस श्रुतिके अनुसार
परमार्थतः क्षेत्रज्ञ और अक्षरका अभेद
है तथा चकारसे दोनोंका व्यावहारिक
भेद दिखलाया है, क्योंकि प्रसिद्धि
प्रामाणिक नहीं होती ॥ १५ ॥



योगो योगविदां नेता प्रधानपुरुषेश्वरः ।

नारसिंहवपुः श्रीमान् केशवः पुरुषोत्तमः ॥१६॥

१८ योगः, १९ योगविदां नेता, २० प्रधानपुरुषेश्वरः ।

२१ नारसिंहवपुः, २२ श्रीमान्, २३ केशवः, २४ पुरुषोत्तमः ॥

योगः—

‘ज्ञानेन्द्रियाणि सर्वाणि

निरुध्य मनसा सह ।

एकत्वभावना योगः

क्षेत्रज्ञपरमात्मनोः ॥’

तदवाप्यतया योगः ।

योगं विदन्ति विचारयन्ति,
जानन्ति, लभन्त इति वा योग-
विदस्तेषां नेता ज्ञानिनां योगक्षेम-
वहनादिनेति योगविदा नेता ।

‘तेषां नित्याभियुक्तानां

योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥’

(गाता ९। २२)

इति भगवद्वचनात् ।

प्रधानं प्रकृतिर्माया; पुरुषो जीव-
स्तयोरीश्वरः प्रधानपुरुषेश्वरः ।

नरस्य सिंहस्य चावयवा यस्मिन्
लक्ष्यन्ते तद्वपुर्यस्य स नारसिंहवपुः ।

यस्य वक्षसि नित्यं वसति श्रीः
स श्रीमान् ।

अभिरूपाः केशा यस्य स

योग—

‘मनके सहित समस्त ज्ञानेन्द्रियों-
को रोककर क्षेत्रज्ञ और परमात्माकी
एकत्व-भावनाका नाम योग है ।’
उमसे प्राप्य होनेके कारण परमात्माका
नाम भी योग है ।

जो योगको जानने हैं अर्थात् उसका
विचार करने, उसे जानने या प्राप्त
करने हैं वे योगविद् कहलाते हैं, उन
ज्ञानियोंका योगक्षेमादि निर्याह करनेके
कारण जो नेता है वह योगविदां नेता
(योगवेत्ताओंका नेता) कहलाता है ।
जैसा कि—‘मैं उन नित्ययुक्तोंका
योगक्षेम वहन करता हूँ’ इस
भगवान्के वचनसे सिद्ध होता है ।

प्रधान अर्थात् प्रकृति-माया तथा
पुरुष-जीव उन दोनोंका जो स्वामी
है, वह प्रधानपुरुषेश्वर है ।

जिसमें नर और सिंह दोनोंके
अवयव दिखलायी देने हों ऐसा जिसका
शरीर हो, वह नारसिंहवपुः है ।

जिसके वक्षःस्थलमें सर्वदा श्री
वसती है, वह श्रीमान् है ।

जिसके केश सुन्दर हों उसे केशव

केशवः 'केशाद्वोऽन्यतरस्याम्' (पा० मू० ५।२।१०९) इति वप्रत्ययः प्रशंसायाम्। यद्वा कश्च अथ ईशश्च त्रिमूर्तयः केशास्ते यद्वशेन वर्तन्ते स केशवः केशिवधाद्वा।

'यस्मात्त्वयैव दुष्टात्मा

हतः केशो जनार्दन।

तस्मात्केशवनान्ना त्वं

लोके न्यातो भविष्यसि॥'

इति विष्णुपुराणे (५।१६।

२३) श्रीकृष्णं प्रति नारदवचनम्।

पृषोदरादित्वाच्छब्दसाधुत्वकल्पना।

कहते हैं। यहाँ 'केशाद्वोऽन्यतरस्याम्' इस पाणिनिमूत्रसे प्रशंसा-अर्थमें 'व' प्रत्यय हुआ है। अथवा क (ब्रह्मा), अ (विष्णु) और ईश (महादेव)—ये तीनों मूर्ति ही केश हैं। ये जिनके अधीन हैं वे भगवान् केशव हैं। अथवा केशीका वध करनेके कारण केशव हैं; जैसा कि विष्णुपुराणमें श्रीकृष्णचन्द्रसे नारदजी-का वचन है—'हे जनार्दन ! आपके हाथसे यह दुष्टचित्त केशी मारा गया है, इसलिये आप लोकमें केशव नाम-से प्रसिद्ध होंगे।' पृषोदरादि* गणमें होनेके कारण इस (केशव) शब्दके साधनकी कल्पना की गयी है।

ॐ 'पृषोदरादानि यथोपदिष्टम्' (६।३।१०९) यह पाणिनि-सूत्र है। इसका भाव यह है कि पृषोदर आदि शब्द जिस प्रकार शिष्ट पुरुषोंमें व्यवहार किये गये हैं उसी प्रकार शुद्ध हैं। 'पृषत् और उदर' मिलकर 'पृषोदर' शब्द बनता है। इसमें तकारका लोप और सन्धि रूढिसे हा हुआ है। इसी प्रकार वारिवाहकका बलाहक बनता है। यहाँ नियम जाम्यत, इमशान, उल्लल्ल और पिशाच आदि शब्दोंमें भी है। मनोरमामें भी कहा है 'पृषोदर-प्रकाराणि शिष्टैर्यथोच्चारितानि तथैव साधूनि स्युः' अर्थात् पृषोदर आदि शब्दोंकी शिष्ट पुरुषोंने ज़िम्मा प्रकार उच्चारण किया है वे उसी प्रकार ठीक हैं।

महाभाष्यकारने भी कहा है 'येषु लोपागमवर्णविकाराः श्रूयन्ते न चोच्यन्ते तानि पृषोदरप्रकाराणि' अर्थात् जिनमें वर्णोंके लोप, आगम अथवा विकार सुने जायें किन्तु उनका शास्त्रमें कोई निरूपण न हो, वे शब्द पृषोदर आदिके समान कहे जाते हैं।

केशव शब्द भी नारदके कथनानुसृत 'केशीका वध करनेवाला' इस अर्थके अनुसार केशववधक होना चाहिये, किन्तु पृषोदरादिके समान 'ई' के स्थानपर 'अ' तथा वचके स्थानपर 'व' की कल्पना करके केशव सिद्ध किया गया है। इसी प्रकार अन्य अर्थोंमें भी केशव शब्दका प्रयोग शुद्ध है।

पुरुषाणामुत्तमः पुरुषोत्तमः अत्र
'न निर्धारणे' (पा० मू० २।२।१०)
इति पृष्ठीसमासप्रतिषेधो न भवति
जात्याद्यनपेक्षया समर्थत्वान् ।
यत्र पुनर्जातिगुणक्रियापेक्षया
पृथक्क्रिया तत्राममर्थत्वा-
न्निषेधः प्रवर्तते: यथा—मनुष्याणां
क्षत्रियः शूरतमः, गवां कृष्णा गौः
सम्पन्नक्षीरतमा, अध्वगानां धावन्
शीघ्रतम इति । अथवा पञ्चमी-
समासः तथा च भगवद्वचनम्—

‘यस्मात्क्षरमर्तानोऽह-

मक्षरादपि चोत्तमः ।

अतोऽस्मि लोके वेदे च

प्रथितः पुरुषोत्तमः ॥’

(गीता १५।१८)

पुरुषोत्तमो उत्तमको पुरुषोत्तम कहते
हैं । यहाँ ‘न निर्धारणे’ इस सूत्रके
अनुसार पृष्ठी समासका प्रतिषेध नहीं
होता, क्योंकि यहाँ किमी जाति, गुण
और क्रियाकी अपेक्षा न होनेसे समास-
विधानका सामर्थ्य है [अतएव यहाँ पृष्ठी
समासके प्रतिषेधका नियम नहीं लग
सकता] जहाँ जाति, गुण और क्रियाकी
अपेक्षामे किमीका समुदायमे पृथक्करण
होता है वहाँ सामर्थ्य न होनेसे यह
निषेधवचन लागू होता है; जैसे—मनुष्यों-
मे क्षत्रिय सबमे अधिक शूरवीर होता है,
गाँवोंमे कृष्णा गौं स्वादिष्ट दधवाली
होती है, यात्रियोंमे दौड़नेवाला सबसे
तेज होता है । *अथवा यहाँ [पुरुषोत्तमे श्रेष्ठ
—ऐसा] पञ्चमी समास समझना चाहिये;
जैसा कि भगवानका वचन है—‘मैं क्षर-
से परे और अक्षरसे भी उत्तम हूँ,
इसलिये लोक और वेदमें पुरुषोत्तम
नामसे प्रसिद्ध हूँ’ ॥१६॥

सर्वः शर्वः शिवः स्थाणुर्भूतादिर्निधिरव्ययः ।

सम्भवो भावनो भर्ता प्रभवः प्रभुरीश्वरः ॥१७॥

ॐ इन वाक्योंमें क्षत्रिय जाति, कृष्ण गुण तथा दौड़ना क्रियाके द्वारा क्रमशः
मनुष्य, गौ और यात्रीसमुदायमे व्यक्ति-विशेषकी पृथक्ता बतलायी गयी है । इसलिये
यहाँ वही समास नहीं हो सकता । परन्तु पुरुषोत्तम शब्दमें यह बात नहीं है ।

२५ सर्वः, २६ शर्वः, २७ शिवः, २८ स्थाणुः, २९ भूतादिः, ३० निधिः अव्ययः ।
३१ सम्भवः, ३२ भावनः, ३३ भर्ता, ३४ प्रभवः, ३५ प्रभुः, ३६ ईश्वरः ॥

‘असत्तत्र सतश्चैव

‘असत् और सत् सबकी उत्पत्ति,

सर्वस्य प्रभवाप्ययात् ।

स्थिति और प्रलयका स्थान होने तथा

सर्वस्य सर्वदा ज्ञाना-

सर्वदा सबको जाननेके कारण इसे

‘सर्वमेतत् प्रचक्षते ॥’

सर्व कहते हैं’ भगवान् व्यासके इस

(महा० उपांग० ७० । ११)

इति भगवद्व्यासवचनान् सर्वः ।

वचनानुसार भगवान् सर्व हैं ।

भृणानि मंहारममये मंहरति

ममस्त प्रजाको शीर्ण करने अर्थात्

मंहारयति मकलाः प्रजाः इति सर्वः ।

प्रलयका मे मंहार करने या कराने

२. इसलिये शर्व हैं ।

निर्ऋगुण्यतया शुद्धत्वात् शिवः

तत्त्वों गुणोंमें रहित होनेके कारण

‘म ब्रह्मा म शिवः’ । (वै० उ० ८)

शुद्ध होनेमें शिव हैं । ‘यह ब्रह्मा ऐं ब्रह्म

इत्यभेदोपदेशाच्छिलादिनामभिर्ह-

शिव है’ इस प्रकार अभेद वतलानेके

रिरेव स्मृतं ।

कारण शिव आदि नामोंमें भी हरिर्होती

स्मृति का जाता है ।

स्थिरत्वात् स्थाणुः ।

स्थिर होनेके कारण स्थाणु है ।

भूतानामादिकारणत्वाद् भूतादिः ।

भूतोंके आदिकारण होनेसे

भूतादि हैं ।

प्रलयकालेऽस्मिन्मर्व निर्धायत इति

प्रलयकालमें सब प्राणी इन्हींमें

निधि । ‘कर्मण्यधिकरणे च’ । पा०

भित होते हैं, इसलिये निधि है ।

सू० ३ । ३ । १० । ३ इति किप्रत्ययः ।

‘कर्मण्यधिकरणे च’ इस सूत्रके अनु-

सार यहाँ किप्रत्यय हुआ है । उस

स एव निधिविशेष्यते—अन्यथ-

निधि शब्दको ही [अव्ययरूप विशेषण-

में] विशिष्ट करते हैं—वह अव्यय

अविनाश्वरो निधिरित्यर्थः ।

अर्थात् अविनाशी निधि हैं ।

स्वेच्छया समीचीनं भवन- अपनी इच्छासे भली प्रकार उत्पन्न
मस्येति सम्भवः 'धर्मसंस्थापनार्थाय' होने हैं, इसलिये सम्भव हैं । भगवान्‌के
सम्भवामि युगे युगे' (गीता ४ । ८) ये वचन भी हैं—'मैं धर्मकी स्थापना
इति भगवद्वचनात् । करनेके लिये युग-युगमें उत्पन्न
'अथ दृष्टविनाशाय होता हूँ' तथा 'मैं दुष्टोंका नाश करनेके
साधना रक्षणाय च । लिये और साधुओंकी रक्षाके लिये
स्वेच्छया सम्भवाम्येवं इसी प्रकार अपनी इच्छासे गर्भ-
गर्भदुःखविरजितः ॥' दुःखके बिना ही उत्पन्न होता हूँ ।'
इति च ।

सर्वेषां भोक्तॄणां फलानि भावयतीति समस्त भोक्ताओंके फलोंको उत्पन्न
मानन् सर्वफलदातृत्वम् 'समस्त करने हैं, इसलिये भावयतीति । 'फलमन
उत्पत्तेः' [ब्रह्मसूत्रके] 'इमं सूत्रं उपपत्तेः' (ब्र० सू० ३ । २ । ३८) भगवान्‌के सर्वफलदातृत्वका प्रतिपादन
इत्यत्र प्रतिपादितम् । किया गया है ।

प्रपञ्चस्याधिष्ठानत्वेन भगणात् अधिष्ठानरूपसे प्रपञ्चका भरण
भर्ता । करनेके कारण भर्ता हैं ।

प्रकर्षेण महाभूतानि अस्माज्जा- समस्त महाभूत भर्त्या प्रकार उन्हेंसे
यन्त इति प्रभवः प्रकृष्टो भवो उत्पन्न होते हैं इसलिये वे प्रभव हैं ।
जन्मास्येति वा । अथवा उनका भव यानी जन्म प्रकृष्ट
(दिव्य) हैं, इसलिये वे प्रभव हैं ।

सर्वासु क्रियामु सामर्थ्यानि समस्त क्रियाओंमें उनकी सामर्थ्य-
शायान् प्रभुः । की अधिकता होनेके कारण वे प्रभु हैं ।

निरुपाधिकमैश्वर्यमस्येति ईश्वरः भगवान्‌का ऐश्वर्य उपाधिग्रहित है,
'एष सर्वेश्वरः' (माण्डू० ६) इति अतः वे ईश्वर हैं; जैसा कि श्रुति भी
श्रुतेः ॥१७॥ कहती हैं 'यह सर्वेश्वर है' ॥१७॥



स्वयम्भूः शम्भुरादित्यः पुष्कराक्षो महास्वनः ।

अनादिनिधनो धाता विधाता धातुरुत्तमः ॥ १८ ॥

३७ स्वयम्भूः, ३८ शम्भुः, ३९ आदित्य, ४० पुष्कराक्षः, ४१ महास्वनः ।

४२ अनादिनिधनः, ४३ धाता, ४४ विधाता, ४५ धातुरुत्तमः ॥

स्वयमेव भवतीति स्वयम्भू 'म स्वयं ही होते हैं, इसलिये स्वयम्भू एव स्वयमुद्भू' (मनु० १।७) इति है; मनुजाने कहा है कि 'वही स्वयं मानवं वचनम् । सर्वेषामुपरि भवति उत्पन्न हुआ ।' अथवा 'मवके ऊपर है या स्वयं होते हैं इसलिये स्वयं भवतीति वा स्वयम्भूः । येषा- स्वयम्भू है । जिनके ऊपर होते हैं या म्भुपरि भवति यश्चोपरि भवति तदु- जो ऊपर होते हैं-इन दोनों रूपसे मयात्मना स्वयमेव भवतीति वा स्वयं ही प्रकट होते हैं, इसलिये 'परिभूः स्वयम्भू' (२० ३० ८) इति स्वयम्भू है; जैसा कि यह मन्त्रवर्ण है- मन्त्रवर्णान् । अथवा स्वयम्भूः 'मय ओर होनेवाला, स्वयं होनेवाला है' अथवा 'स्वयम्भू परमेश्वरः स्वयमेव स्वतन्त्रो भवति (परमात्मा) ने इन्द्रियोंको बहिर्मुख न परतन्त्रः, 'परमिगानि न्य-गुणत् यनाकर उन्हें नष्ट कर दिया' स्वयम्भू' (क० ३० २।४।१) इम मन्त्रवर्णके अनुसार स्वयम्भू इति मन्त्रवर्णान् । परमात्मा स्वयम अर्थात् स्वतन्त्र होते है, परतन्त्र नहीं ।

शं सुखं भक्तानां भावयतीति शम्भुः ।

भक्तोंके लिये सुखकी भावना— उपनि करने है इसलिये शम्भु है ।

आदित्यमण्डलान्तःस्थो हिर-
ण्मयः पुरुषः आदित्यः द्वादशादि-
त्येषु विष्णुर्वा 'आदित्यानामहं विष्णु'
(गीता १०।२१) इत्युक्तेः ।

आदित्यमण्डलमे स्थित हिरण्मय पुरुषका नाम आदित्य है । अथवा 'आदित्योंमें मैं विष्णु हूँ' इस भगव-
दुक्तिसे द्वादश*आदित्योंमें विष्णु नामक

* द्वादश आदित्योंके नाम ये हैं—शक्र, अयमा, धाता, स्वहा, पूषा, विव-
स्वान्, सविता, मिथ, वरुण, अंशुमान्, भग और विष्णु ।

अदिनेरखण्डिताया मक्षा अयं पति-
रिति वा 'इयं वा अदितिः' 'महीं देवी
विष्णुपत्नीम्' इति श्रुतेः । यथादित्य
एक एवानेकेषु जलभाजनेषु अनेक-
वत्प्रतिभासते, एवमनेकेषु शरीरेषु
एक एवान्मानेकवत्प्रतिभासत इति ।
आदित्यमाधर्म्याढ्या आदित्यः ।

पुष्करेणोपमिते अक्षिणी यम्येति
पुष्कराक्षः ।

महानूर्जितः म्यनो नादो वा
श्रुतिलक्षणो यस्य म महास्वनः
'सनमहत्' (पा० मृ० २ । १ ।
६१) इत्यादिना समासे कृते
'आन्महतः समानाधिकरणजातीययोः'
(पा० मृ० ६ । ३ । ४६) इत्यात्वम्
'अस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेत-
द्वेदो यजुर्वेद' (वृ० उ० २ । ४ । १०)
इति श्रुतेः ।

आदिर्जन्मः; निधनं विनाशः;
तद्द्वयं यस्य न विद्यते सः अनादि-
निधनः ।

अनन्तादिरूपेण विश्वं विमर्तीति
धाता ।

आदित्यको आदित्य कहा गया है ।
अथवा 'यह अदिति है' 'विष्णु-पत्नी
भगवतो पृथिवीको' इस श्रुतिके अनुसार
भगवान् विष्णु अदिति अर्थात् अखण्डिता
पृथिवीके पति हैं इसलिये आदित्य हैं ।
अथवा, जैसे एक ही आदित्य अनेक
जलपात्रोमे प्रतिबिम्बित होकर अनेक-
सा प्रतीत होता है वैसे ही एक ही आत्मा
अनेक शरीरोमे अनेक-सा जान पड़ता
है । इस प्रकार आदित्यकी समताके
कारण आदित्य है ।

जिनके नेत्र पुष्कर (कमल) की
उपमावाटे है वे भगवान् पुष्कराक्ष हैं ।

भगवान्का वेदरूप अति महान्
स्वर या घोष होनेके कारण वे महाम्ब्वन
हैं; जैसा कि श्रुति कहती है 'इस
महाभूतके ऋग्वेद और यजुर्वेद श्वास-
प्रश्वास हैं' 'सनमहत्' 'इत्यादि सूत्र-
मे समास करनेपर 'आन्महतः समाना-
धिकरणजातीययोः' इस नियमके
अनुसार महत्के तकारको आ आदेश
हुआ है ।

जिनके आदि-जन्म और निधन-
विनाश ये दोनों नहीं हैं वे भगवान्
अनादिनिधन हैं ।

अनन्त (शेषनाग) आदिके रूपमे विश्व-
को धारण करते हैं, इसलिये धाता हैं ।

कर्मणां तत्फलानां च कर्ता । कर्म और उसके फलोंकी रचना विधाता । करने हैं, इसलिये विधाता हैं ।

अनन्तादीनामपि धारकन्वाटि- अनन्तादिकोंको भी धारण करने हैं, शेषेण दधातीति वा धातुरुत्तम अथवा विशेषरूपमें सबको धारण करने हैं, इसलिये धातुरुत्तम है । यह इति नामैकं मविशेषणं मामाना- समानाधिकरणरूपमें विशेषणमहित एक नाम है । तात्पर्य यह है कि धिकरण्येनः सर्वधातुभ्यः पृथिव्या- चिदातु पृथिव्या आदि समस्त धातुओं- दिभ्य उत्कृष्टश्चिदातुरित्यर्थः । धातु (धारण करनेवाले) में श्रेष्ठ है । अथवा विरिञ्चेरुत्कृष्ट इति वा वैयधि- नाता- ब्रह्माने भी श्रेष्ठ है, इस प्रकार न्यधिकरणरूपमें विशेषणमहित एक कर्ण्येन । नाम है ।

नामद्वयं वाः कार्यकारणप्रपञ्च- अथवा दो नाम ममझे जायँ तो धारणाच्चिदेव धातुः । उत्तमः कार्य-कारणरूप सम्पूर्ण प्रपञ्चको धारण करनेके कारण चेतनको ही 'धातु' सर्वपाशुद्वेष्टानामतिशयेनोद्वेष्टत्वा- कहा है और वह समस्त उत्कृष्ट पदार्थोंमें दुत्तमः ॥ १८ ॥ अत्यन्त श्रेष्ठ होनेके कारण 'उत्तम' है [ऐसा अर्थ करना चाहिये] ॥ १८ ॥

अप्रमेयो ह्योक्तेः पद्मनाभोऽमरप्रभुः ।

विश्वकर्मा मनुस्त्वष्टा स्थविष्ठः स्थविरो ध्रुवः ॥ १९ ॥

४६ अप्रमेयः, ४७ ह्योक्तेः, ४८ पद्मनाभः, ४९, अमरप्रभुः ।

५० विश्वकर्मा, ५१ मनुः, ५२ त्वष्टा, ५३ स्थविष्ठः, ५४ स्थविरो ध्रुवः ॥

शब्दादिरहितत्वाच्च प्रत्यक्ष- शब्दादिरहित होनेके कारण भगवान् गम्यः । नाप्यनुमानविषयः, प्रत्यक्षप्रमाणके विषय नहीं है, व्याप्य

तद्व्याप्तलिङ्गाभावात् । नाप्युपमान-
सिद्धः, निर्भागत्वेन सादृश्याभावात् ।
नाप्यर्थोपपत्तिग्राह्यः, तद्विनानुपपद्य-
मानस्यासम्भवात् । नाप्यभाव-
गोचरं भावत्वेन सम्मतत्वात् ।
अभावमाश्रित्वाच्च न पटुप्रमाणस्य ।
नापि शास्त्रप्रमाणवेद्यः प्रमाणजन्या-
तिशयाभावात् । यद्येवं शास्त्रयोनि-
त्वं कथम् ? उच्यते प्रमाणादि-
साक्षित्वेन प्रकाशस्वरूपस्य प्रमाणा-
विषयत्वेऽपि अध्यस्तानद्रूप-
निवर्तकत्वेन शास्त्रप्रमाणकत्वमिति
अप्रमेयः साक्षिरूपत्वाद्वा ।

हृषीकाणीन्द्रियाणि; तेषामीशः
क्षेत्रज्ञरूपभाक् । यद्वा, इन्द्रियाणि
यस्य वशे वर्तन्ते स परमात्मा
हृषीकेशः यस्य वा सूर्यरूपस्य
चन्द्ररूपस्य च जगत्प्रीतिकरा हृष्टाः
केशा रश्मयः स हृषीकेशः; 'सूर्यगम्भि-

रिङ्गका अभाव होनेसे अनुमानके भी
विषय नहीं है, भागरहित होनेसे
मदशताका अभाव होनेके कारण वे
उपमानमे भी सिद्ध नहीं हो सकते,
भगवान्‌के बिना कोई अनुपपद्यमान
नहीं है इसलिये वे अर्थोपपत्ति
प्रमाणके भी विषय नहीं हैं और भावरूप
माने जानेमें तथा अभावके भी साक्षी
होनेमें अभाव नामक लठे प्रमाणसे
भी नहीं जाने जा सकते । तथा
प्रमाणजन्य अतिशयका अभाव होनेके
कारण वे शास्त्र प्रमाणमें भी जानने
योग्य नहीं हैं । यदि ऐसी बात है
तो उनमें शास्त्रयोनिष्य क्यों वर्तयाया
गया है ? [ऐसी शङ्का होनेपर] कहते
हैं—प्रमाणादिके भी साक्षी होनेके
कारण प्रकाशस्वरूप भगवान्‌ प्रमाणके
विषय न होनेपर भी अध्यस्त जगत्‌का
अनात्मरूपमे वाच कर देनेसे शास्त्र-
प्रमाणित हैं । इसलिये, अथवा साक्षी
होनेके कारण वे अप्रमेय हैं ।

हृषीक इन्द्रियोंको कहते हैं, क्षेत्रज्ञ-
रूप उनका स्वामी अथवा इन्द्रियों जिनके
अधीन हैं वह परमात्मा हृषीकेश है ।
या जिस सूर्य अथवा चन्द्रमाके
भगवान्‌के संसारको प्रफुल्लित करने-
वाले किरणरूप केश हृष्ट अर्थात् खिले

हरिकेशः पुरस्तात्' इति श्रुतेः । 'हुण' हैं वे हृषीकेश हैं; जैसा कि पृषोदरादि-त्वात्साधुत्वम् । यथोक्तं श्रुति कहती है—'सूर्यकी किरणें आगेकी ओर हरिकेश हैं।' [हृष्टकेश-

'सूर्याचन्द्रमसौ शश्व-

दंशुभिः केशमंजिनैः ।

बोधयन् स्वापयन्चैव

जगद्गुणिष्ठे पृथक् ॥

'बोधना'स्वापनार्थं च

जगतां हर्षणं भवेत् ।

अस्मीषोमकृतेरेवं

कर्मभिः पाण्डुनन्दन ।

हृषीकेशो महेशानो

वरदो लोकभावन ॥'

(महा० शांति० ३४२ । ६६-६७)

इति ।

सर्वजगत्कारणं पद्मं नामौ

यस्य स पद्मनाभः, 'अजम्य नाभावध्ये-

कमर्पितम्' इति श्रुतेः । पृषोदरादि-

त्वात्साधुत्वम् ।

अमराणां प्रभुः अमरप्रभु ।

विश्वं कर्मक्रिया यस्य स विश्वकर्मा

क्रियत इति जगत्कर्म विश्वं कर्म

के स्थानमें। 'हृषीकेश' शब्द पृषोदरादि-
गणमें होनेके कारण सिद्ध होता है;
जैसा मांशधर्ममें कहा है—'सूर्य और
चन्द्रमा अपनी केश नामकी किरणोंसे
संसारको जगाते और सुलाते हुए
उसमें अलग उदित होते हैं। उनके
जगाने और सुलानेमें संसारको हर्ष
होता है। हे पाण्डुनन्दन ! इस प्रकार
अग्नि और चन्द्रमाके किये हुए कर्मोंके
करनेसे लोक-भावन वरदायक
महेश्वर हृषीकेश कहलाते हैं ।'

जिसकी नाभिमें जगत्का कारण-
रूप पद्म स्थित है वे भगवान् पद्मनाभ
हैं । श्रुति कहती है—'अजकी नाभिमें
एक (पद्म) अर्पित है ।' पृषोदरादिगणमें
होनेके कारण [पद्मनाभके स्थानमें]
पद्मनाभ शब्द सिद्ध होता है ।

अमरों (देवताओं) के प्रभु होनेसे
अमरप्रभु हैं ।

विश्व (सब) जिसका कर्म अर्थात्
क्रिया है उसे विश्वकर्मा कहते हैं ।

अर्थात्, किया जाता है इसलिये जगत्

यस्येति वा, विचित्रनिर्माणशक्ति- । कर्म है । वह विश्वरूप कर्म जिनका है
मन्वाद्वा विश्वकर्मा; त्वष्टा । उन्हें विश्वकर्मा कहते हैं । अथवा विचित्र
सादृश्याद्वा । निर्माणशक्तिसे युक्त होनेके कारण भगवान्
विश्वकर्मा है । अथवा त्वष्टाके *ममानहोने-
के कारण भगवान्का नाम विश्वकर्मा है ।

मननात् मनुः । 'नान्योऽनोऽस्ति मनन करनेके कारण मनु है; जैसा
मन्ता' (वृ० उ० ३।७।२३) इति कि श्रुति कहती है - 'इससे पृथक्
श्रुतः । मन्त्रो वा प्रजापतिर्वा मनुः । कोई और मनन करनेवाला नहीं है'
अथवा मन्त्र या प्रजापतिरूपसे भगवान्-
का नाम मनु है ।

संहारसमये सर्वभूततनूकरण- । संहारके समय समस्त प्राणियोंको
त्वान् त्वष्टा त्वक्षतेस्तनूकरणार्थात् तनु (क्षीण) करनेके कारण वे त्वष्टा
हैं । यहाँ तनूकरण अर्थात् त्वक्ष-
तृच्प्रत्ययः । वातुसे तृच् प्रत्यय हुआ है ।

अतिशयेन स्थूलः स्थविष्ठः । अतिशय स्थूल होनेसे स्थविष्ठ हैं ।
पुराणः स्थविरः 'त्वेकं त्वस्य पुराणका नाम स्थविर है । ब्रह्मवृच
स्थविरस्य नाम' इति ब्रह्मचाः; वयो- कहते हैं 'इस स्थविरका एक नाम है ।'
वचनो वा स्थिरत्वाद् ध्रुवः स्थविरो अथवा आयुवाचक स्थविर (वृद्धावस्था)
ध्रुव इत्येकमिदं नाम सविशेषणम् मे तात्पर्य है । स्थिर होनेके कारण
॥१९॥ ध्रुव हैं । इन प्रकार यह स्थविर ध्रुव
विशेषणयुक्त एक नाम है ॥१९॥

—०००—

अग्राह्यः शाश्वतः कृष्णो लोहिताक्षः प्रतर्दनः ।

प्रभूतस्त्रिकुब्धाम पवित्रं मङ्गलम्परम् ॥२०॥

ॐ त्वष्टा नामक देवताको विश्वकर्मा भी कहते हैं ।

५५ अप्राद्यः, ५६ शाश्वतः, ५७ कृष्णः, ५८ लोहिताक्षः, ५९ प्रतर्दनः ।

६० प्रभूतः, ६१ त्रिककुब्जाम, ६२ पवित्रम्, ६३ महत्त्वं परम् ॥

कर्मन्दित्र्येन गृह्यते इति अप्राद्य
'यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा
सह' (ना० उ० २ । ९) इति
श्रुतेः ।

अश्वत् सर्वेषु कालेषु भवतीति
शाश्वतः, 'शाश्वतं शिवमच्युतम्'
(ना० उ० १३ । १) इति श्रुतेः ।

'कृषिर्मवाचकः अश्वो
णश्च निर्वृतिवाचकः ।
विष्णुस्तद्वाचयोगाच्च
कृष्णो भवति शाश्वतः ॥'
(महा० उद्योग० ७० । ५)

इति व्यामवचनान् सच्चिदानन्दा-
त्मकः कृष्णः ।

कृष्णवर्णान्मकन्वाढा कृष्णः ।
'कृषामि पृथिवी पार्थ
भवत्वा कृष्णायमो हवः ।
कृष्णो वर्णश्च मे गरमा-
त्समाकृष्णोऽहमर्जुन ॥'
इति महाभारते । (आन्ति० ३४२ । ७०)

लोहिते अक्षिणी यस्येति लोहि-
ताक्षः 'असावृषमो लोहिताक्षः' इति
श्रुतेः ।

'जिसे प्राप्त न करके मनसहित
चाणी लौट आती है' इस श्रुतिके
अनुसार कर्मन्दित्र्येण ग्रहण नहीं किये
जा सकते, इस कारण भगवान् अप्राद्य हैं।

जो अश्वत् अर्थात् सब कालमें
हो उसे शाश्वत कहते हैं । श्रुति कहती
है 'शाश्वत शिव और अच्युत है ।'

'कृष्' शब्द सत्ताका वाचक है ।
और 'ण' आनन्दका । श्रीविष्णुमें ये
दोनों भाव हैं, इसलिये वे सर्वदा कृष्ण
कहलाते हैं । इस व्यामर्जीके वाक्यानुसार
सच्चिदानन्दस्वरूप भगवान् ही कृष्ण हैं ।

अथवा कृष्णवर्ण होनेमें कृष्ण है ।
महाभारतमें कहा है—'हे पार्थ ! मैं
काले लोहेका हल होकर पृथिवीको
जानता हूँ, तथा मेरा वर्ण कृष्ण है;
इसलिये हे अर्जुन ! मैं कृष्ण हूँ ।'

जिनके लोहिन (लाल) नेत्र हों वे
भगवान् लोहिताक्ष कहलाते हैं । श्रुति
कहती है—'वह थोड़ा लाल आँखों-
वाला है ।'

प्रलये भूतानि प्रतर्दयति हिन-
नीति प्रतर्दनः ।

ज्ञानैश्वर्यादिगुणैः सम्पन्नः
प्रभूतः ।

ऊर्ध्वाधोमध्यभेदेन तिसृणां
ककुभामपि धामेति त्रिककुब्धाम
इत्येकमिदं नाम ।

येन पुनानि यो वा पुनानि
ऋषिर्देवता वा तन् पवित्रम् 'पुत्र
संज्ञायाम्' (पा० मृ० ३ । २ । १८५)
'कर्तारि चर्षिर्देवतयोः' (पा० मृ० ३ ।
२ । १८६) इति भगवत्पाणिनि-
स्मरणान् इव प्रत्ययः ।

'अशुभानि निगच्छे
तन्तानि शुभमन्ततिम् ।

स्मृतिमात्रेण यत्पुंसा
ब्रह्म तन्महलं विदुः ॥'

इति श्रीविष्णुपुराणवचनान्
कल्याणरूपत्वाद्वा मङ्गलम् । परं
सर्वभूतभ्यः उत्कृष्टं ब्रह्म ।
महलं परम इत्येकमिदं नाम
सविशेषणम् ॥२०॥

प्रलयकालमे प्राणियोंकी तर्दना
अर्थात् हिमा करने हैं इसलिये भगवान्
प्रतर्दन हैं ।

ज्ञान, ऐश्वर्य आदि गुणोंसे सम्पन्न
होनेसे भगवान् प्रभूत हैं ।

ऊपर, नीचे और मध्य-भेद-वासी
तीनों ककुभो (दिशाओं) के धाम
(आश्रय) हैं, इसलिये भगवान्
त्रिककुब्धाम हैं । यह एक नाम है ।

त्रिमके द्वारा पवित्र किया जाय
अथवा जो पवित्र करे उस ऋषि या
देवताका नाम पवित्र है । यथा 'पुत्रः
संज्ञायाम्' 'कर्तारि चर्षिर्देवतयोः' इन
पाणिनि-मूत्रोंके अनुसार पृ धातुसे इव
प्रत्यय हुआ है ।

'जो स्मरणमात्रसे पुरुषोंके
अशुभोंको दूर कर देता है और शुभों-
का विस्तार करता है उस ब्रह्मकी
[ज्ञानीजन] मङ्गल समझते हैं ।'
श्रीविष्णुपुराणके इस वचनके अनुसार
कल्याणरूप होनेसे भगवानका नाम
मङ्गल है । समस्त भूतोंसे उत्तम होनेके
कारण ब्रह्म पर है । इस प्रकार मङ्गल
परम यह विशेषणयुक्त एक नाम है ॥२०॥

ईशानः प्राणदः प्राणो ज्येष्ठः श्रेष्ठः प्रजापतिः ।

हिरण्यगर्भो भृगर्भो माधवो मधुसूदनः ॥२१॥

६४ ईशानः, ६५ प्राणदः, ६६ प्राणः, ६७ ज्येष्ठः, ६८ श्रेष्ठः, ६९ प्रजापतिः ।

७० हिरण्यगर्भः, ७१ भृगुर्भः, ७२ माधवः, ७३ मधुसूदनः ॥

सर्वभूतनियन्तृत्वात् ईशानः ।

सर्वभूतोंके नियन्ता होनेके कारण भगवान् ईशान है ।

प्राणान् ददाति चेष्टयतीति वा

प्राणद 'को येवा-यात्कः प्राण्यान्'

(तै० ३० २। ७) इति श्रुतेः । यद्वा,

प्राणान् कालात्मना द्यति खण्डय-

तीति प्राणदः, प्राणान्दीपयति

शोधयतीति वा, प्राणान् ददाति

लुनातीति वा प्राणदः ।

प्राणोंको देते अथवा चेष्टा करने हैं, इसलिये प्राणद है । श्रुति कहती है—

‘[यदि ईश्वर न हो तो] कौन अपान-क्रिया करावे और कौन प्राणक्रिया करावे?’ अथवा कालरूपसे प्राणोंको दलित अर्थात् खण्डित करने हैं इसलिये प्राणद है । अथवा प्राणोंको दीप्त या शुद्ध करने हैं अथवा उन्हें उल्लिख अर्थात् नष्ट करते हैं इसलिये प्राणद है ।

प्राणितीति प्राणः क्षेत्रज्ञः

परमात्मा वा, ‘प्राणस्य प्राणम्’ (बृ०

उ० ४। ४। १८) इति श्रुतेः ।

मुख्यप्राणो वा ।

‘जो प्राणन करे अर्थात् स्वास-प्रश्वास ले उसका नाम प्राण है’ इस व्युत्पत्तिसे क्षेत्रज्ञ या परमात्माका नाम प्राण है । इस विषयमें ‘बह प्राणका भी प्राण है’—यह श्रुति प्रमाण है, अथवा यहाँ मुख्य प्राणहीको प्राण कहा है ।

वृद्धतमो ज्येष्ठः ‘ज्य च’ (पा० मृ०

५। ३। ६१) इत्यधिकारे ‘वृद्धस्य च’

(पा० मृ० ५। ३। ६२) इति वृद्ध-

शब्दस्य ज्यादेशविधानान् ।

अधिक वृद्धको ज्येष्ठ कहते हैं, क्योंकि ‘ज्य च’ इस मूत्रके अधिकारमें पठित ‘वृद्धस्य च’ इस पाणिनिमूत्रके अनुसार वृद्ध शब्दको ज्य आदेश किया गया है ।

प्रशस्यतमः श्रेष्ठः 'प्रशस्यस्य श्रः' ।
(पा० सू० ५ । ३ । ६०) इति
श्रादेशविधानात् । 'प्राणो वाय
उग्रश्च श्रेष्ठश्च' (ता० उ० ५ । १ ।
१) इति श्रुतेः मुख्यप्राणो वा,
'श्रेष्ठश्च' (ब्र० सू० २ । ४ । ८)
इत्यधिकरणमिद्वत्त्वात् । सर्वकारण-
त्वाद्वा ज्येष्ठः, सर्वातिशयत्वाद्वा
श्रेष्ठः ।

ईश्वरत्वेन सर्वाणां प्रजानां पतिः
प्रजापति ।

हिरण्यगर्भान्तर्गतत्वात् हिरण्य-
गर्भो ब्रह्मा विरिञ्चिः तदान्मा, 'हिरण्य-
गर्भः समवर्तताम्रे' (ऋ० सं० १० ।
१२१ । १) इति श्रुतेः ।

भूर्गर्भे यस्य स भूगर्भः ।

मायाः श्रियः धवः पतिः माधवः ;
मधुविद्यावत्राध्यत्वाद्वा माधवः ।

'मौनाद्भयानाच्च योगाच्च

विद्धि भारत माधवम् ।'

(महा० उद्योग० ७० । ४)

इति व्यासवचनाद्वा माधवः ।

सबसे अधिक प्रशंसनीयका नाम
श्रेष्ठ है । क्योंकि वहां 'प्रशस्यस्य श्रः'
इस सूत्रसे प्रशस्यको श्र आदेश हुआ
है । अथवा 'प्राण ही ज्येष्ठ और श्रेष्ठ है'
इस श्रुतिके अनुसार मुख्य प्राण ही
[ज्येष्ठ और श्रेष्ठ] है । क्योंकि 'श्रेष्ठश्च'
इस ब्रह्मसूत्रके अधिकरणमें यह बात
सिद्ध की गयी है । अथवा सबका कारण
होनेमें परमात्माका नाम ज्येष्ठ तथा सबसे
बड़ा-चढ़ा होनेके कारण श्रेष्ठ है ।

ईश्वररूपसे सब प्रजाओंके पति है,
इन्द्रिये प्रजापति है ।

ब्रह्माण्डरूप हिरण्यमय अण्डके भीतर
व्याप्त होनेके कारण सृष्टिकर्ता ब्रह्मा
हिरण्यगर्भ है उनके आत्मस्वरूप होनेसे
भगवान् हिरण्यगर्भ हैं; क्योंकि श्रुति
कहती है 'पहले हिरण्यगर्भ ही था ।'

पृथिवी जिनके गर्भमें स्थित हैं वे
भगवान् भूगर्भ हैं ।

मा अर्थात् लक्ष्मीके धव यानी पति
होनेसे भगवान् माधव हैं । अथवा
[गृहदारण्यक श्रुतिमें कही गयी] मधु-
विद्याद्वारा जानने योग्य होनेके कारण
माधव हैं । अथवा 'हे भारत ! मौन,
ध्यान मौन योगसे तू भगवान् माधव-
का साक्षात्कार कर' इस व्यासजीके
कथनानुसार भगवान् माधव हैं ।

मधुनामानमसुरं सृदितवान् इति	भगवान्ने मधु नामक दैत्यको मारा
मधुसूदनः ।	था इमलियेवे मधुसूदन हैं । महाभागत्वे
‘कर्णमिश्राद्भवं चापि	कहा है—‘श्रीपुरुषोत्तमने ब्रह्माजीको
मधुनाममहासुरम् ।	आकर देते हुए कानके मैलसे उत्पन्न
‘ब्रह्मणोऽपचितिं कुर्वन्	हुए मधु नामक दैत्यको मारा था । हे
जघान पुरुषोत्तमः ॥	तात ! उसके घथके कारण ही देवता,
‘तस्य तात वधादेव	दानघ, मनुष्य और क्रियोंने श्री-
देवदानवमानवाः ।	जनार्दनको ‘मधुसूदन’ कहा ॥२१॥
मधुसूदन इत्याहु-	
‘ऋषयश्च जनार्दनम् ॥’	
(महा० भा०म० ६७।१४-१६)	
इति महाभारते ॥२१॥	

ईश्वरो विक्रमी धन्वी मेधावी विक्रमः क्रमः ।

अनुत्तमो दुराधर्षः कृतज्ञः कृतिरात्मवान् ॥२२॥

७५ ईश्वर , ७५ विक्रमी, ७६ धन्वी, ७७ मेधावी, ७८ विक्रम , ७९ क्रम ।
८० अनुत्तमः, ८१ दुराधर्षः, ८२ कृतज्ञः, ८३ इति, ८४ आत्मवान् ॥

सर्वशक्तिमत्तया ईश्वरः ।

सर्वशक्तिमान होनेसे ईश्वर है ।

विक्रमः शौर्यम्, तद्योगाद्
विक्रमा ।

विक्रम शौर्याग्राको कहते हैं, उससे
शुक्त होनेके कारण विक्रमी है ।

धनुरम्यास्तीति नन्वी ग्रीष्मादिन्वा-

भगवान्के पास धनुष है इमलिये वे

दिनिप्रत्ययः । ‘रामः शस्त्रभृतामहम्’

धन्वी हैं । धनुष् शब्द ग्रीष्मादिगणसे

(गीता १०।३१) इति भगव-

होनेके कारण [‘ग्रीष्मादिभ्यश्च’ (पा०

इचनान् ।

मू० ५।२।११६) इस सूत्रके
नियमानुसार] उससे इनिप्रत्यय हुआ
है । श्रीभगवान्का भी वचन है—
‘शस्त्रधारिणो मे मैं राम हूँ ।’

मेधा बहुग्रन्थधारणसामर्थ्यम्, सा
यस्यास्ति स मेधावी । 'अस्मायामेधास्त-
जो विनिः' (पा० सू० ५।२।१२१)
इति पाणिनिवचनाद्विनिप्रत्ययः ।

जिसमे मेधा अर्थात् बहुत-से ग्रन्थों-
को धारण करनेका सामर्थ्य हो उसे
मेधावी कहते हैं । यहाँ 'अस्माया-
मेधास्तजो विनिः' इस पाणिनिके
वचनानुसार मेधा शब्दमे विनिप्रत्यय
हुआ है ।

विचक्रमे जगद्विश्वं तेन विक्रमः;
विना गरुडेन पक्षिणा क्रमाद्धा ।

भगवान् जगत् यानां संसारको याँव
गये थे इसलिये वे विक्रम हैं । अथवा
वि अर्थात् गरुड पक्षीद्वारा गमन करनेसे
विक्रम है ।

क्रमणान्, क्रमहेतुत्वाद्वा क्रमः ।
'क्रान्ते विष्णुस' (मनु० १२।१२१)
इति मनुवचनात् ।

क्रमण करने (याँवने, दौड़ने)
या क्रम (विस्तार) के कारण होनेसे
विष्णुका नाम क्रम है । मनुर्जीका भी
वचन है—'परकी गतिमें विष्णुकी
भायना करे ।'

अविद्यमान उत्तमो यस्मात्तमः
अनुत्तमः । 'यस्मात्परं नापरमस्ति
किञ्चित्' इति श्रुतेः, (ना० उ० १२।३)
'न त्वत्समोऽस्त्यभ्यविकः कुतोऽन्यः'
(गीता ११।४३) इति स्मृतंश्च ।

जिसमे उत्तम कोई और न हो उसे
अनुत्तम कहते हैं । श्रुति कहती है—
'जिससे श्रेष्ठ और कोई नहीं है ।'
तथा स्मृति (गीता) का भी वचन है—
'तुम्हारे समान ही दूसरा कोई नहीं
है फिर अधिक तो हांगा ही कहाँसे ?'

दैत्यादिभिर्धर्पयितुं न शक्यत
इति दुर्गधर्पः ।

जो दैत्यादिकोंसे दबाये नहीं जा
सकते वे भगवान् दुराधर्ष कहलाते हैं ।

प्राणिनां पुण्यापुण्यात्मकं कर्म
कृतं जानानीति कृतबः । पत्रपुण्याध-

प्राणियोंके किये हुए पुण्य-पापकर्म
कर्मोंको जानते हैं इसलिये कृतब हैं ।
अथवा पत्र-पुण्यादि थोड़ी-सी वस्तु

त्वमपि प्रयच्छतां मोक्षं ददातीति । समर्पण करनेवालोंको भी मोक्ष दे देने
वा । हैं, इसलिये कृतज्ञ हैं ।

पुरुषप्रयत्नः कृतिः, क्रिया वाः पुरुष-प्रयत्नका या क्रियाका नाम
सर्वात्मकत्वात्तदाधारतया वा कृति है । सर्वात्मक होनेसे अपवा
इनके आधार होनेके कारण भगवान्
लक्ष्यते कृत्येति वा कृतिः । कृति शब्दमे लक्षित होते हैं; इसलिये
वे कृति हैं ।

स्वमहिमप्रतिष्ठितत्वात् आत्म- अपर्ना ही महिमामे स्थित होनेके
वान् । 'म भगव' कस्मिन्प्रतिष्ठित इति कारण आत्मवान् हैं । श्रुति कहती हैं—
स्वं महिम्नि' (ला० उ० ७ । २४ । 'भगवन् ! वह किसमे प्रतिष्ठित है ?
?) इति श्रुतेः ॥२२॥ अपनी महिमामें' ॥२२॥

सुरेशः शरणं शर्म विश्वरेताः प्रजाभवः ।

अहः संवत्सरो व्यालः प्रत्ययः सर्वदर्शनः ॥२३॥

८५ सुरेशः, ८६ शरणम्, ८७ शर्म, ८८ विश्वरेताः, ८९ प्रजाभवः ।

९० अहः, ९१ संवत्सरः, ९२ व्यालः, ९३ प्रत्ययः, ९४ सर्वदर्शनः ॥

सुराणां देवानामीशः सुरेशः सुर अर्थात् देवताओंके ईश होनेसे
सुरेश हैं अथवा यहाँ सु-पूर्वक रा धातु
स्यपदो वा राधातुः शोभनदातृणा- हैं; अतः शुभ देनेवालोंके ईश होनेसे
मीशः सुरेशः । भगवान् सुरेश हैं ।

आर्तानामार्तिहरणत्वात् शरणम् । दर्दनोंका दुःख दूर करनेके कारण
शरण है ।

परमानन्दरूपत्वात् शर्म । परमानन्दस्वरूप होनेसे शर्म हैं ।

विश्वस्य कारणत्वात् विश्वरेताः । विश्वके कारण होनेसे विश्वरेता हैं ।

सर्वाः प्रजा यत्सकाशादुद्भव- जिनमे सम्पूर्ण प्रजा उत्पन्न होती
न्ति स प्रजाभवः । है वे भगवान् प्रजाभव कहलाते हैं ।

प्रकाशरूपत्वाद् अहः । प्रकाशस्वरूप होनेके कारण
अहः है ।

कालात्मना स्थितो विष्णुः कालस्वरूपसे स्थित हुए विष्णु
संयमग इत्युक्तः । भगवान् संयन्त्रर कहे जाते हैं ।

व्यालवदग्रहीतुमशक्यत्वाद् व्याल (सर्प) के समान ग्रहण
व्यालः । करनेमें न आ सकनेके कारण व्याल है ।

प्रतीतिः प्रज्ञा प्रत्ययः 'प्रज्ञानं प्रतीति प्रज्ञाको कहते हैं, प्रतीति-
ब्रम्' (पृ० उ० ३।५।३) इति श्रुतेः । रूप होनेके कारण प्रत्यय है । श्रुति
कहती है 'प्रज्ञान ही प्रस है ।'

सर्वाणि दर्शनात्मकानि सर्वरूप होनेके कारण सभी जिनके
अक्षीणि यस्य स सर्वदर्शनः, सर्वा दर्शन अर्थात् नेत्र है वे भगवान् सर्व-
त्मकत्वान् 'विश्वतश्चक्षुः' (खे० ३।३) दर्शन हैं, जैसा कि श्रुति कहती है—
'विश्वाक्षम' (ना० उ० १३।१) 'सब ओर नेत्रवाला है' 'सम्पूर्ण
इति श्रुतेः ॥ २३ ॥ इन्द्रियोवाला है' ॥ २३ ॥



अजः सर्वेश्वरः सिद्धः सिद्धिः सर्वादिरच्युतः ।

वृषाकपिरमेयात्मा सर्वयोगविनिःसृतः ॥ २४ ॥

१.५ अजः, १.६ सर्वेश्वरः, १.७ सिद्धः, १.८ सिद्धिः, १.९ सर्वादिः, १.१० अच्युतः ।

१.०१ वृषाकपिः, १.०२ अमेयात्मा, १.०३ सर्वयोगविनिःसृतः ॥

न जायत इति अजः, 'न जातो जन्म नहीं लेते इसलिये अज है ।
न जनिष्यते' इति श्रुतेः । श्रुति कहती है—'न उत्पन्न होता है न

‘न हि जातो न जायेऽहं
न जनिष्ये कदाचन ।
क्षेत्रज्ञः सर्वभूतानां
तस्मादहमजः स्मृतः ॥’
इति महाभारते (शान्ति० ३४२ ।
७४) ।

सर्वेषामीश्वराणामीश्वरः सर्वेश्वरः ।
‘एष सर्वेश्वरः’ (मा० ३० ६) इति
श्रुतेः ।

नित्यनिष्पन्नरूपत्वात् सिद्धः ।
सर्ववस्तुषु संविद्रूपत्वात् निरति-
शयरूपत्वात् फलरूपत्वाद्वा सिद्धिः ।
स्वर्गादीनां विनाशित्वादफलत्वम् ।

सर्वभूतानामादिकारणत्वात्
सर्वादिः ।

स्वरूपसामर्थ्याच्च च्युतो न
च्यवते न च्यविष्यते इति अच्युतः ।
‘शाश्वतः शिवमच्युतम्’ (ना० ३०
१३ । १) इति श्रुतेः । तथा च
भगवद्बचनम्—‘यस्मान्न च्युतपूर्वोऽह-
मच्युतस्तेन कर्मणा’ इति ।

होगा ।’ महाभारतमें कहा है—
‘मैं न कभी उत्पन्न हुआ हूँ, न होता
हूँ और न होऊँगा । मैं समस्त भूतोंका
क्षेत्रज्ञ हूँ इसलिये अज कहलाता हूँ ।’

ममस्त ईश्वरोके भी ईश्वर होनेसे
सर्वेश्वर हूँ; श्रुति कहती है ‘यह
सर्वेश्वर है ।’

नित्य-सिद्ध होनेके कारण सिद्ध है ।

समस्त वस्तुओंमें संवित् (ज्ञान)
रूप होनेके कारण अथवा सबसे श्रेष्ठ
होनेके कारण या सबके फलरूप होनेके
कारण सिद्धि है । स्वर्गादि फल
नाशवान् हैं, इसलिये वे वास्तवमें फल
नहीं हैं ।

सब भूतोंके आदि-कारण होनेसे
सर्वादि है ।

अपनी स्वरूप-शक्तिसे कभी च्युत
नहीं हुए, न होते हैं और न होंगे ही
इसलिये अच्युत हैं । श्रुति कहती है—
‘यह नित्य कल्याणस्वरूप और
अच्युत है ।’ श्रीभगवान् भी कहा है—
‘क्योंकि मैं पहले कभी च्युत नहीं
हुआ हूँ, इसलिये उस कर्मके कारण
मैं अच्युत हूँ ।’

इति नाम्नां शतमाद्यं विष्टुतम् ।

यहाँतक सहस्रनामके प्रथम शतक-
का विवरण हुआ ।

वर्षणान् सर्वकामानां धर्मो वृषः
कान् तोयान् भूमिमपादिति कपि-
वराहः॥ वृषरूपत्वात्कपिरूपत्वाच्च
वृषाकपि ।

समस्त कामनाओंकी वर्षा करने-
के कारण धर्मको वृष कहते हैं ।
पृथिवीका क अपर्णात् जलमेंसे उद्धार
किया था इसलिये कपि वराह भगवान् का
नाम है । इस प्रकार वृष (धर्म) रूप
और कपि (वराह) रूप होनेके कारण
भगवान् वृषाकपि है । महाभारतमें
कहा है—‘कपि वराह या श्रेष्ठको
कहते हैं और वृष धर्मका नाम है,
इसलिये कश्यप प्रजापतिने मुझे
वृषाकपि कहा था ।’

‘कपिवराहः श्रेष्ठश्च

धर्मश्च वृष उच्यते ।

तस्माद्वृषाकपि प्राह

काश्यपो मा प्रजापति ॥’

इति महाभारते (जान्ति० ३४२ ।
८०) ।

इयानिति मातुं परिच्छेत्तुं न
शक्यत आत्मा यस्येति अमेयात्मा ।

जिनके आत्मा (स्वरूप) का ‘इतना
है’ इस प्रकार माप-परिच्छेद न किया
जा सके वे भगवान् अमेयात्मा हैं ।

सर्वसम्बन्धविनिर्गतः सर्वयोग-
विनिःसृतः, ‘असङ्गो ह्ययं पुरुषः’
(वृ० उ० ४ । ३ । १५) इति
श्रुतः । नानाशास्त्रोक्ताद्योगादप-
गतत्वाद्वा ॥ २४ ॥

सम्पूर्ण सम्बन्धोंसे रहित हानेके
कारण सर्वयोगविनिःसृत हैं । श्रुति
कहती है—‘यह पुरुष निश्चय असंग
ही है ।’ अथवा नाना प्रकारके शास्त्रोंके
योगों (साधनों) से जानें जाते हैं,
इसलिये सर्वयोगविनिःसृत हैं ॥ २४ ॥



वसुर्वसुमनाः सत्यः समात्मा सम्मितः समः ।

अमोघः पुण्डरीकाक्षो वृषकर्मा वृषाकृतिः ॥२५॥

१०४ वसुः, १०५ वसुमनाः, १०६ सत्यः, १०७ समात्मा, १०८ सप्रितः, १०९ समः । ११० अमोघः, १११ पुण्डरीकाक्षः, ११२ वृषकर्मा, ११३ वृषाकृतिः ॥

वसन्ति सर्वभूतान्यत्र, तेष्वय-
मपि वसतीति वा वसु 'वसूना
पात्रकथामि' (गीता १०।२३)
इत्युक्तो वा वसुः ।

वसुशब्देन धनवाचिना
प्राशस्त्यं लक्ष्यते । प्रशस्तं मनो
यस्य स वसुमना । रागद्वेषादिभिः
क्लेशमृदादिभिरुपक्लेशैश्च यतो
न कलुषितं चित्तं ततस्तन्मनः
प्रशस्तम् ।

अवितथरूपत्वात्परमात्मा सत्य
'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' (नै० उ० २।
१।१) इति श्रुतेः । मूर्तामूर्तान्मिक-
त्वाद्वा, 'मन्त्रं त्वन्नामवत्' (नै० उ० २।
६) इति श्रुतेः । सदिति प्राणाः,
तीत्यन्नम्, यमिति दिवाकरस्तेन
प्राणाश्चादित्यरूपाद्वा सत्यः 'सदिति
प्राणास्तीत्यन्नं यमित्यसावादित्यः'
(ऐ० आ० २।१।५।६) इति
श्रुतेः । मत्सु साधुत्वाद्वा सत्यः ।

सम आत्मा मनो यस्य राग-

भगवान्मे सब भूत वसते हैं अथवा
उन सब भूतोंमें भगवान् वसते हैं इसलिये
वे वसु हैं। अथवा 'वसुओंमें मैं अग्नि हूँ'
इस प्रकार [गीतामें] कहा हुआ अग्नि
ही वसु है ।

धनवाचक वसु शब्दसे प्रशन्नता
(श्रेष्ठता) व्यक्त होती है; अतः जिनका
मन प्रशन्न है वे भगवान् वसुमना
कहलाते हैं । राग-द्वेषादि क्लेशों और
मृदादि उपक्लेशोंमें अदूषित होनेके
कारण भगवान्का मन प्रशन्न है ।

सत्यस्वरूप होनेके कारण परमात्मा
सत्य है। श्रुति कहती है- 'ब्रह्म सत्यं,
ज्ञान और अनन्तरूप है।' अथवा
'मन् (मूर्त) और त्यद् (अमूर्त) हुआ'
इस श्रुतिके अनुसार मूर्तामूर्तस्वरूप
होनेके कारण भगवान् सत्य हैं । अथवा
'सदिति प्राणास्तीत्यन्नं यमित्य-
सावादित्यः' इस श्रुतिके अनुसार मत्
प्राण है, न अन्न है और य सूर्य है;
अतः प्राण, अन्न और सूर्यरूप होनेके
कारण भगवान् सत्य हैं । अथवा
सत्पुरुषोंके लिये साधुस्वभाव होनेके
कारण सत्य हैं ।

जिनका आत्मा—मन सम अर्थात्

द्वेषादिभिरदूषितः सः समात्मा सर्व-
भूतेषु सम एक आत्मा वा,
'नम आत्मेति विद्यात्' इति श्रुतेः ।

सर्वैरप्यर्थजातैः परिच्छिन्नः
समिन्तः सर्वैरपरिच्छिन्नोऽस्मिन् इति
असमिन्तः ।*

सर्वकालेषु सर्वविकाररहितत्वात्
समः मया लक्ष्म्या सह वर्तत इति
वा समः ।

पूजितः स्तुतः संस्मृतो वा सर्व-
फलं ददाति न वृथा करोतीति
अमोघः । अवितथसङ्कल्पाद्वा, 'सत्य-
सङ्कल्पः' (छा० उ० ८।७।१)
इति श्रुतेः ।

हृदयस्थं पुण्डरीकमनुते व्या-
प्नोति तत्रोपलक्षित इति पुण्डरी-
काक्षः 'यः पुण्डरीकं पुरमध्यस्थं'

राग-द्वेषादिसे अदूषित है वे भगवान्
समात्मा हैं । अथवा 'आत्मा सम है-
पेसा जाने' इस श्रुतिके अनुसार समस्त
प्राणियोंमें सम यानी एक आत्मा है,
इसलिये भगवान् समात्मा हैं ।

समस्त पदार्थोंमें परिच्छिन्न जाने
जाने है । इसलिये समिन्त है अथवा
समस्त पदार्थोंसे परिच्छिन्न परिमित
नहीं है, इसलिये असमिन्त है ।

सब समय समस्त विकारोंमें रहित
होनेके कारण सम है अथवा मा-
नस्यमोके सहित विराजमान है इसलिये
सम है ।

पूजा, स्तुति अथवा स्मरण किये
जानेपर सम्पूर्ण फल देते हैं, उन्हें
वृथा नहीं करने, इसलिये अमोघ हैं ।
अथवा 'सत्यसङ्कल्प है' इस श्रुतिके
अनुसार अव्यर्थ-सङ्कल्पवाले होनेसे
अमोघ हैं ।

हृदयस्थ पुण्डरीक (कमल) में प्राप्त-
व्याप्त होते हैं—उसमें लक्षित होते हैं
इसलिये पुण्डरीकाक्ष है । श्रुति कहती
है—'जो हृदयकमल पुर (शरीर) के
मध्यमें स्थित है ।' अथवा उनके दोनों

* समात्मासमिन्तः—इसका पदच्छेद 'समात्मा-समिन्तः, समात्मा-असमिन्तः'
दोनों प्रकार होनेके कारण दो प्रकारसे अर्थ किया गया है ।

इति श्रुतेः; पुण्डरीकाकारे उभे नेत्र कमलके समान है, इसलिये
अक्षिणी अस्याति वा । पुण्डरीकाक्ष हैं ।

धर्मलक्षणं कर्मास्यति वृषकर्मा । जिनके कर्म धर्मरूप हैं वे भगवान्
वृषकर्मा हैं ।

धर्मार्थमाकृतिः शरीरं यस्येति जिनकी धर्मके लिये ही आकृति--
स वृषाकृति 'धर्ममंस्थापनार्थाय देह है [अर्थात् जिन्होंने धर्मके लिये
सम्भवामि युगे युगे ॥' (गीता ४।८) ही शरीर धारण किया है] वे भगवान्
इति भगवद्वचनात् ॥ २५ ॥ वृषाकृति हैं; जैसा कि भगवान्का
वचन है--'मैं धर्मकी स्थापना करनेके
लिये युग-युगमें जन्म लेता हूँ' ॥२५॥

रुद्रो बहुशिरा बभ्रुर्विश्वयोनिः शुचिश्रवाः ।

अमृतः आश्वत्थ्याणुर्वरारोहो महानपाः ॥ २६ ॥

११४ रुद्रः, ११५ बहुशिरा, ११६ बभ्रु, ११७ विश्वयोनि, ११८ शुचिश्रवाः ।
११९ अमृत, १२० आश्वत्थ्याणु, १२१ वरारोह, १२२ महानपा ॥

मंहारकाले प्रजाः मंहरन् रोद- प्रलयकालमें प्रजाका मंहार करके
यतीति रुद्रः । रुद्रं रानि ददातीति उभे रुयाने हैं, इसलिये रुद्र हैं । अथवा
वा । रुद्रुःखं दुःखकारणं वा, रुद्र यांनी वारणा देते हैं इसलिये रुद्र
द्रावयतीति वा रुद्रः रोदनाद् हैं । अथवा रु नाम दुःखका है; अतः
द्रावणाद्वापि रुद्र इत्युच्यते, दुःख या दुःखके वारणको दूर भगाने-
'रुद्रुःखं दूष्यहेतुं वा वाले होनेसे भगवान् रुद्र हैं । अथवा
तद्रावयति यः प्रभुः । रोदन / रुयाने / तथा द्रावण (दूर
रुद्र इत्युच्यते तस्मा- भगाने के कारण रुद्र कहलाते हैं ।
शिवः परमकारणम् ॥' शिवपुराणका वचन है-- 'रुनाम दुःखका
इति शिवपुराणवचनात् । है; क्योंकि वे प्रभु दुःख या दुःखके
(संहिता ९, अ० ९। १४) हेतुको दूर भगाने हैं इसलिये परम
कारण भगवान् शिव रुद्र कहलाते हैं ।'

बहूनि शिराणि यस्येति बहु-
शिराः, 'सहस्रशीर्षा पुरुषः' (पु०
म० १) इति मन्त्रवर्णान् ।

विभर्ति लोकानिति बभ्रु ।

विश्वस्य कारणत्वात् विश्वयोनि ।

शुचीनि श्रवाणि नामानि
श्रवणीयान्यस्येति शुचिश्रवा ।

न विद्यते मृतं मरणमस्येति
अमृत. 'अजरोऽमरः' (बृ० उ० ४ । ४ ।
२५) इति श्रुतेः ।

शाश्वतश्चार्मा म्याणुश्चेति शाश्व-
तम्याणु ।

वर आरोहोऽङ्गोऽस्येति वरारोहः ।
वरमारोहणं यस्मिन्निति वा, आरू-
ढानां पुनरावृत्त्यमम्भवान्, 'न च
पुनरावर्तते' (छा० उ० ८ । १५ । १)
इति श्रुतेः,

'यद्वा न निवर्तन्ते

तद्वाम परमं मम ॥'

(गीता १५ । ६)

इति भगवद्वचनान् ।

ॐ श्रवका अथ कीर्ति भा है, भगवान् पवित्र कीर्तिवाले हैं, इसलिये भां शुचि-
श्रवा है ।

'सहस्रशीर्षा पुरुषः' इस मन्त्रवर्णके
अनुसार बहुत-से शिर होनेके कारण
भगवान् बहुशिरा हैं ।

लोकोंका भरण करते हैं, इसलिये
बभ्रु हैं ।

विश्वके कारण होनेसे विश्वयोनि हैं ।

भगवान्के श्रव शुचि—पवित्र हैं,
अर्थात् उनके नाम सुनने योग्य हैं;
इसलिये वे शुचिश्रवा* कहे जाते हैं ।

भगवान्का मृत अर्थात् मरण नहीं
है, इसलिये वे अमृत है; श्रुति कहती
है—'अजर है, अमर है ।'

शाश्वत (निर्य) भी है और
म्याणु (स्थिर) भी हैं, इसलिये भगवान्
शाश्वतम्याणु हैं ।

भगवान्का आरोह अर्थात् गोद
वर (श्रेष्ठ) है इसलिये वे वरारोह
हैं । अथवा उनमें आरूढ होना वर
(उत्तम) है इसलिये वे वरारोह हैं क्योंकि
उनमें आरूढ हुए प्राणियोंका फिर
संसारमें नहीं आना पड़ता । श्रुति कहती
है—'वह फिर नहीं लौटता' श्री-
भगवान्ने भी कहा है—'जहाँ जाकर
फिर नहीं लौटते वही मेरा परम-
धाम है ।'

महत्सृज्यविषयं तपो ज्ञानमस्येति । भगवान्का सृष्टि-विषयक तप-ज्ञान
महातपाः 'यस्य ज्ञानमयं तपः' (मु०उ० अति महान् है, इसलिये वे महातपा
१।१।९.) इति श्रुतेः । ऐश्वर्य है । इस विषयमें 'जिसका ज्ञानमय
प्रतापो वा तपो महदस्येति वा तप है' ऐसी श्रुति भी है । अथवा
महातपाः ॥२६॥ उनका ऐश्वर्य या प्रतापरूप तप महान्
है इसलिये वे महान्ता हैं ॥२६॥

सर्वगः सर्वविद्वानुर्विष्वक्मेनो जनार्दनः ।

वेदो वेदविद्वज्ज्ञो वेदाङ्गो वेदवित्कविः ॥ २७ ॥

१२३ सर्वग, १२४ सर्वविद्वानु, १२५ विष्वक्मेनः, १२६ जनार्दनः ।
१२७ वेदः, १२८ वेदवित्, १२९ अज्यङ्गः, १३० वेदाङ्गः, १३१ वेदवित्,
१३२ कविः ॥

सर्वत्र गच्छतीति सर्वगः कारण-
त्वेन व्याप्तवान् सर्वत्र ।

कारणरूपमें सर्वत्र व्याप्त होनेके
कारण वे सभी जगह जाते हैं, इसलिये
सर्वग हैं ।

सर्वं वेत्ति विन्दतीति वा
सर्ववित् भातीति भानुः, 'तमेव भान्त-
मनुभाति सर्वम्' (क०उ० २।५।१५)
इति श्रुतेः ।

'यदादित्यगतं तेजो

जगद्भासयनेऽग्निम् ।'

(गीता १५।१२)

इत्यादिस्मृतेश्च; सर्वविचारो
भानुश्चेति सर्वविद्वानुः ।

सब कुछ जानने या प्राप्त करते
हैं इसलिये सर्ववित् है, तथा भासने
हैं इसलिये भानु हैं, इस विषयमें
'उसके ही भासित होनेसे ये सब
भासित होते हैं' यह श्रुति और
'जो सूर्यके अन्तर्गत रहनेवाला तेज
सम्पूर्ण संसारको भासित करता है'
यह स्मृति प्रमाण है । इस प्रकार
भगवान् सर्ववित् हैं और भानु भी हैं,
इसलिये सर्वविद्वानु हैं ।

विष्वग् अव्ययं सर्वेत्यर्थे ।
विष्वगञ्जति पलायते दैत्यसेना
यस्य रणोद्योगमात्रेणेति विष्वक्सेनः ।

जनान् दूर्जनानर्दयति हिनस्ति,
नरकादीन् गमयतीति वा जनार्दनः ।
जनैः पुरुषार्थमभ्युदयति श्रेयम-
लक्षणं याच्यते इति जनार्दनः ।

वेदरूपत्वाद् वेदः वेदयतीति
वा वेदः,

‘तेषामिवानुकम्पार्थ-

महमज्ञानजं तमः ।

नाशयाम्यात्मभावम्भ्रं

ज्ञानदीपेन भास्यता ॥’

(गीता १० । ११)

इति भगवद्वचनात् ।

यथावद्वेदं वेदार्थं च वेत्तीति
वेदवित्, ‘वेदान्तकृद्वेदविदेव चाहम्’
(गीता १५ । १५) इति भग-
वद्वचनात् ।

‘सर्वे वेदाः सर्ववेद्याः सशाखाः

सर्वे यज्ञाः सर्वे इत्याश्च कृष्णः ।

विदुः कृष्णं ब्राह्मणास्तत्त्वतो ये

तेषां राजन् सर्वयज्ञाः समाप्ताः ॥’

इति महाभारते ।

‘विष्वक्’ इस अव्यय पदका अर्थ
सर्व है । भगवान्के रणोद्योगमात्रसे
दैत्यसेना सब ओर नितर-नितर हो
जाती या भाग जाती हैं, इसलिये वे
विष्वक्सेन हैं ।

जनो-दूर्जनोका अर्दन करते अर्थात्
उन्हें मारने या नरकादि [तमोमय]
लोकोको भेजते हैं, इसलिये जनार्दन
हैं, अथवा भक्तजन उनसे अभ्युदय-
नि-श्रेयसमग्न परम पुरुषार्थकी याचना
करते हैं, इसलिये जनार्दन हैं ।

वेदरूप होनेके कारण वेद हैं;
अथवा ज्ञान प्राप्त कराते हैं, इसलिये वेद
हैं; जैसा कि भगवान्ने कहा है—

‘उनपर कृपा करनेके लिये हो मैं आरम-
भाद्यमें स्थित हुआ उनका अज्ञान-
जन्य अन्धकार प्रकाशमय ज्ञानदीपक-
से नष्ट कर देता हूँ ।’

वेद तथा वेदके अर्थको यथावत्
अनुभव करते हैं, इसलिये वेदवित् हैं ।
भगवान्का कथन है—‘मैं वेदान्तकी
रचना करनेवाला और वेद जानने-
वाला भी हूँ ।’ महाभारतमें कहा है—
‘शास्त्रोंसहित सम्पूर्ण वेद, समस्त
वेद्य-पदार्थ, सारे यज्ञ और सम्पूर्ण
पूजनीय वेद्यकृष्ण ही हैं । हे राजन् !
जो ब्राह्मण कृष्णको तत्त्वतः जानते हैं
उन्होंने सभी यज्ञ समाप्त कर लिये हैं ।’

अव्यक्तः ज्ञानादिभिः परिपूर्णो-
ऽविकल इत्युच्यते; व्यक्तो व्यक्तिर्न
विद्यत इत्यव्यक्तो वा, 'अव्यक्तोऽयम्'
(गीता २।२५) इति भगवद्वचनात् ।

वेदा अङ्गभूता यस्य वेदाङ्गः ।

वेदान् विन्दते विचारयतीति
वेदविन् ।

क्रान्तदर्शी कविः सर्वदृक्,
'नान्योऽनोऽस्ति द्रष्टा' (बृ० उ०
३।७।२३) इत्यादिश्रुतेः ।
'कविर्मनीषी' (इ० उ० ८) इत्यादि-
मन्त्रवर्णात् ॥२७॥

ज्ञानादिसे पूर्ण अर्थात् किसी
प्रकार अधूरे न होनेके कारण भगवान्
अव्यक्त कहलाते हैं । अथवा व्यक्त
यानी व्यक्ति न होनेके कारण अव्यक्त
हैं । भगवान्ने कहा है—'यह
अव्यक्त है ।'

वेद जिनके अङ्गरूप हैं वे भगवान्
वेदाङ्ग है ।

वेदोंको विचारते हैं, इसलिये
वेदविन् हैं ।

क्रान्तदर्शी यानी सबको देखनेवाले
होनेके कारण कवि हैं, श्रुति कहती है--
'इमसे भिन्न कोई और द्रष्टा नहीं है ।'
तथा 'कवि है मनीषी है' यह मन्त्र-
वर्ण भी है ॥२७॥

लोकाध्यक्षः सुराध्यक्षो धर्माध्यक्षः कृताकृतः ।

चतुरात्मा चतुर्व्यूहश्चतुर्दंष्ट्रश्चतुर्भुजः ॥२८॥

१३३ लोकाध्यक्षः, १३४ सुराध्यक्षः, १३५ धर्माध्यक्षः, १३६ कृताकृतः ।
१३७ चतुरात्मा, १३८ चतुर्व्यूहः, १३९ चतुर्दंष्ट्रः, १४० चतुर्भुजः ॥

लोकानध्यक्षयतीति लोकाध्यक्षः लोकोका निरीक्षण करते हैं, इस-
सर्वेषां लोकानां प्राधान्येनोपद्रष्टा । लिये लोकाध्यक्ष यानी समस्त लोकों-
को प्रधानरूपसे देखनेवाले हैं ।

लोकपालादिसुराणामध्यक्षः
सुगन्धः ।

लोकपालादि सुरों (देवताओं)
के अध्यक्ष हैं, इसलिये सुराध्यक्ष हैं ।

धर्माधर्मा साक्षादीक्षतेऽनुरूपं
फलं दातुं तस्माद् धर्माध्यक्षः ।

अनुरूप फल देनेके लिये धर्म और
अधर्मको साक्षात् देखते हैं, इसलिये
धर्माध्यक्ष हैं ।

कृतश्च कार्यरूपेण अकृतश्च
कारणरूपेणेति कृताकृतः ।

कार्यरूपमे कृत और कारणरूपसे
अकृत होनेके कारण कृताकृत है ।

मर्गादिषु पृथग्विभृतयश्चतस्रः
आत्मानो मूर्तयो यस्य सः चतुरात्मा ।

सृष्टिकी उत्पत्ति आदिके लिये जिनकी
चार पृथक् विभृतियाँ आत्मा अर्थात्
मूर्तियाँ हैं वे भगवान् चतुरात्मा हैं । विष्णु-
पुराणमें कहा है—'ब्रह्मा, वक्ष्नादि प्रजा-
पतिगण, काल तथा सम्पूर्ण जीव-ये
भगवान् विष्णुकी सृष्टिकी हेतुभूत
चार विभृतियाँ हैं । हे द्विज ! विष्णु,
मनु आदि, काल और सम्पूर्ण भूत—
ये श्रीविष्णुकी स्थितिकी हेतुभूत
विभृतियाँ हैं तथा रुद्र, काल, मृत्यु
आदि और समस्त जीव—ये श्री-
जनार्दनकी प्रलयकारिणी चार
विभृतियाँ हैं ।'

'ब्रह्मा दक्षादयः काल-
स्तथैवाग्निरजन्तवः ।

विभृतयो हररेता
जगतः सृष्टिहेतवः ॥

'विष्णुर्मन्वादयः काल-
सर्वभूतानि च द्विज ।

स्थितेर्निमित्तभूतस्य
विष्णोरेता विभृतयः ॥

'रुद्रः कालोऽन्तकाद्याश्च
समस्ताश्चैव जन्तवः ।

चतुर्धा प्रलयायैता
जनार्दनविभृतयः ॥'

(विष्णु० १।२२।३१-३२)

इति वैष्णवपुराणे ।

'व्यूह्यात्मानं चतुर्धा वै
वासुदेवादिमूर्तिभिः ।

सृष्ट्यादीन्प्रकरोत्येष
विश्रुतात्मा जनार्दनः ॥'

इति व्यामवचनात् चतुर्व्यूहः ।

'पुण्यकीर्ति श्रीजनार्दन अपने चार
व्यूह बनाकर वासुदेवादि मूर्तियोंसे
सृष्टि आदि करते हैं' इस व्यासजीके
वचनानुसार भगवान् चतुर्व्यूह हैं ।

द्रंष्ट्राश्चतस्रो यस्येति चतुर्दशः जिनके चार डाढ़ें हैं वे वसिहरूप
नृसिंहविग्रहः । यद्वा सादृश्याच्छृङ्गं भगवान् चतुर्दश हैं । अथवा सदृशताके
दंष्ट्रेत्युच्यते, 'चत्वारि शृङ्गाः' (ऋग्वेदे) कारण सींगोंको भी दंष्ट्रा कहते
इति श्रुतेः । हैं, इसलिये '[उसके] चार सींग हैं'
इस श्रुतिके अनुसार चतुर्दश हैं ।

चत्वारो भुजा अस्येति चतु- चार भुजाएँ होनेके कारण चतुर्भुज
र्भुजः ॥२८॥ हैं ॥२८॥

भ्राजिष्णुभोजनं भोक्ता महिष्णुर्जगदादिजः ।

अनघां विजयो जेना विश्वयोनिः पुनर्वसुः ॥२९॥

१४१ भ्राजिष्णु, १४२ भोजनम्, १४३ भोक्ता, १४४ महिष्णुः, १४५ जगदादिजः ।
१४६ अनघा, १४७ विजयः, १४८ जेता, १४९ विश्वयोनिः, १५० पुनर्वसुः ॥

प्रकाशैकरमत्वाद् भ्राजिष्णुः । एकरम प्रकाशस्वरूप होनेके
कारण भ्राजिष्णु हैं ।

भोज्यरूपतया प्रकृतिर्माया भोज्यरूप होनेमें प्रकृति यानी
भोजनम् इत्युच्यते । मायाको भोजन कहते हैं [अतः
मायारूपसे भगवान् भोजन हैं] ।

पुरुषरूपेण तां भुङ्क्ते इति उसे पुरुषरूपमें भोगते हैं, इस-
लोक्ता । लिये भोक्ता है ।

हिरण्याक्षादीन् सहते अभिभव- हिरण्याक्षादिकों सहन करते हैं
तीति सहिष्णुः । अर्थात् उन्हें नोचा दियाते हैं, इस-
लिये भगवान् सहिष्णु हैं ।

हिरण्यगर्भरूपेण जगदादावुत्प- जगत्के आदिमें हिरण्यगर्भरूपसे
द्यते स्वयमिति जगदादिजः । स्वयं उत्पन्न होते हैं, इसलिये जगदा-
दिज हैं ।

अघं न विद्यतेऽस्येति अनघः,
'अपहतपाप्मा' (छा० उ० ८ । ७ ।
१) इति श्रुतेः ।

विजयते ज्ञानवैराग्यैश्वर्यादि-
भिर्गुणैर्विश्वमिति विजयः ।

यतो जयत्यनिशेते सर्वभूतानि
स्वभावतोऽतो जेता ।

विश्वं योनिर्यस्य विश्वश्चासां
योनिश्चेति वा विश्वयोनिः ।

पुनः पुनः शरीरेषु वसति क्षेत्रज्ञ-
रूपेणेति पुनर्वसुः ॥२९॥

भगवान्मे अघ (पाप) नहीं है,
इसलिये अनघ हैं । श्रुति कहती है—
'वह पापहीन है ।'

ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य आदि
गुणोंमें विश्वकों जीतते हैं, इसलिये
विजय है ।

क्योंकि स्वभावसे ही समस्त भूतों-
को जीतते अर्थात् उनसे अधिक
उत्कर्ष प्राप्त करते हैं, इसलिये
जेता है ।

विश्व उनकी योनि है अथवा विश्व
और योनि दोनों वही हैं, इसलिये
विश्वयोनि है ।

क्षेत्रज्ञरूपमें पुनः-पुनः शरीरोंमें
वसते हैं, इसलिये पुनर्वसु हैं ॥२९॥

उपेन्द्रो वामनः प्रांशुरमोघः शुचिरुजितः ।

अतीन्द्रः सङ्ग्रहः सर्गो धृतात्मा नियमो यमः ॥३०॥

१५१ उपेन्द्रः, १५२ वामनः, १५३ प्राशुः, १५४ अमोघः, १५५ शुचिः,
१५६ उजितः । १५७ अतीन्द्रः, १५८ सङ्ग्रहः, १५९ सर्गः, १६० धृतात्मा,
१६१ नियमः, १६२ यमः ॥

इन्द्रमुपगतोऽनुजत्वेनेति उपेन्द्रः
यद्वा उपरि इन्द्रः उपेन्द्रः ।

इन्द्रको अनुजरूपसे उपगत अर्थात्
प्राप्त हुए थे, इसलिये उपेन्द्र है । अथवा
[इन्द्रसे] ऊपर इन्द्र हैं इसलिये उपेन्द्र

‘ममोपरि ययेन्द्रस्त्वं
स्थापितो गोमिरीश्वरः ।
उपेन्द्र इति कृष्ण त्वां
गाम्यन्ति भुवि देवताः ॥’
(हरि० २ । १९ । ४६)

इति हरिवंशे

बलिं वामनरूपेण याचित्वा-
निति वामनः । सम्भजनीय इति वा-
वामनः,

‘मय्ये वामनमामीनं
विश्वेदेवा उपासते ।’
(क० उ० २ । ५ । ३)

इति मन्त्रवर्णनं ।

स एव जगत्त्रयं क्रममाणः
प्रांशुरभूदिति प्राशुः ।

‘तोये तु पतिते हस्ते
वामनोऽभूदवामनः ।
सर्वदेवमयं रूपं
दर्शयामास वै प्रभुः ॥

‘भूः पादो घोः शिरश्चास्य
चन्द्रादित्यौ च चक्षुषी ।’
(हरि० ३ । ७१ । ४४)

इत्यादिविग्रवरूपं दर्शयित्वा

‘तस्य विक्रमतो भूमिं
चन्द्रादित्यो स्तनान्तरे ।

नभः प्रक्रममाणस्य
नाम्या तौ समवस्थितौ ॥

हैं । हरिवंशमें कहा है—‘क्योंकि
गौमीने आपकी मेरे ऊपर मेरा इन्द्र
(स्वामी) बनाया है, इसलिये हे
कृष्ण ! लोकमें देवगण उपेन्द्र कहकर
आपका गान करेंगे ।’

वामनरूपमें वयिसे याचना की थी,
इसलिये वामन है । अथवा भली प्रकार
भजने योग्य होनेसे वामन है; जैसा
कि मन्त्रवर्णन है—‘मध्यमें स्थित वामन-
की विश्वेदेव उपासना करते हैं ।’

वे ही तीनों लोकोंको लानेके
समय प्रांशु (ऊँचे) हो गये थे, इसलिये
प्रांशु है । [बलिके किये हुए सङ्कल्प-
का] जल हाथमें गिरते ही वामनजी
अवामन हो गये । उस समय प्रभुने
अपना सर्वदेवमय रूप दिखलाया ।
पृथिवी उनके चरण, आकाश शिर तथा
सूर्य और चन्द्रमा नेत्र थे ।’ इत्यादि
रूपसे विश्वरूप दिखलाकर हरिवंशमें
उनकी प्रांशुता (ऊँचाई) का इस प्रकार
वर्णन किया है—‘पृथिवीको मापते
समय सूर्य और चन्द्र उनके स्तनके
समीप हो गये, फिर आकाशको मापते

दिवमाक्रममाणस्य

जानुमूले व्यवस्थितौ ॥'

इति प्रांशुत्वं दर्शयति हरिवंशे
(३। ७२। २९)।

न मोघं चेष्टितं यस्य सः अमोघः।

सरतां स्तुवतामर्चयतां च पावन-
त्वात् शुचिः 'अस्य स्पर्शश्च महान्
शुचिः' इति मन्त्रवर्णात् ।

बलप्रकर्षशालित्वाद् ऊर्जितः ।

अतीत्येन्द्रं स्थितो ज्ञानैश्वर्या-
दिभिः स्वभावसिद्धैरिति अतीन्द्रः ।

सर्वेषां प्रतिमंहारात् सङ्ग्रहः ।

सृज्यरूपतया, सर्गहेतुत्वाद्वा
सर्गः ।

एकरूपेण जन्मादिरहिततया
धृत आत्मा येन सः धृतात्मा ।

स्वेषु स्वेष्वधिकारेषु प्रजा
नियमयतीति नियमः ।

अन्तर्यच्छतीति यमः ॥३०॥

समय के उनकी नाभिपर जा गये
तथा स्वर्ग मापते समय उनके घुटनों-
पर ही रह गये ।'

जिनकी चेष्टा मोघ (व्यर्थ) नहीं
होती वे भगवान् अमोघ हैं ।

स्मरण, स्तुति और पूजन करनेवालों-
को पवित्र करनेवाले होनेसे भगवान्
शुचि हैं । इस विषयमें यह मन्त्रवर्ण है—
'इसका स्पर्श भी महान् शुचि है ।'

अत्यन्त बलशाली होनेके कारण
ऊर्जित हैं ।

अपने स्वभावसिद्ध ज्ञान-ऐश्वर्यादि-
के कारण इन्द्रसे भी बड़े-बड़े हैं, इस-
लिये अतीन्द्र हैं ।

प्रलयके समय सबका संग्रह करनेके
कारण संग्रह हैं ।

सृज्य (जगत्) रूप होनेसे अथवा
सृष्टिका कारण होनेसे सर्ग हैं ।

जो जन्मादिसे रहित रहकर अपने
स्वरूपको एकरूपसे धारण किये हुए
हैं वे भगवान् धृतात्मा हैं ।

अपने-अपने अधिकारोंमें प्रजाको
नियमित करते हैं, इसलिये नियम हैं ।

अन्तःकरणमें स्थित होकर नियमन
करते हैं, इसलिये यम हैं ॥३०॥

वेद्यो वैद्यः सदायोगी वीरहा माधवो मधुः ।

अतीन्द्रियो महामायो महोत्साहो महाबलः ॥३१॥

१६३ वेद्यः, १६४ वैद्यः, १६५ सदायोगी, १६६ वीरहा, १६७ माधवः, १६८ मधुः ।

१६९ अतीन्द्रियः, १७० महामायः, १७१ महोत्साहः, १७२ महाबलः ॥

निःश्रेयमार्थिभिर्वेदनाहन्वाद्
वेद्यः ।

कन्याणकी इच्छावालेद्वारा जानने
योग्य हैं, इसलिये वेद्य हैं ।

सर्वविद्यानां वेदितृत्वाद् वैद्यः ।

सब विद्याओंके जाननेवाले होनेसे
वैद्य हैं ।

सदा आविर्भूतस्वरूपत्वात् सदा-
योगी ।

सदा प्रत्यक्ष-स्वरूप होनेके कारण
सदायोगी हैं ।

धर्मत्राणाय वीरान् असुरान्
हन्तीति वीरहा ।

धर्मकी रक्षाके लिये वीरोंको यानी
असुर योद्धाओंको मारते हैं, इसलिये
वीरहा हैं ।

माया विद्यायाः पतिः माधवः ।

‘मा विद्या त्व हरे’ प्रोक्ता

तस्या ईशो यतो भवान् ।

तस्मान्माधवनामाभि

धवः स्वामीति शब्दितः ॥’

इति हरिवंशे (३ । ८८ । ४९)

यथा मधु परां प्रीतिमुत्पादयति

अयमपि तथेति मधुः ।

मा अर्थात् विद्याके पति होनेसे
माधव हैं । हरिवंशमे कहा है—‘हरि-
की विद्याका नाम मा है और आप
उसके स्वामी हैं, इसलिये आप माधव
नामवाले हैं; क्योंकि धव शब्द
स्वामीका वाचक है ।’

जिस प्रकार मधु (शहद) अत्यन्त
प्रसन्नता उत्पन्न करता है उसी प्रकार
भगवान् भी करते हैं, इसलिये वे
मधु हैं ।

शब्दादिरहितत्वादितन्द्रियाणाम-

शब्दादि विषयोसे रहित होनेके

विषय इति अतीन्द्रियः, 'अशब्दमस्पर्शम्' (क० उ० १।३।१५) इति श्रुतेः ।

कारण भगवान् इन्द्रियोंके विषय नहीं हैं, इसलिये अतीन्द्रिय हैं । श्रुति कहती है—'अशब्द है, अस्पर्श है ।'

मायाविनामपि मायाकारित्वात् महामाणः, 'मम माया दुरत्यया' (गीता ७।१४) इति भगवद्वचनात् ।

मायावियोपर भी माया फैला देते हैं, इसलिये महामाय हैं । भगवान्का वचन है—'मेरी माया अति दुस्तर है ।'

जगदुत्पत्तिस्थितिलयार्थमुद्युक्त्वात् महात्साहः ।

जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयके लिये तत्पर रहनेके कारण महात्साह हैं ।

बलिनामपि बलवत्त्वात् महाबलः ॥ ३१ ॥

बलवानोमे भी अधिक बलवान् होनेके कारण महाबल हैं ॥ ३१ ॥

महाबुद्धिर्महावीर्यो महाशक्तिर्महाद्युतिः ।

अनिर्देश्यवपुः श्रीमानमेयात्मा महाद्रिधृक् ॥ ३२ ॥

१७३ महाबुद्धिः, १७४ महावीर्यः, १७५ महाशक्तिः, १७६ महाद्युतिः ।

१७७ अनिर्देश्यवपुः, १७८ श्रीमान्, १७९ अमेयात्मा, १८० महाद्रिधृक् ॥

बुद्धिमतामपि बुद्धिमत्त्वात् महाबुद्धिः ।

बुद्धिमानोमे भी महान् बुद्धिमान् होनेके कारण महाबुद्धि हैं ।

महदुत्पत्तिकारणमविद्यालक्षणं वीर्यमस्येति महावीर्यः ।

संसारकी उत्पत्तिकी कारणरूप अविद्या भगवान्का महान् वीर्य है, इसलिये वे महावीर्य हैं ।

महती शक्तिः सामर्थ्यमस्येति महाशक्तिः ।

उनकी शक्ति अर्थात् सामर्थ्य अति महान् है, इसलिये वे महाशक्ति हैं ।

महती द्युतिर्बाह्याभ्यन्तरा च

उनकी बाह्य और आभ्यन्तर द्युति

अस्येति महाघुनिः; 'स्वयं ज्योतिः' (बृ० महान् है, इसलिये वे महाघुति हैं।
 उ० ४ । ३ । ९) 'ज्योतिषां' इस विषयमें 'स्वयं ज्योति है'
 ज्योतिः' (बृ० उ० ४ । ४ । १६) 'ज्योतियोंका ज्योति है' इत्यादि
 इत्यादि श्रुतेः । श्रुतियाँ प्रमाण हैं ।

इदं तदिति निर्देष्टुं यन्न अज्ञेय होनेके कारण जो 'वह यह
 शक्यतं परस्मै स्वसंबेधत्वात्तदनि- है' इस प्रकार दूसरोंके लिये निर्दिष्ट न
 र्देश्यं वपुरस्यंति अनिर्देश्यवपु । किया जा सके उसे अनिर्देश्य कहते हैं;
 भगवान्का वपु (शरीर) अनिर्देश्य है,
 इसलिये वे अनिर्देश्यवपु हैं ।

ऐश्वर्यलक्षणा समग्रा श्रीर्यस्य जिनमें ऐश्वर्यरूप समग्र श्री है वे
 सः श्रीमान् । भगवान् श्रीमान् हैं ।

सर्वैः प्राणिभिरमेया बुद्धिरात्मा जिनकी आत्मा—बुद्धि समस्त
 यस्य स अमेयात्मा । प्राणियोंसे अमेय (अनुमान न की जा
 सकने योग्य) है वे भगवान् अमेयात्मा हैं

महान्तमद्रिं गिरिं मन्दरं गोवर्धनं अमृतमन्थन और गोरक्षणके समय
 [क्रमशः] मन्दराचल और गोवर्धन
 च अमृतमन्थने गोरक्षणे च धृतवा- नामक महान् पर्वतोंको धारण किया
 या, इसलिये भगवान् महाद्रिधृक् हैं।
 निति महाद्रिधृक्; पान्तोऽयम् ॥३२॥ यह शब्द पान्त है। [अर्थात् महाद्रि-
 धृप् शब्दका प्रथमान्तरूप है] ॥३२॥

महेष्वासो महीभर्ता श्रीनिवासः सतां गतिः ।

अनिरुद्धः सुरानन्दो गोविन्दो गोविदां पतिः ॥३३॥

१८१ महेष्वासः, १८२ महीभर्ता, १८३ श्रीनिवासः, १८४ सता गतिः ।

१८५ अनिरुद्धः, १८६ सुगनन्दः, १८७ गोविन्दः, १८८ गोविदा पतिः ॥

महानिष्वास इषुक्षेपो यस्य स
महेष्वासः ।

एकार्णवाप्सुतां देवीं महीं च
बभारेति महीमर्ता ।

यस्य वक्षस्यनपायिनी श्रीर्वसति
सः श्रीनिवासः ।

मतां वैदिकानां साधूनां
पुरुषार्थमाधनहेतुः सतां गति ।

न केनापि प्रादुर्भावेषु निरुद्ध
इति अनिरुद्धः ।

सुरानानन्दयतीति सुगनन्दः ।

‘नष्टां वै धरणीं पूर्व-
मबिन्दधदगुहागताम् ।
गोविन्द इति तेनाहं
देवैर्वाग्भिरभिष्टुतः ॥’
(महा० कान्ति० ३४९ । ७०)

इति मोक्षधर्मवचनात् गोविन्दः ।

‘अहं किल्बिन्दो देवानां
त्वं गवामिन्द्रतां गतः ।
गोविन्द इति लोकाम्बां
स्तोष्यन्ति मुवि शाश्वतम् ॥’
(हरि० २ । १९ । ४५)

इति ।

जिनका इष्वास अर्थात् धनुष
महान् है वे भगवान् महेष्वास हैं ।

प्रलयकालीन जलमें डूबी हुई
पृथिवीको धारण किया था, इसलिये
महीमर्ता है ।

जिनके वक्षःस्थलमें कभी नष्ट न
होनेवाली श्री निवास करती है वे
भगवान् श्रीनिवास हैं ।

सन्तजन अर्थात् वैदिक-धर्मावलम्बी
सम्पुरुषोंके पुरुषार्थसाधनके हेतु होनेसे
भगवान् सतां गति हैं ।

प्रादुर्भावके समय किसीसे निरुद्ध
नहीं हुए, इसलिये अनिरुद्ध हैं ।

सुरा (देवताओं) को आनन्दित
करते हैं, इसलिये सुरानन्द हैं ।

‘मैंने पूर्वकालमें नष्ट हुई पाताल-
गत पृथिवीको पाया था; इसलिये
देवताओंने अपनी वाणीसे ‘गोविन्द’
कहकर मेरी स्तुति की’ इस मोक्षधर्म-
के वचनानुसार भगवान् गोविन्द हैं ।

हरिवंशमें कहा है—‘मैं देवताओंका
इन्द्र हूँ और तुम गौओंके इन्द्र हुए हो
इसलिये भूमण्डलमें लोग तुम्हें
‘गोविन्द’ कहकर तुम्हारी सर्वदा
स्तुति करेंगे ।’

‘गौरेषा तु यतो वाणी
ता च विन्दयते भवान् ।
गोविन्दस्तु ततो देव
मुनिभिः कथ्यते भवान् ॥’
इति च हरिवंशे (३।८८।५०)
गौर्वाणी तां विदन्तीति गोविदः
तेषां पतिर्विशेषेणेति गोविदां पतिः
॥३३॥

तथा ‘गौ-यह वाणी है और
आप उसे प्राप्त कराते हैं,
इसलिये हे देव ! मुनिजन आपको
गोविन्द कहते हैं ।’

गौ वाणीको कहते हैं उसे जो
जानते हैं वे गोविद् कहलाते हैं ।
उनके विशेषतः पति होनेके कारण
भगवान् गोविदां पति है ॥३३॥

मरीचिर्दमनो हंसः सुपर्णो भुजगोत्तमः ।

हिरण्यनाभः सुतपाः पद्मनाभः प्रजापतिः ॥३४॥

१८९. मरीचिः, १९०. दमनः, १९१. हंसः, १९२. सुपर्णः, १९३. भुजगोत्तमः ।

१९४. हिरण्यनाभः, १९५. सुतपाः, १९६. पद्मनाभः, १९७. प्रजापतिः ॥

तेजस्विनामपि तेजस्वात्
मरीचिः, ‘तेजस्तेजस्विनामहम्’ (गीता
१०।३६) इति भगवद्भचनात् ।

स्वाधिकारात्प्रमादधीः प्रजा
दमयितुं शीलमस्य वैवस्वतादि-
रूपेणेति दमनः ।

तेजस्वियोंका भी परम तेज होनेके
कारण मरीचि हैं। भगवान्ने कहा है—
‘मैं तेजस्वियोंका तेज हूँ ।’

अपने अधिकारमें प्रमाद करनेवाली
प्रजाको विवस्वान् (मूर्य) के पुत्र यम
आदिके रूपसे दमन करनेका भगवान्-
का स्वभाव है, इसलिये वे दमन हैं ।

अहं स इति तादात्म्यमाविनः
संसारमयं हन्तीति हंसः । पृषो-

‘अहं सः’ (मैं वह हूँ) इस प्रकार तादा-
त्म्यभावसे भावना करनेवालेका संसार-

दरादित्वाच्छन्दसाधुत्वम् । हन्ति
गच्छति सर्वशरीरेष्विति वा हंसः
'हंसः शुचिपत्' (क० उ० २।५।
२) इति मन्त्रवर्णान् ।

शोभनधर्माधर्मरूपपणत्वात् सु-
पर्णः, 'द्वा सुपर्णा' (मु० उ० ३।१।
१) इति मन्त्रवर्णान् । शोभनं पर्णं
यस्येति वा सुपर्णः 'सुपर्णः
पतनामस्मि' इति ईश्वरवचनान् ।

भुजेन गच्छतामुत्तमो भुज-
गोत्तमः ।

हिरण्यमिव कल्याणी नाभि-
रस्येति हिरण्यनाभः; हितरमणी-
यनाभित्वाद्वा हिरण्यनाभः ।

बदरिकाश्रमे नरनारायणरूपेण
शोभनं तपश्चरतीति सुतपाः । 'मन-
सश्चेन्द्रियाणां च लौकाग्र्यं परमं तपः ।'
(ब्रह्म० १३०।१८) इति स्मृतेः ।

भय नष्ट कर देते हैं, इसलिये भगवान्
हंस हैं । पृषोदरादिगणमें होनेके
कारण [अहं सः के स्थानमें] हंसः
प्रयोग सिद्ध होता है । अथवा सब
शरीरोंमें हन्ति—जाते हैं इसलिये हंस हैं ।
जैसा कि 'आकाशमें चलनेवाले सूर्य'
इस मन्त्रवर्णसे सिद्ध होता है ।

धर्म और अधर्मरूप सुन्दर पक्षोंके
कारण सुपर्ण है, जैसा कि मन्त्रवर्ण
है—'दो सुपर्ण (पक्षी) हैं ।' अथवा
जिनके सुन्दर पक्ष हैं वह गरुड ही
सुपर्ण हैं । भगवान्का वचन है—
'पक्षियोंमें मैं गरुड हूँ ।'

भुजाओंसे चलनेवालोंमें उत्तम होने-
से भुजगोत्तम हैं । [शेष-वासुकि आदि
भगवान्की विभूतियों होनेके कारण
उनका नाम भुजगोत्तम है] ।

भगवान्की नाभि हिरण्य (सुवर्ण)
के समान कल्याणमयी है; इसलिये वे
हिरण्यनाभ हैं अथवा हितकारी और
रमणीय नाभिवाले होनेसे हिरण्य-
नाभ हैं ।

बदरिकाश्रममें नर-नारायणरूपसे
सुन्दर तप करते हैं, इसलिये सुतपा हैं ।
स्मृति कहती है—'मन और इन्द्रियोंकी
एकाग्रता ही परम तप है ।'

पद्ममिव सुवर्तुला नाभिरस्येति,
हृदयपद्मस्य नाभौ मध्ये प्रकाश-
नाद्वा पद्मनाभः । पृषोदरादित्वा-
त्साधुत्वम् ।

पद्मके समान सुन्दर वर्तुलामार
नाभि होनेसे अथवा सबके हृदय-
पद्मकी नाभि—मध्यमें प्रकाशित होनेसे
भगवान् पद्मनाभ हैं । पृषोदरादिगगने
होनेसे [पद्मनाभिके स्थानमें] पद्मनाभ
प्रयोग शुद्ध समझना चाहिये ।

प्रजानां पतिः पिता प्रजा-
पतिः ॥ ३४ ॥

प्रजाओंके पति अर्थात् पिता होनेसे
प्रजापति है ॥ ३४ ॥



अमृत्युः सर्वदृक्सिंहः सन्धाता सन्धिमान्स्थिरः ।

अजो दुर्मर्षणः शास्ता विश्रुतात्मा सुरारिहा ॥ ३५ ॥

१९८ अमृत्युः, १९९ सर्वदृक्, २०० सिंहः, २०१ सन्धाता, २०२ सन्धिमान्,
२०३ स्थिरः । २०४ अज, २०५ दुर्मर्षणः, २०६ शास्ता, २०७ विश्रुतात्मा,
२०८ सुरारिहा ॥

मृत्युर्विनाशस्तद्वेतुर्षास्य न
विद्यते इति अमृत्युः ।

भगवान्में मृत्यु अर्थात् विनाश या
उसका कारण न होनेसे वे अमृत्यु हैं ।

प्राणिनां कृताकृतं सर्वं पश्यति
स्वाभाविकेन बोधेनेति सर्वदृक् ।

अपने स्वाभाविक ज्ञानसे प्राणियों-
के सब कर्म-अकर्मादि देखते हैं, इसलिये
सर्वदृक् हैं ।

हिनस्तीति सिंहः । पृषोदरादित्वा-
त्साधुत्वम् ।

हिंसन करनेके कारण सिंह हैं ।
पृषोदरादिगगने होनेसे [‘हिंस’ के
स्थानमें] सिंह प्रयोग सिद्ध होता है ।

इति नाम्नां द्वितीयं शतं विवृतम् ।

यहाँतक सहस्रनामके द्वितीय
शतकका विवरण हुआ ।

कर्मफलैः पुरुषान् सन्धत्त इति
सन्धाता ।

पुरुषोंको उनके कर्मोंके फलोंसे
संयुक्त करते हैं, इसलिये सन्धाता हैं ।

फलभोक्ता च स एवेति सन्धि-
मान् ।

सदैकरूपत्वात् स्थिरः ।

अजति गच्छति क्षिपति इति वा
अजः ।

मर्षितुं सोढुं दानवादिभिर्न
शक्यते इति दुर्मर्षणः ।

श्रुतिस्मृत्यादिभिः सर्वेषामनु-
शिष्टिं करोतीति शास्त्रा ।

विशेषेण श्रुतो येन सत्य-
ज्ञानादिलक्षणः आत्मातो विश्रुतात्मा

सुरारीणां निहन्तृत्वात्
सुरारिहा ॥ ३५ ॥

फलोंके भोगनेवाले भी वे ही हैं,
इसलिये सन्धिमान् हैं ।

सदा एकरूप होनेके कारण स्थिर हैं ।

[अज् धातुका अर्थ जाना या फेंकना
है] । भगवान् [भक्तोंके हृदयोंमें] जाते
और [असुरादि दुष्टोंको] फेंकते हैं,
इसलिये अज हैं ।

दानवादिसे मर्षण अर्थात् सहन
नहीं किये जा सकते, इसलिये भगवान्
दुर्मर्षण हैं ।

श्रुति-स्मृति आदिसे सबका अनु-
शासन करते हैं इसलिये शास्त्रा हैं ।

भगवान्ने सत्यज्ञानादि रूप आत्मा-
का विशेषरूपसे श्रवण (ज्ञान) किया
है, अतः वे विश्रुतात्मा हैं ।

सुरों (देवताओं) के शत्रुओंको
मारनेवाले होनेके कारण भगवान्
सुरारिहा हैं ॥ ३५ ॥



गुरुर्गुरुतमो धाम सत्यः सत्यपराक्रमः ।

निमिषोऽनिमिषः स्रग्वी वाचस्पतिरुदारधीः ॥ ३६ ॥

२०९ गुरुः, २१० गुरुतमः, २११ धाम, २१२ सत्यः, २१३ सत्यपराक्रमः ।

२१४ निमिषः, २१५ अनिमिषः, २१६ स्रग्वी, २१७ वाचस्पतिरुदारधीः ॥

सर्वविद्यानामुपदेष्टृत्वात्सर्वेषां
जनकत्वाद्वा गुरुः ।

सब विद्याओंके उपदेष्टा होनेसे
तथा सबके जन्मदाता होनेसे गुरु हैं ।

विरिञ्च्यादीनामपि ब्रह्मविद्या-
सम्प्रदायकत्वाद् गुरुतमः, 'यो
ब्रह्माणं विदधाति पूर्वम्' (श्वे० उ०
६।१८) इति मन्त्रवर्णात् ।

धामज्योतिः, 'नारायणपरो ज्योतिः'
(ना० उ० १३।१) इति मन्त्र-
वर्णात् । सर्वकामानामास्पदत्वाद्वा
धाम, 'परमं ब्रह्म परं धाम' (बृ० उ०
२।३।६) इति श्रुतेः ।

सत्यवचनधर्मरूपत्वात् सत्यः
'तस्मात् सत्यं परमं वदन्ति' इति
श्रुतेः; सत्यस्य सत्यमिति वा,
'प्राणा वै सत्यं तेनामेव सत्यम्' (बृ०
उ० २।३।६) इति श्रुतेः ।

सत्यः अवितथः पराक्रमो यस्य
सः सत्यपराक्रमः ।

निमीलिते यतो नेत्रे योगनिद्रा-
रतस्य अतो निमिषः ।

नित्यप्रबुद्धस्वरूपत्वात् अनि-
मिषः; मत्सररूपतया वा आत्म-
रूपतया वा अनिमिषः ।

भूततन्मात्ररूपां वैजयन्त्याख्यां
स्रजं नित्यं विभर्तीति सखी ।

ब्रह्मा आदिको भी ब्रह्मविद्या प्रदान
करनेवाले होनेसे गुरुतम हैं । मन्त्र-
वर्ण कहता है—'जो पहले ब्रह्माको
रचता है ।'

धाम ज्योतिकों कहते हैं । मन्त्र-
वर्णमें कहा है—'नारायण परम
ज्योति है' अथवा सम्पूर्ण कामनाओं-
के आश्रय होनेके कारण भगवान्
याम है । श्रुति कहती है—'परम
ब्रह्म और परम धाम है ।'

सत्य-भाषणरूप धर्मस्वरूप होनेसे
भगवान् सत्य हैं । श्रुति कहती है—
'इसीलिये सत्यको परम कहते हैं ।'
अथवा सत्यका भी सत्य है, इस-
लिये सत्य है । श्रुति कहती है—
'प्राण सत्य हैं, [परमात्मा] उनका
भी सत्य है ।'

जिनका पराक्रम सत्य अर्थात्
अमोघ है वे भगवान् सत्यपराक्रम हैं ।

योगनिद्रारत भगवान्के नेत्र मुँदे
हुए हैं, इसलिये वे निमिष हैं ।

नित्य-प्रबुद्धस्वरूप होनेके कारण
अनिमिष हैं; अथवा मत्सररूप या
आत्मारूप होनेसे अनिमिष हैं ।

सर्वदा भूततन्मात्रारूप वैजयन्ती-
माला धारण करते हैं, इसलिये सखी हैं ।

वाचो विद्यायाः पतिः वाचस्प- वाक् अर्थात् विद्याके पति होनेसे
तिः; सर्वार्थविषया धीर्बुद्धिरस्ये- वाचस्पति हैं । भगवान्की बुद्धि सर्व
त्युदारधीः; वाचस्पतिरुदारधीः पदार्थोंको प्रत्यक्ष करनेवाली है, इसलिये
इत्येकं नाम ॥ ३६ ॥ वे उदारधी हैं । इस प्रकार
वाचस्पतिरुदारधीः यह एक नाम
है ॥ ३६ ॥



अग्रणीग्रामणीः श्रीमान्न्यायो नेता समीरणः ।

सहस्रमूर्धा विश्वात्मा सहस्राक्षः सहस्रपात् ॥ ३७ ॥

२१८ अग्रणीः, २१९ ग्रामणीः, २२० श्रीमान्, २२१ न्यायः, २२२ नेता,
२२३ समीरणः । २२४ सहस्रमूर्धा, २२५ विश्वात्मा, २२६ सहस्राक्षः,
२२७ सहस्रपात् ॥

अग्रं प्रकृष्टं पदं नयति सुमुख-
निति अग्रणीः ।

भूतग्रामस्य नेतृत्वाद् ग्रामणीः ।

श्रीः कान्तिः सर्वातिशायिन्य-
स्येति श्रीमान् ।

प्रमाणानुग्राहकोऽभेदकारकस्तर्को
न्यायः ।

जगद्यन्त्रनिर्वाहको नेता ।

असन्नरूपेण भूतानि चेष्टयतीति
समीरणः ।

सुमुखोंको अग्र अर्थात् उत्तम पदपर
ले जाने हैं, इसलिये अग्रणी है ।

भूतग्रामका नेतृत्व करनेके कारण
ग्रामणी हैं ।

भगवान्की श्री अर्थात् कान्ति सबसे
बड़ी-चड़ी हैं, इसलिये वे श्रीमान् हैं ।

प्रमाणोंका आश्रयभूत अभेदबोधक
तर्क न्याय कहल्यता है [इसलिये
भगवान्का नाम न्याय है] ।

जगत् रूप यन्त्रको चलानेवाले होनेसे
नेता हैं ।

स्वासन्नरूपसे प्राणियोंसे चेष्टा कराते
हैं, इसलिये समीरण हैं ।

महस्राणि मूर्धानोऽस्येति सहस्र-
मूर्धा ।

विश्वस्यात्मा विश्वात्मा ।

सहस्राण्यक्षीण्यक्षाणि वा यस्य
स सहस्राक्षः ।

महस्राणि पादा अस्येति सहस्र-
पात् । 'सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः
सहस्रपात्' (पु० सू० १) इति
श्रुतेः ॥ ३७ ॥

भगवान्के सहस्र मूर्धा (शिर) हैं,
इसलिये वे सहस्रमूर्धा हैं ।

विश्वके आत्मा होनेसे विश्वात्मा हैं ।

जिनके सहस्र अक्ष (आँखें) या
सहस्र अक्ष (इन्द्रियाँ) हैं वे भगवान्
सहस्राक्ष हैं ।

भगवान्के सहस्र पाद (चरण)
हैं, इसलिये वे सहस्रपात् हैं । श्रुति
कहती है—'पुरुष सहस्र शिर, सहस्र
नेत्र और सहस्र पादवाला है' ॥ ३७ ॥



आवर्तनो निवृत्तात्मा संवृतः सम्प्रमर्दनः ।

अहःसंवर्तको वह्निरनिलो धरणीधरः ॥ ३८ ॥

२२८ आवर्तनः, २२९ निवृत्तात्मा, २३० संवृतः, २३१ सम्प्रमर्दनः ।

२३२ अहःसंवर्तकः, २३३ वह्निः, २३४ अनिलः, २३५ धरणीधरः ॥

आवर्तयितुं संसारचक्रं शील-
मस्येति आवर्तनः । संसारचक्रका आवर्तन करने
(घुमाने) का भगवान्का स्वभाव है,
इसलिये वे आवर्तन हैं ।

संसारबन्धाभिवृत्त आत्मा
स्वरूपमस्येति निवृत्तात्मा । उनका आत्मा अर्थात् स्वरूप संसार-
बन्धनसे निवृत्त (छूटा हुआ) है, इसलिये
वे निवृत्तात्मा हैं ।

आच्छादिकया अविद्यया संवृ-
तत्वाद् संवृतः । आच्छादन करनेवाली अविद्यासे
संवृत (ढके हुए) होनेके कारण
संवृत है ।

सम्यक् प्रमर्दयतीति रुद्रकाला-
द्याभिर्विभूतिभिरिति सम्प्रमर्दनः ।

सम्यग्गङ्गां प्रवर्तनात्सूर्यः अहः-
संवर्तकः ।

हविर्वहनात् वह्निः ।

अनिलयः अनिलः, अनादि-
त्वाद् अनिलः, अनादानाद्या,
अननाद्या अनिलः ।

शेषदिग्गजादिरूपेण वराहरूपेण
च धरणीधत्त इति धरणीधरः ॥३८॥

भगवान् अपनी रुद्र और काल आदि
विभूतियोंसे सबका सब ओरसे मर्दन
करते हैं, इसलिये सम्प्रमर्दन है ।

सम्यग्रूपसे दिनके प्रवर्तक होने-
के कारण सूर्य भगवान् अहःसंवर्तक हैं ।

हविका वहन करनेके कारण वह्नि हैं ।

[कोई निश्चित] निवासस्थान न
होनेके कारण भगवान् अनिल हैं ।
अथवा अनादि होनेसे अनिल हैं ।
अथवा ग्रहण न करनेके कारण या
चेष्टा करनेसे अनिल हैं ।

शेष और दिग्गजादिरूपसे अथवा
वराहरूपसे पृथिवीको धारण करते हैं,
इसलिये धरणीधर हैं ॥३८॥

सुप्रसादः प्रसन्नात्मा विश्वधृग्विश्वभुग्विभुः ।

सत्कर्ता सत्कृतः साधुर्जह्नुर्नारायणो नरः ॥ ३९ ॥

२३६ सुप्रसादः, २३७ प्रसन्नात्मा, २३८ विश्वधृक्, २३९ विश्वभुक्, २४० विभुः ।
२४१ सत्कर्ता, २४२ सत्कृतः, २४३ साधुः, २४४ जह्नुः, २४५ नारायणः,
२४६ नरः ॥

शोभनः प्रसादो यस्यापकारव-
तामपि शिशुपालादीनां मोक्षप्रदा-
तृत्वादिति सुप्रसादः ।

अपना अपकार करनेवाले शिशु-
पालादिको भी मोक्ष देनेके कारण
जिनका प्रसाद (कृपा) अति सुन्दर
है वे भगवान् सुप्रसाद हैं ।

रजस्तमोभ्यामकलुषित आत्मा-
न्तःकरणमस्येति प्रसन्नात्मा । करुणा-
द्रस्वभावत्वाद्वा, यद्वा प्रमत्तस्वभावः
कारुणिक इत्यर्थः अवाप्तमवकाम-
त्वाद्वा ।

विश्वं धृष्णोतीति विश्वधृक् ।
जिहृषा प्रागल्भ्ये ।

विश्वं भुङ्क्ते भुनक्ति पालयतीति
वा विश्वभुक् ।

हिरण्यगर्भादिरूपेण विविधं
भवतीति विभुः, 'नित्यं विभुम्'
(मु० उ० १।५।६) इति मन्त्र-
वर्णान् ।

सत्करोति पूजयतीति सत्कर्ता ।

पूजितैरपि पूजितः सत्कृतः ।

न्यायप्रवृत्तया साधुः; साध्य-
तीति वा साध्यभेदान्, उपादानात्
साध्यमात्रसाधको वा ।

भगवान्का अन्तःकरण रज और
तमसे दूषित नहीं है, इसलिये वे
प्रसन्नात्मा हैं । अथवा करुणाद्रस्वभाव
होनेसे प्रसन्नात्मा हैं । या प्रसन्नस्वभाव
यानी करुणा करनेवाले हैं अथवा
उन्हें सब प्रकारकी कामनाएँ प्राप्त हैं,
इसलिये वे प्रसन्नात्मा हैं ।

भगवान् विश्वको धारण करते हैं,
इसलिये वे विश्वधृक् हैं । प्रगल्भता-
वाचक 'जिहृषा' धातुसे धृक् बनता है ।

विश्वको भक्षण करने अथवा
भोगने यानी पालन करते हैं, इसलिये
विश्वभुक् है ।

हिरण्यगर्भादिरूपसे विविध होते
हैं, इसलिये विभु हैं । मन्त्रवर्ण कहता
है 'नित्य और विभुको' ।

सत्कार करते अर्थात् पूजते हैं,
इसलिये सत्कर्ता हैं ।

पूजितोंसे भी पूजित हैं, इसलिये
सत्कृत हैं ।

न्यायानुकूल प्रवृत्त होने हैं, इसलिये
साधु हैं । अथवा समस्त साध्यभेदोंका
साधन करते हैं या उपादान कारण
होनेसे साध्यमात्रके साधक हैं, इसलिये
साधु हैं ।

जनान् संहारसमये अपहृते
अपनयतीति जह्नुः जहात्यविदुषो
भक्ताभ्यति परम्पदमिति वा ।

नर आत्मा, ततो जातान्या-
काशादीनि नाराणि कार्याणि तानि
अयं कारणात्मना व्याप्नोति, अतश्च
तान्ययनमस्येति नारायणः—

‘यच्च किञ्चिज्जगत्सर्वं
दृश्यते श्रूयतेऽपि वा ।
‘अन्तर्बहिश्च तत्सर्वं
व्याप्य नारायणः स्थितः ॥’
(ना० उ० १३ । १-२)

इति मन्त्रवर्णात् ।

‘नराज्जातानि तत्त्वानि
नाराणीति ततो विदुः ।
तान्येव चायनं तस्य
तेन नारायणः स्मृतः ॥’

इति महाभारते ।

नाराणां जीवनामयनत्वात्प्रलय
इति वा नारायणः, ‘यत्प्रयन्त्यमिसं-
विशन्ति’ (तै० उ० ३ । १) इति
श्रुतेः । ‘नाराणामयनं यस्मात्तस्मान्नारा-
यणः स्मृतः’ इति ब्रह्मवैवर्तात्

‘आपो नारा इति प्रोक्ता
आपो वै नरसूनवः ।

संहारके समय जनों (जीवों) का
अपहृन्व (लय) या अपनयन
(वहन) करते हैं, इसलिये जह्नु
हैं । अथवा अज्ञानियोंको त्यागते
और भक्तोंको परम्पदपर ले जाते हैं,
इसलिये जह्नु हैं ।

नर आत्माको कहते हैं, उससे
उत्पन्न हुए आकाशादि नार हैं । उन
कार्यरूप नारोंको कारणरूपसे व्याप्त
करते हैं, इसलिये वे उनके अयन (घर)
हैं, अतः भगवान्का नाम नारायण
है । मन्त्रवर्ण कहता है—‘ओ कुछ भी
जगत्दिखायी या सुनायी देता है उस
सबको नारायण बाहर-भीतरसे व्याप्त
करके स्थित हैं ।’ महाभारतमें कहा है—
‘तस्व नरसे उत्पन्न हुए हैं, इसलिये वे
नार कहलाते हैं । वे ही पहले भगवान्-
के अयन थे, इसलिये भगवान्
नारायण कहलाते हैं ।’

अथवा प्रलय-कालमें नार अर्थात्
जीवोंके अयन होनेके कारण नारायण
हैं । श्रुति कहती है—‘जिसमें कि सब
औद्य भरकर प्रविष्ट होते हैं ।’
ब्रह्मवैवर्तपुराणमें कहा है—‘क्योंकि
[भगवान्] नारोंके अयन हैं, इसलिये
नारायण कहलाते हैं ।’ अथवा ‘अप्

ता यदस्यायनं पूर्वं

तेन नारायणः स्मृतः ॥'

(मनु० १।१०)

इति मनुवचनाद्वा नारायणः ।

‘नारायणाय नम इत्ययमेव सत्यः

संसारघोरविषसंहरणाय मन्त्रः ।

शृण्वन्तु भक्त्यमतयो यनयोऽस्तरागा

उच्चैस्तरामुपदिशाम्यहमूर्ध्वबाहुः ॥'

इति श्रीनारसिंहपुराणे ।

‘नयतीति नरः प्रोक्तः

परमात्मा सनातनः ।’

इति व्यासवचनम् ॥३९॥

(अल) नार कहलाता है क्योंकि वह नर (परमात्मा) का पुत्र है, और पहले वह (नार) ही परमात्मा-

का अयन था इसलिये वे नारायण कहलाते हैं ।’ इस मनुजीके वाक्यसे भी वे नारायण हैं । श्रीनारसिंह-पुराणमें कहा है—‘हे सुमति और चिरक यतिजन ! आपलोग सुनिये, मैं बाँह उठाकर बड़े जोरसे उपदेश करता हूँ कि नारायणाय नमः—यही सत्य है और यही संसाररूप घोर विषका नाश करनेके लिये मन्त्र है ।’

‘नयन करता (ले जाता) है, इसलिये सनातन परमात्मा नर कहलाता है’ इस व्यासजीके वचनानुसार भी [भगवान् नर हैं] ॥३९॥

असंख्येयोऽप्रमेयात्मा विशिष्टः शिष्टकृच्छुचिः ।

सिद्धार्थः सिद्धसङ्कल्पः सिद्धिदः सिद्धिसाधनः ॥ ४० ॥

२४७ असंख्येयः, २४८ अप्रमेयात्मा, २४९ विशिष्टः, २५० शिष्टकृत्, २५१ शुचिः ।

२५२ सिद्धार्थः, २५३ सिद्धसङ्कल्पः, २५४ सिद्धिदः, २५५ सिद्धिसाधनः ॥

यस्मिन्मंख्या नामरूपभेदादिः न विद्यत इति असंख्येयः ।

जिनमें संख्या अर्थात् नाम-रूप-भेदादि नहीं हैं वे भगवान् असंख्येय हैं ।

अप्रमेय आत्मा स्वरूपमस्येति अप्रमेयात्मा ।

उनका आत्मा अर्थात् स्वरूप अप्रमेय है, इसलिये वे अप्रमेयात्मा हैं ।

अतिशेते सर्वमतो विशिष्टः ।

सबसे अतिशय (बड़े-बड़े) हैं, इसलिये विशिष्ट हैं ।

शिष्टं शासनं तत् करोतीति शिष्टकृत्; शिष्टान् करोति पालयतीति वा । सामान्यवचनो धातुविशेषवचनो दृष्टः कुरु काष्ठानीत्याहरणे यथा, तद्वदिति वा शिष्टकृत् ।

शिष्ट शासनको कहते हैं, भगवान् शासन करते हैं, इसलिये वे शिष्टकृत् हैं । अथवा कहीं सामान्यार्थवाचक धातुको विशेष अर्थ बोधन करते भी देखा जाता है, जैसे 'कुरु काष्ठानि' इस वाक्यमें [कृ धातु] आहरण (लाने) के अर्थमें प्रयुक्त हुआ है; इसी प्रकार भगवान् शिष्टो (साधुओं) को करते या पालते हैं, इसलिये शिष्टकृत् हैं ।

निरञ्जनः शुचिः ।

मलहीन होनेमें शुचि है ।

मिद्धो निर्वृत्तः अर्थ्यमानोऽर्थोऽस्येति मिद्धार्थः 'सत्यकामः' (छा० उ० ८।७।१) इति श्रुतेः ।

भगवान्का इच्छित अर्थ सिद्ध अर्थात् निर्वृत्त (सम्पन्न) हो गया है, इसलिये 'सत्यकाम' आदि श्रुतिके अनुसार वे सिद्धार्थ हैं ।

मिद्धो निष्पन्नः सङ्कल्पोऽस्येति सिद्धसङ्कल्पः, 'सत्यसङ्कल्पः' (छा० उ० ८।७।१) इति श्रुतेः ।

उनका संकल्प मिद्ध अर्थात् पूर्ण हो गया है, इसलिये वे 'सत्यसङ्कल्प' आदि श्रुतिके अनुसार सिद्धसङ्कल्प हैं ।

सिद्धिं फलं कर्तव्यः स्वाधिकारानुरूपतो ददातीति सिद्धिदः ।

कर्ताओंको उनके अधिकारानुसार मिद्धि यानी फल देते हैं, इसलिये सिद्धिद हैं ।

सिद्धेः क्रियायाः साधकत्वात् सिद्धिसाधनः ॥ ४० ॥

सिद्धिरूप क्रियाके साधक होनेके कारण सिद्धिसाधन है ॥ ४० ॥

वृषाही वृषभो विष्णुर्वृषपर्वा वृषोदरः ।

वर्धनो वर्धमानश्च विविक्तः श्रुतिसागरः ॥ ४१ ॥

२५६ वृषाही, २५७ वृषभः, २५८ विष्णुः, २५९ वृषपर्वा, २६० वृषोदरः ।
२६१ वर्धनः, २६२ वर्धमानः, च, २६३ त्रिविक्तः, २६४ श्रुतिसागरः ॥

वृषो धर्मः पुण्यम्, तदेवाहः प्रकाश-
साधर्म्यात्, द्वादशाहप्रभृतिवृषाहः;
सोऽस्यास्तीति वृषाही । वृषाह इत्यत्र
'राजाहः सखिम्यष्टच्' (पा० सू० ५।४।
९।१) इति टच्प्रत्ययः समासान्तः ।

वर्षत्येष भक्तेभ्यः कामानिति
वृषभः ।

विष्णुः 'विष्णुर्विक्रमणात्' (महा०
उद्योग० ७०।१३) इति व्यासोक्तेः ।

वृषरूपाणि सोपानपर्वाण्याहुः
परं धामारुरुक्षोरित्यतो वृषपर्वा ।

प्रजा वर्षतीव उदरमस्येति
वृषोदरः ।

वर्धयतीति वर्धनः ।

प्रपञ्चरूपेण वर्धत इति ।

वृष धर्म या पुण्यको कहते हैं,
प्रकाशस्वरूपतामे समानता होनेके
कारण वही अहः (दिन) है । अतः
द्वादशाह आदि यज्ञोंको वृषाह कहते
हैं । वे द्वादशाहादि यज्ञ भगवान्‌में स्थित
हैं, अतः वे वृषाही हैं । वृषाह शब्द-
में 'राजाहः सखिम्यष्टच्' इस पाणिनि-
सूत्रके अनुसार समासान्त टच् प्रत्यय
हुआ है ।

भक्तोंके लिये भगवान्‌ कामों
(इच्छित वस्तुओं) की वर्षा करते हैं,
इसलिये वे वृषभ हैं ।

'सब ओर जाने (व्याप्त होने) के
कारण विष्णु हैं' इस व्यासजीकी
उक्तिके अनुसार भगवान्‌ विष्णु हैं ।

परमधाममें आरुढ़ होनेकी
इच्छावालेके लिये वृष (धर्म) रूप पर्व
(सीढ़ियाँ) बतलाये गये हैं, इसलिये
भगवान्‌ वृषपर्वा हैं ।

भगवान्‌का उदर मानो प्रजाकी वर्षा
करता है, इसलिये वे वृषोदर हैं ।

बढ़ाते हैं, इसलिये वर्धन हैं ।

प्रपञ्चरूपसे बढ़ते हैं, इसलिये

वर्धमानः ।

वर्धमान है ।

इत्थं वर्धमानोऽपि पृथगेव तिष्ठ-
तीति विवृक्तः ।

इस प्रकार बढ़ते हुए भी पृथक्
ही रहते हैं, इसलिये विवृक्त है ।

श्रुतयः सागर इवात्र निधीयन्ते
इति श्रुतिसागरः ॥ ४१ ॥

समुद्रके समान भगवान्में श्रुतियाँ
रखी हुई हैं, इसलिये वे श्रुतिसागर
हैं ॥ ४१ ॥

सुमुजो दुर्धरो वाग्मी महेन्द्रो वसुदो वसुः ।

नैकरूपो बृहद्रूपः शिपिविष्टः प्रकाशनः ॥ ४२ ॥

२६५ सुमुजः, २६६ दुर्धरः, २६७ वाग्मी, २६८ महेन्द्रः, २६९ वसुदः,
२७० वसुः । २७१ नैकरूपः, २७२ बृहद्रूपः, २७३ शिपिविष्टः, २७४ प्रकाशनः ॥

शोभना भुजा जगद्रक्षाकराः
अस्येति सुमुजः ।

भगवानकी जगत्की रक्षा करने-
वाली भुजाएँ अति सुन्दर हैं, अतः वे
सुमुज हैं ।

पृथिव्यादीन्यपि लोक-
धारकाण्यन्यर्धारयितुमशक्यानि
धारयन् न केनचिद्धारयितुं शक्य इति
दुर्धरः; दुःस्वेन ध्यानसमये मृमृक्षु-
मिर्हृदये धार्यत इति वा दुर्धरः ।

जो दूसरोंसे धारण नहीं किये जा
सकते, उन पृथिवी आदि लोकधारक
पदार्थोंको भी धारण करते हैं और
स्वयं किसीसे धारण नहीं किये जा
सकते, इसलिये दुर्धर हैं । अथवा
ध्यानके समय मुमुक्षुओंद्वारा अति
कठिनतासे हृदयमें धारण किये जाते
हैं, इसलिये वे दुर्धर हैं ।

यतो निःसृता ब्रह्ममयी वाक्
तस्मात् वाग्मी ।

क्योंकि भगवान्से वेदमयी वाणी-
का प्रादुर्भाव हुआ है, इसलिये वे
वाग्मी हैं ।

महांश्वासाविन्द्रश्चेति महेन्द्रः,
ईश्वराणामपीश्वरः ।

वसु धनं ददातीति वसुदः.
'अज्ञादो वसुदानः' (बृ० उ० ४।४।
२४) इति श्रुतेः ।

दीयमानं तद्वस्त्वपि स एवेति वा
वसुः आच्छादयत्यात्मस्वरूपं माय-
येति वा वसुः; अन्तरिक्ष एव वसति
नान्यत्रेति असाधारणेन वमनेन
वायुर्वा वसुः, 'वसुरन्तरिक्षसत्'
(क० उ० २।५।२) इति श्रुतेः ।

एकं रूपमस्य न विद्यत इति
नैकरूपः 'इन्द्रो मायामि' पुरुरूप ईयते'
(बृ० उ० २।५।१९) इति श्रुतेः
'ज्योतीषि विष्णुः' (विष्णु० २।१२।३८)
इत्यादिस्मृतेश्च ।

बृहन्महद्वराहारिरूपमस्येति
बृहद्रूपः ।

शिपयः पशवः, तेषु त्रिंशति प्रति-
तिष्ठति यज्ञरूपेणेति शिपिविष्टः यज्ञ-
मूर्तिः 'यज्ञो वै विष्णुः पशवः शिपिर्यज्ञ
एव पशुषु प्रतितिष्ठति' (नै० सं० १।७।
४) इति श्रुतेः । शिपयो रश्मयस्तेषु
निविष्ट इति वा ।

महान् इन्द्र अर्थात् ईश्वरोंके भी
ईश्वर होनेके कारण महेन्द्र हैं ।

वसु अर्थात् धन देते हैं, इसलिये
वसुद हैं । श्रुति कहती है—'अज्ञका
भीक्षा और वसुका देनेवाला है ।'

दिया जानेवाला वसु (धन) भी
वे ही है, इसलिये वसु हैं; अथवा माया-
से अपने स्वरूपको ढक डेते है इसलिये
वसु है । अथवा अन्तरिक्षमें ही वसते
हैं अन्यत्र नहीं; इस प्रकार अपने
असाधारण वासके कारण वायु ही
वसु है । श्रुति कहती है—'अन्तरिक्षमें
रहनेवाला वसु ।'

इनका एक ही रूप नहीं है,
इसलिये ये नैकरूप हैं । श्रुति कहती है—
'इन्द्र (परमात्मा) मायासे अनेक रूपसे
चेष्टा करता है ।' तथा 'ज्योतियों विष्णु
हैं' आदि स्मृतिका भी यही अभिप्राय है ।

भगवान् के वराह आदि रूप बृहत्
अर्थात् महान् हैं, इसलिये वे बृहद्रूप हैं ।

शिपि पशुको कहते हैं, उनमें
यज्ञरूपसे स्थित होते हैं, इसलिये
भगवान् यज्ञमूर्ति शिपिविष्ट हैं ।
श्रुति कहती है—'यज्ञ ही विष्णु है,
पशुओंको शिपि कहते हैं और यज्ञ ही
पशुओंमें स्थित होता है ।' अथवा
शिपि किरणोंको भी कहते हैं उनमें
स्थित हैं, इसलिये शिपिविष्ट हैं ।

‘शैत्याच्छयनयोगाच्च
शान्तिं वारि प्रचक्षते ।
नस्पानाद्रक्षणाच्चैव
शिषयो रक्षयो मताः ॥
तेषु प्रवेशादिष्वेशः
शिषिविष्ट इहोच्यते ।’

सर्वेषां प्रकाशनशीलत्वात्

प्रकाशनः ॥४२॥

‘शीतलता और विष्णुभगवान् के
शयनके कारण जलको शि कहते हैं,
उसका पान तथा रक्षा करनेके कारण
रक्षिमयों (किरणों) का नाम शिषि है,
तथा उनमें प्रविष्ट होनेके कारण
धीविश्वेश्वर लोकमें शिषिविष्ट
कहालाते हैं ।’

सबको प्रकाशित करनेवाले होनेके

कारण भगवान् प्रकाशन है ॥४२॥



ओजस्तेजोद्युतिधरः प्रकाशात्मा प्रतापनः ।

ऋद्धः स्पष्टाक्षरो मन्त्रश्चन्द्रांशुर्भास्करद्युतिः ॥ ४३ ॥

२७५. ओजस्तेजोद्युतिधरः, २७६. प्रकाशात्मा, २७७. प्रतापनः । २७८. ऋद्धः,
२७९. स्पष्टाक्षरः, २८०. मन्त्रः, २८१. चन्द्रांशुः, २८२. भास्करद्युतिः ॥

ओजः प्राणबलम्; तेजः शौर्यादयो
गुणाः, द्युतिर्दीप्तिः, ताः धारयतीति
ओजस्तेजोद्युतिधरः । अथवा, ओजस्तेज
इति नामद्वयम्, ‘बलं बलवता चाहम्’
(गीता ७।११) ‘तेजस्तेजस्विनामहम्’
(गीता ७।१०) इति भगवद्वच-
नात् । द्युतिं ज्ञानलक्षणां दीप्तिं
धारयतीति द्युतिधरः ।

प्रकाशस्वरूप आत्मा यस्य सः
प्रकाशात्मा ।

ओज प्राण और बलको, तेज गर-
वीरता आदि गुणोंको तथा द्युति दीप्ति
(कान्ति) को कहते हैं; भगवान्
उन्हें धारण करते हैं, इसलिये वे
ओजस्तेजोद्युतिधर कहलाते हैं ।
अथवा ‘मैं बलवानोंका बल हूँ’ और
‘तेजस्वियोंका तेज हूँ’ भगवान् के इन
वचनोंके अनुसार ओज और तेज ये दो
नाम हैं, ज्ञानस्वरूप दीप्तिको धारण
करते हैं, इसलिये द्युतिधर हैं ।

जिनका आत्मा (शरीर) प्रकाश-
स्वरूप है वे भगवान् प्रकाशात्मा
कहालाते हैं ।

सवित्रादिविभूतिभिः विश्वं
प्रतापयतीति प्रतापनः ।

सविता (सूर्य) आदि अपनी
विभूतियोंसे विश्वको तप्त करते हैं,
इसलिये प्रतापन हैं ।

धर्मज्ञानवैराग्यादिभिरुपेतत्वाद्
ऋद्धः ।

धर्म, ज्ञान और वैराग्यादिसे सम्पन्न
होनेके कारण ऋद्ध हैं ।

स्पष्टमुदात्तम् ओङ्कारलक्षणम-
क्षरमस्येति स्पष्टाक्षरः ।

भगवान्का ओङ्काररूप अक्षर स्पष्ट
अर्थात् उदात्त है, इसलिये वे स्पष्टाक्षर हैं ।

ऋग्यजुःसामलक्षणो मन्त्रः; मन्त्र-
बोध्यत्वाद्वा मन्त्रः ।

[भगवान् माक्षात्] ऋक्, साम और
यजुरूप मन्त्र हैं, अथवा मन्त्रोंमें जानने
योग्य होनेके कारण मन्त्र हैं ।

संसारतापतिगमांशुतापतापित-
चेतसां चन्द्रांशुरिवाह्लादकरत्वात्
चन्द्रांशुः ।

संसारतापरूप गुरुके तापसे सन्तप्त-
चित्त पुरुषोको चन्द्रमाकी किरणों-
के समान आह्लादित करनेवाले हैं,
इसलिये चन्द्रांशु है ।

भास्करद्युतिमाधर्ग्याद् भास्कर-
द्युतिः ॥ ४३ ॥

भास्करद्युति (सूर्यके तेज) के
समान धर्मवाले होनेके कारण भास्कर-
द्युति हैं ॥ ४३ ॥



अमृतांशुर्द्वयो भानुः शशविन्दुः सुरेश्वरः ।

औषधं जगतः सेतुः सत्यधर्मपराक्रमः ॥ ४४ ॥

२८३ अमृतांशुर्द्वयः, २८४ भानुः, २८५ शशविन्दुः, २८६ सुरेश्वरः ।

२८७ औषधम्, २८८ जगतः सेतुः, २८९ सत्यधर्मपराक्रमः ॥

मध्यमाने पयोनिषाव-
मृतांशोधन्द्रस्य उद्भवो यस्मात्सः
अमृतांशुर्द्वयः ।

[अमृतके लिये] समुद्रमन्थन
करते समय अमृतांशु—चन्द्रमाकी
उत्पत्ति जिन [कारणरूप परमात्मा]
से हुई थी वे भगवान् अमृतांशुर्द्वय हैं ।

भातीति भातुः, 'तमेव भान्त-
मनुभाति सर्वम्' (क० उ० २ । ५ ।
१५) इति श्रुतेः ।

शश इव बिन्दुर्लान्छनमस्येति
शशबिन्दुश्चन्द्रः तद्वत्प्रजाः पुष्पा-
तीति शशबिन्दुः । 'पुष्पामि चौपथीः
सर्वाः मोमो भूत्वा रसात्मकः' (गीता
१५ । १३) इति भगवद्वचनान् ।

सुगणां देवानां शोभनदानृणां
चेश्वरः सुरेश्वरः ।

संसाररोगभेषजत्वाद् औषधम् ।

जगतां समुच्चारणहेतुत्वादसम्भे-
दकारणत्वाद्वा सेतुवद्वर्णाश्रमा-
दीनां जगत्-सेतुः, 'एष सेतुर्विधरण
एषां लोकानामसम्भेदाय' (बृ० उ०
४ । ४ । २२) इति श्रुतेः ।

मत्या अवितथा धर्माः ज्ञानादयो
गुणाः पराक्रमश्च यस्य सः सत्यधर्म-
पराक्रमः ॥ ४४ ॥

भासित होनेके कारण भातु हैं ।
श्रुति कहती है—'उसीके भासित
होनेपर सब भासत हैं ।'

शश (खरगोश) के समान जिसमें
बिन्दु अर्थात् चिह्न है उस चन्द्रमाका
नाम शशबिन्दु है । उसके समान
सम्पूर्ण प्रजाका पोषण करते हैं, इसलिये
शशबिन्दु हैं । भगवान्का वचन है—
'मैं रसस्वरूप चन्द्रमा होकर सब
ओषधियोंका पोषण करता हूँ ।'

सुरों अर्थात् देवताओं और शुभ-
दानाओंके ईश्वर होनेके कारण
सुरेश्वर हैं ।

संसाररोगका औषध होनेके कारण
औषध हैं ।

संसारको पार करनेके हेतु होनेके
तथा सेतुके समान वर्णाश्रमोंके असम्भेद
(परस्पर न मिलने) के कारण होनेसे
जगत्सेतु हैं । श्रुति कहती है कि—
'इन लोकोंके पारस्परिक असम्भेद
(न मिलने) के लिये यही इनको
धारण करनेवाला सेतु है ।'

जिनके धर्म-ज्ञानादि गुण और
पराक्रम मध्य हैं—मिथ्या नहीं हैं वे
भगवान् सत्यधर्मपराक्रम हैं ॥ ४४ ॥

भूतभव्यभवन्नाथः पवनः पावनोऽनलः ।

कामहा कामकृत्कान्तः कामः कामप्रदः प्रभुः ॥ ४५ ॥

२९० भूतभव्यभवन्नाथः, २९१ पवनः, २९२ पावनः, २९३ अनलः ।

२९४ कामहा, २९५ कामकृत्, २९६ कान्तः, २९७ कामः, २९८ कामप्रदः,

२९९ प्रभुः ॥

भूतभव्यभवतां भूतग्रामाणां
नाथः, तैर्याच्यते तानुपतपति तेषा-
मीष्टे शास्तीति वा भूतभव्यभवन्नाथः ।

पवन इति पवनः, 'पवनः
पवतामस्मि' (गीता १०।३१) इति
भगवद्वचनात् ।

पावयतीति पावनः । 'मीयास्मा-
द्वातः पवते' (तै०उ०२।८) इति श्रुतेः ।

अनान् प्राणान् आत्मत्वेन ला-
तीति जीवः अनलः; णलतेर्गन्धवा-
चिनो नञ्पूर्वाद्वा 'अगन्धमरसम्'
इति श्रुतेः; न अलं पर्याप्तमस्य
विद्यत इति वानलः ।

भूत, भव्य (भविष्य) और भवत्
(वर्तमान) प्राणियोंके नाथ हैं, उनसे
याचना किये जाते हैं, उन्हें ताप देते हैं,
उनके ईश्वर हैं अथवा उनका शासन
करते हैं इसलिये भूतभव्यभवन्नाथ हैं ।

पवित्र करते हैं, इसलिये पवन है;
भगवान्‌का वचन है—'पवित्र करने-
वालोंमें मैं पवन हूँ ।'

चलाते हैं, इसलिये पावन है ।
जैसा कि श्रुति कहती है—'इसके भयसे
वायु चलता है ।'

अन अर्थात् प्राणोंको आत्मभावसे
ग्रहण करता है इसलिये जीवका नाम
अनल है । अथवा नञ्पूर्वक गन्धवाचक
णल्‌वातुसे अनल रूप बनता है; अतः
'अगन्ध है, अरस है' इत्यादि श्रुतिके
अनुसार परमात्माका नाम अनल है ।
अथवा भगवान्‌का अलं अर्थात् पर्याप्त-
भाव (अन्त) नहीं है, इसलिये वे
अनल हैं ।

कामान् हन्ति शुश्रूषाणां भक्तानां
हिंसकानां चेति कामहा ।

मोक्षकामी भक्तजनों तथा हिंसकों-
की कामनाओंको नष्ट कर देते हैं,
इसलिये कामहा हैं ।

सात्त्विकानां कामान् करोतीति
कामकृत्; कामः प्रद्युम्नः तस्य
जनकत्वाद्वा ।

सात्त्विक भक्तोंकी कामनाओंको पूरा
करते हैं, इसलिये कामकृत् हैं । अथवा
काम प्रद्युम्नको कहते हैं उनके जनक
होनेके कारण कामकृत् हैं ।*

अभिरूपतमः कान्तः ।

अन्यन्त रूपवान् हैं, इसलिये
कान्त हैं ।

काम्यतं पुरुषार्थाभिकाङ्क्षिभि-
रिति कामः ।

पुरुषार्थकी आकांक्षावालोंसे कामना
किये जाते हैं, इसलिये काम हैं ।†

भक्तेभ्यः कामान् प्रकर्षेण ददा-
तीति कामप्रदः ।

भक्तोंको प्रकर्षतासे उनकी कामना
की हुई वस्तुएँ देते हैं, इसलिये काम-
प्रद हैं ।

प्रकर्षेण भवनात् प्रभुः ॥ ४५ ॥

प्रकर्ष (अनिशयता) से हैं, इसलिये
प्रभु हैं ॥ ४५ ॥



युगादिकृद्युगावर्तो नैकमायो महाशनः ।

अदृश्यो व्यक्तरूपश्च सहस्रजिदनन्तजित् ॥ ४६ ॥

३०० युगादिकृत्, ३०१ युगावर्तः, ३०२ नैकमायः, ३०३ महाशनः ।

३०४ अदृश्यः, ३०५ व्यक्तरूपः, च, ३०६ सहस्रजित्, ३०७ अनन्तजित् ॥

❖ 'कामान् कृन्ततीति कामकृत्' इस व्युत्पत्तिके अनुसार कामहाके अर्थके
समान ही कामनाओंको काटते हैं इसलिये कामकृत् हैं ऐसा अर्थ भी है ।

† क=कृष्ण+अ=विष्णु+म=महादेव—इम विग्रहके अनुसार त्रिवैवरूप होनेसे
भो भगवान् काम हैं ।

युगादेः कालभेदस्य कर्तृत्वाद्
युगादिकृत्; युगातामादिमारम्भं
करोतीति वा ।

इति नाम्नां तृतीयं शतं विवृतम् ।

युगानि कृतादोन्यावर्तयति
कालात्मनेति युगावर्तः ।

एका माया न विद्यते बह्वीर्माया
बहुतीति नैकमायः । 'न लोपो नञः'
(पा० मू० ६ । ३ । ७३) इति
नकारलोपो न भवति, अकारा-
नुबन्धरहितस्यापि नकारस्य प्रति-
षेधवाचिनो विद्यमानत्वात् ।

महदशनमस्येति महाशनः ।
कल्पान्ते सर्वप्रसनात् ।

सर्वेषां बुद्धीन्द्रियाणामगम्यः
अदृश्यः ।

स्थूलरूपेण व्यक्तं स्वरूपमस्येति
व्यक्तरूपः; स्वयंप्रकाशमानत्वाद्यो-
गिनां व्यक्तरूप इति वा ।

सुरारोणां सहस्राणि युद्धे जय-
तीति सहस्रजित् ।

युगादि कालभेदके कर्ता होनेके
कारण युगाविकृत् हैं । अथवा युगादि-
का आरम्भ करते हैं इसलिये युगादि-
कृत् हैं ।

यहाँतक सहस्रनामके तीसरे शतक-
का विवरण हुआ ।

कालरूपसे सत्ययुग आदि युगोंका
आवर्तन करते हैं, इसलिये युगावर्त हैं ।

जिनकी एक ही माया नहीं है
बल्कि जो अनेकों मायाओंको धारण
करते हैं वे भगवान् नैकमाय हैं ।
'न लोपो नञः' इस पाणिनि-सूत्रमें
यहाँ नकारका लोप नहीं होना,
क्योंकि अकारानुबन्धमें रहित 'न' भी
प्रतिषेध अर्थमें होता है ।

कल्पान्तमें सबको प्रसन्न लेते हैं
इसलिये भगवान्का महान् अशन
(भोजन) है, अतः वे महाशन
कहलाते हैं ।

समस्त ज्ञानेन्द्रियोंके अविषय हैं,
इसलिये अदृश्य है ।

स्थूलरूपसे भगवान्का स्वरूप व्यक्त
है, इसलिये वे व्यक्तरूप हैं । अथवा
स्वयंप्रकाश होनेसे योगियोंके लिये
व्यक्तरूप हैं ।

युद्धमें सहस्रों देवशत्रुओंको जीतते
हैं, इसलिये सहस्रजित् हैं ।

सर्वाणि भूतानि युद्धक्रीडादिषु
सर्वत्राचिन्त्यशक्तितया जयतीति
अनन्तजित् ॥४६॥

अचिन्त्य शक्ति होनेके कारण युद्ध
और क्रीडा आदिमें सर्वत्र समस्त भूतों-
को जीतते हैं, इसलिये अनन्तजित्
हे ॥ ४६ ॥

इष्टोऽविशिष्टः शिष्टेष्टः शिखण्डी नहुषो वृषः ।

क्रोधहा क्रोधकृत्कर्ता विश्वबाहुर्महीधरः ॥ ४७ ॥

३०८ इष्टः, ३०९ अविशिष्टः, ३१० शिष्टेष्टः, ३११ शिखण्डी, ३१२ नहुषः,
३१३ वृषः । ३१४ क्रोधहा, ३१५ क्रोधकृत्कर्ता, ३१६ विश्वबाहुः,
३१७ महीधरः ॥

परमानन्दात्मकत्वेन प्रिय इष्टः,
यज्ञेन पूजित इति वा इष्टः ।

परमानन्दरूप होनेके कारण प्रिय
है इसलिये इष्ट है, अथवा यज्ञद्वारा पूजे
जाते हैं इसलिये इष्ट है ।

सर्वेषामन्तर्यामित्वेन अविशिष्टः ।
शिष्टानां विदुषामिष्टः शिष्टेष्टः;
शिष्टा इष्टा अस्यंति वा,
'प्रियो हि ज्ञानिनोऽन्यथमहं न च मम
प्रियः' (गीता ७ । १७) इति
भगवद्वचनात्; शिष्टैरिष्टः पूजित
इति वा शिष्टेष्टः ।

सर्वके अन्तर्यामी होनेसे अविशिष्ट हैं।
शिष्ट अर्थात् विद्वानोंके इष्ट हैं,
इसलिये शिष्टेष्ट हैं। अथवा भगवान्के
शिष्टजन इष्ट (प्रिय) हैं, इसलिये वे
शिष्टेष्ट हैं; जैसा कि भगवानने कहा है—
'मैं ज्ञानीको अत्यन्त प्रिय हूँ और वह
मुझे प्रिय है।' अथवा शिष्टोंसे इष्ट
अर्थात् पूजित होनेके कारण शिष्टेष्ट है ।

शिखण्डः कलापोऽलङ्कारोऽस्येति
शिखण्डी यतो गोपवेषधरः ।

शिखण्ड (मयूरपिच्छ) भगवान्का
शिरोभूषण है अतः वे शिखण्डी हैं,
क्योंकि वे गोपवेषधारी हुए थे ।

नहति भूतानि माययातो
नहुषः, णह् बन्धने ।

भूतोंको मायासे नष्ट करने (बाँधने)
हैं, इसलिये नहुष है । णह् धातु बाँधने
अर्थमें है ।

कामानां वर्षणाद् वृषः धर्मः

‘वृषो हि भगवान्धर्मः

स्मृतो लोकेषु भारत ।

नैषण्डकपदान्यानै-

र्विद्धि मां वृषमुत्तमम् ॥’

इति महाभारते (शान्ति०
३४२।८८) ।

साधूनां क्रोधं हन्तीति क्रोधहा ।

असाधुषु क्रोधं करोतीति
क्रोधकृत् ।

क्रियत इति कर्म जगत्तस्य
कर्ता ‘यो वै बालाक एतेषां पुरुषाणां कर्ता
यस्य वैतत्कर्म स वेदितव्यः’ (कौ०
उ० ४।१८) इति श्रुतेः ।

क्रोधकृतां दैत्यादीनां कर्ता
छेदक इत्येकं वा नाम ।

विश्वेषामालम्बनत्वेन, विश्वे वा-
हवोऽस्येति विश्वतो ब्राह्मवोऽस्येति
वा विश्वबाहुः ‘विश्वतोबाहुः’ (श्वे०
उ० ३।३) इति श्रुतेः ।

महीं पूजां धरणीं वा धरतीति
महीधरः ॥ ४७ ॥

कामनाओंकी वर्षा करनेके कारण
धर्मको वृष कहते हैं । महाभारतमें
कहा है—‘हे भारत ! लोकोंमें निघण्डु-
की पदारूपातिके अनुसार भगवान्
धर्मको वृष कहते हैं, अतः मुझे भी
उत्तम वृष ही जान ।’

साधुओंका क्रोध नष्ट कर देते हैं,
इसलिये क्रोधहा है ।

असाधुओंपर क्रोध करते हैं, इस-
लिये क्रोधकृत् है ।

जो किया जाय उसे कर्म कहते हैं,
इस प्रकार जगत् कर्म है और भगवान्
उमके कर्ता हैं, जैसा कि श्रुति कहती
है—‘हे बालाके ! इन पुरुषोंका जो करने-
वाला है, अथवा जिसके ये सब कर्म
हैं उसे जानना चाहिये ।’

अथवा क्रोध करनेवाले दैत्यादिकोके
कर्त्तन करनेवाले हैं, इसलिये क्रोधकृत्-
कर्ता यह एक ही नाम है ।

सबके आलम्बन (आश्रयस्थान)
होनेके कारण या सभी भगवान्के बाहु
हैं, इसलिये अथवा उसके बाहु सब ओर
हैं, इसलिये ‘विश्वतोबाहुः’ इस श्रुतिके
अनुसार ये विश्वबाहु हैं ।

मही-पूजा या पृथिवीको धारण
करते हैं, इसलिये महीधर हैं ॥ ४७ ॥

अच्युतः प्रथितः प्राणः प्राणदो वासवानुजः ।

अपां निधिरधिष्ठानमप्रमत्तः प्रतिष्ठितः ॥ ४८ ॥

३१८ अच्युतः, ३१९ प्रथितः, ३२० प्राणः, ३२१ प्राणदः, ३२२ वासवानुजः ।

३२३ अपां निधिः, ३२४ अधिष्ठानम्, ३२५ अप्रमत्तः, ३२६ प्रतिष्ठितः ॥

पटुभावविकाररहितत्वाद् अ-
च्युतः 'शाश्वतः शिवमच्युतम्' (ना०
उ० १३ । १) इति श्रुतेः ।

जगदुत्पत्त्यादिकर्मभिः प्र-
ख्यातः प्रथितः ।

सुत्रात्मना प्रजाः प्राणयतीति
प्राणः 'प्राणो या अहमस्मि' इति
बह्वृचाः ।

सुराणामसुराणां च प्राणं बलं
ददाति घति वेति प्राणदः ।

अदित्यां कश्यपादामवस्यानुजो
जात इति वासवानुजः ।

आपो यत्र निधीयन्ते सः
अपा निधिः, 'सरसामस्मि सागरः'
(गीता १० । २४) इति भगवद्-
चनात् ।

छः भावविकारोसे रहित होनेके
कारण अच्युत है । श्रुति कहती है—
'शाश्वत शिव और अच्युत हैं ।'

जगत्की उत्पत्ति आदि कर्मोंके
कारण प्रसिद्ध है, इसलिये प्रथित हैं ।

हिरण्यगर्भरूपसे प्रजाको जीवन
देने हैं, इसलिये प्राण है । इस
विषयमें 'अथवा मैं प्राण हूँ' यह
बह्वृच-श्रुति प्रमाण है ।

देवताओं और दैत्योंको क्रमशः
प्राण अर्थात् बल देने या नष्ट करने
हैं, इसलिये प्राणद हैं ।

[वामनावतारमें] कश्यपजीद्वारा
अदितिसे वासव (इन्द्र) के अनुज-
रूपसे उत्पन्न हुए थे, इसलिये
वासवानुज हैं ।

जिसमें अप् (जल) एकत्रित
रहना है उस (समुद्र) को अपां निधि
कहते हैं 'सरोंमें मैं सागर हूँ' इस
भगवान्‌के वचनानुसार [समुद्र
भगवान्‌की विभूति होनेके कारण
उनका नाम अपां निधि है] ।

अधितिष्ठन्ति भूतानि उपादान-
कारणत्वेन ब्रह्मेति अधिष्ठानम्,
'मास्थानि सर्वभूतानि' (गीता ९।४)
इति भगवद्वचनात् ।

उपादान कारणरूपसे सब भूत
ब्रह्ममें स्थित हैं, इसलिये वह अधिष्ठान
है; जैसा कि भगवान् कहते हैं—
'सब भूत मुझहीमें स्थित हैं ।'

अधिकारिभ्यः कर्मानुरूपं फलं
प्रयच्छन्न प्रमादयतीति अप्रमत्तः ।

अधिकारियोंको उनके कर्मानुसार
फल देते हुए कभी प्रमाद (चक)
नहीं करते, इसलिये अप्रमत्त हैं ।

स्वे महिम्नि स्थितः प्रतिष्ठितः,
'स भगव' कस्मिन्प्रतिष्ठित इति
स्वे महिम्नि' (छा० उ० ७।२४।१)
इति श्रुतेः ॥ ४८ ॥

अपनी महिमामें स्थित हैं, इसलिये
प्रतिष्ठित हैं । श्रुति कहती है—
'भगवन् ! यह किसमें स्थित है ?
अपनी महिमामें' ॥४८॥



स्कन्दः स्कन्दधरो धुर्यो वरदो वायुवाहनः ।

वासुदेवो बृहद्भानुरादिदेवः पुरन्दरः ॥ ४९ ॥

३२७ स्कन्दः, ३२८ स्कन्दधरः, ३२९ धुर्यः, ३३० वरदः, ३३१ वायु-
वाहनः । ३३२ वासुदेवः, ३३३ बृहद्भानुः, ३३४ आदिदेवः, ३३५ पुरन्दरः ॥

स्कन्दत्यमृतरूपेण गच्छति
वायुरूपेण शोषयतीति वा स्कन्दः ।

स्कन्दन करते हैं, अर्थात् अमृत-
रूपसे बहते अथवा वायुरूपसे सुखाते
हैं, इसलिये स्कन्द हैं ।

स्कन्दं धर्मपथं धारयतीति
स्कन्दधरः ।

स्कन्द अर्थात् धर्ममार्गको धारण
करते हैं, इसलिये स्कन्दधर हैं ।

धुरं वहति समस्तभूतजन्मादि-
लक्षणाभिनि धुर्यः ।

समस्त भूतोंके जन्मादिरूप धुर
(बोझ) को धारण करते हैं, इसलिये
धुर्य हैं ।

अभिमतान्वरान्ददातीति, वरं
गां दक्षिणां ददाति यजमान-
रूपेणेति वा वरदः 'गौर्वै वरः'
इति श्रुतेः ।

मरुतः सप्त आवहादीन्वाहय-
तीति वायुवाहनः ।

वसति वासयति आच्छादयति
सर्वमिति वा वासुः, दीव्यति
क्रीडते विजिगीषते व्यवहरति
घोतते स्तूयते गच्छतीति वा देवः,
वासुश्चासौ देवश्चेति वासुदेवः ।

'छादयामि जगत्सर्वं

भूत्वा सूर्यं इवाग्निः ।

सर्वभूताधिवासश्च

वासुदेवस्ततः स्मृतः ॥'

(महा० शान्ति० ३४१ । ४१)

'वासनात्सर्वभूतानां

वसुत्वाद्देवयंनितः ।

वासुदेवस्ततो वेद्यः.....॥'

इति उद्योगपर्वणि (७० । ३) ।

इच्छित वर देते हैं, अथवा यजमान-
रूपसे दक्षिणामें वर अर्थात् गौ देते
हैं, इसलिये वरद हैं । श्रुति कहती है
'गौ ही वर है ।'

आवह आदि सान वायुओंको
चलाते हैं, इसलिये वायुवाहन हैं । *

वसते हैं अथवा सबको वासित
पाना आच्छादित करते हैं, इसलिये
वासु हैं तथा दीव्यति अर्थात् क्रीडा
करने, जीतनेकी इच्छा करते, व्यवहार
करने, प्रकाशित होने, स्तुति किये
जाते अथवा जाते हैं, इसलिये देव हैं ।
इम प्रकार जो वासु भी हैं और देव भी
हैं वे भगवान् वासुदेव हैं । यथा—'मैं
सूर्यके समान होकर अपनी किरणोंसे
सम्पूर्ण जगत्को ढक लेता हूँ तथा
समस्त भूतोंका निवासस्थान भी हूँ,
इसलिये वासुदेव कहलाता हूँ ।'
तथा उद्योगपर्वमें कहा है—'समस्त
प्राणियोंको बसानेसे, वसुरूप होने-
से और देयताओंका उद्भवस्थान
होनेसे भगवान्को वासुदेव जानना
चाहिये ।'

⊗ आवह, प्रवह, अनुवह, संवह, विवह, परावह और परिवह—ये वायुके सात
भेद हैं । इनमेंसे मेघ और पृथिवीके बीचमें आवह, मेघ और सूर्यके बीचमें प्रवह,
सूर्य और चन्द्रके बीचमें अनुवह, चन्द्र और नक्षत्रोंके बीचमें संवह, नक्षत्रों और
ग्रहोंके बीचमें विवह, ग्रहों और सप्तर्षियोंके बीचमें परावह तथा सप्तर्षियों और
भ्रुवके बीचमें परिवह रहता है ।

‘सर्वत्रासौ समस्तं च
वसत्यत्रेति वै यतः ।
ततः स वासुदेवेति
विद्वद्भिः परिपठ्यते ॥’
(१।२।१२)

‘सर्वाणि तत्र भूतानि
वसन्ति परमात्मनि ।
भूतेषु च स सर्वात्मा
वासुदेवस्ततः स्मृतः ॥’
(१।५।८०)

इति च विष्णुपुराणे ।

‘बृहन्तो भानवो यस्य
चन्द्रमूर्यादिगामिनः ।
तैर्ब्रह्मं भासयति यः
स बृहद्भानुरुच्यते ॥’

आदिः कारणम्, स चार्सा देव-
श्चेति आदिदेवः; द्योतनादिगुण-
वान् देवः ।

सुरशत्रूणां पुराणां दारणात्
पुरन्दरः ‘वाचंयमपुरन्दरौ च’ (पा०
मू० ६।३।६९) इति पाणिनिना
निपातनात् ॥४९॥

विष्णुपुराणमें कहा है—‘वह (पर-
मात्मा) इस सम्पूर्ण लोकमें सर्वत्र सब
वस्तुओंमें बसता है इसलिये विद्वज्जन
उसे वासुदेव कहते हैं ।’ ‘सब भूत उस
परमात्मामें बसते हैं तथा सब
भूतोंमें वह सर्वात्मा बसता है इस-
लिये वह वासुदेव कहलाता है ।’

‘जिसकी सूर्य और चन्द्रमा आदि-
में जानेवाली अति बृहत् (महान्) भानु
(किरणें) हैं, और जो सम्पूर्ण जगत् को
प्रकाशित करता है वह परमात्मा
बृहद्भानु कहलाता है ।’

मन्त्रके आदि अर्थात् कारण हैं और
देव भी हैं इसलिये आदिदेव हैं ।
अथवा द्योतन (प्रकाशन) आदि
गुणवाले होनेसे ही देव है ।

देवशत्रुओंके पुरों (नगरों) का
ध्वंस करनेके कारण पुरन्दर हैं ।
‘वाचंयमपुरन्दरौ च’ इस सूत्रसे
भगवान् पाणिनिने पुरन्दर शब्दका
निपातन किया है ॥४९॥



अशोकस्तारणस्तारः शूरः शौरिर्जनेश्वरः ।

अनुकूलः शतावर्तः पद्मी पद्मनिभेक्षणः ॥ ५० ॥

३३६ अशोकः, ३३७ तारणः, ३३८ तारः, ३३९ शूरः, ३४० शौरिः, ३४१ जनेश्वरः । ३४२ अनुकूलः, ३४३ शतावर्तः, ३४४ पक्षी, ३४५ पञ्चनिभेक्षणः ॥

शोकादिषट्पदमिवर्जितः अशोकः ।

शोकादि छः ऊर्मियोंसे रहित हैं, इसलिये अशोक हैं ।

संसारसागराचारयतीति तारणः ।

संसार-सागरमें तारते हैं, इसलिये तारण हैं ।

गर्मजन्मजरामृत्युलक्षणाद्गया-
चारयतीति तारः ।

गर्म-जन्म-जरा-मृत्युरूप भयसे तारते हैं, इसलिये तार हैं ।

विक्रमणान् शूरः ।

विक्रम यानी पुरुषार्थ करनेके कारण शूर हैं ।

शूरस्यापत्यं वसुदेवस्य सुतः
शौरिः ।

शूरकी मन्तान अर्थात् वसुदेवके पुत्र होनेसे शौरि हैं ।

जनानां जन्तूनामीश्वरो जनेश्वरः ।

जन अर्थात् जीवोंके ईश्वर होनेसे जनेश्वर हैं ।

आत्मन्वेन हि सर्वेषाम् अनुकूलः,
नहि स्वस्मिन्प्रातिकूल्यं स्वयमा-
चरति ।

सबके आत्मारूप होनेसे अनुकूल हैं, क्योंकि कोई भी अपने प्रतिकूल आचरण नहीं करता, इसलिये [भगवान् आत्मभावसे] अनुकूल हैं ।

धर्मत्राणाय शतमावर्तनानि प्रा-
दुर्भावा अस्येति शतावर्तः नाडीशतं
प्राणरूपेण वर्तत इति वा ।

धर्मरक्षके लिये भगवान्के सैकड़ों आवर्तन अर्थात् अवतार हुए हैं इस-
लिये वे शतावर्त हैं । अथवा प्राणरूपसे [हृदयदेशमें निकलनेवाली] सौ नाड़ियोंमें आवर्तन करते हैं, इसलिये शतावर्त हैं ।

पञ्चं हस्ते विद्यत इति पक्षी ।

भगवान्के हाथमें पक्ष है, इसलिये वे पक्षी हैं ।

पद्मनिभे ईक्षणे दृशावस्येति
पद्मनिभेक्षणः ॥ ५० ॥

उनके ईक्षण अर्थात् नेत्र पद्मके
समान हैं, इसलिये वे पद्मनिभेक्षण
हैं ॥ ५० ॥



पद्मनाभोऽरविन्दाक्षः पद्मगर्भः शरीरभृत् ।

महर्षिर्ऋद्धो वृद्धात्मा महाक्षो गरुडध्वजः ॥ ५१ ॥

३४६ पद्मनाभः, ३४७ अरविन्दाक्षः, ३४८ पद्मगर्भः, ३४९ शरीरभृत् ।
३५० महर्षिः, ३५१ ऋद्धः, ३५२ वृद्धात्मा, ३५३ महाक्षः, ३५४ गरुडध्वजः ॥

पद्मस्य नाभौ मध्ये कर्णिकायां
स्थित इति पद्मनाभः ।

[हृदयरूपः पद्मकी नाभि अर्थात्
कर्णिकाके बीचमें स्थित है, इसलिये
पद्मनाभ हैं ।

अरविन्दसदृशे अक्षिणी
अस्येति अरविन्दाक्षः ।

भगवान्की अक्षि (आँख) अरविन्द
(कमल) के समान हैं, इसलिये वे
अरविन्दाक्ष हैं ।

पद्मस्य हृदयाग्न्यस्य मध्ये
उपास्यत्वात् पद्मगर्भः ।

हृदयरूप पद्मके मध्यमें उपासना
किये जानेके कारण पद्मगर्भ हैं ।

पोषयन्नन्नरूपेण प्राणरूपेण वा
शरीरिणां शरीराणि धारयतीति
शरीरभृत् । स्वमायया शरीराणि
विभर्तीति वा ।

अन्नरूपमें अथवा प्राणरूपमें देह-
धारियोंके शरीरोंका पोषण करने हुए
उन्हें धारण करनेके कारण शरीरभृत्
हैं । अथवा अपनी मायामें शरीर धारण
करते हैं, इसलिये शरीरभृत् हैं ।

महती ऋद्धिर्बिभृतिरभ्येति
महर्षिः ।

भगवान्की ऋद्धि अर्थात् विभूति
महान् है, इसलिये वे महर्षि हैं ।

प्रपञ्चरूपेण वर्तमानत्वाद् ऋद्धः ।

प्रपञ्चरूप होनेसे वे ऋद्ध हैं ।

वृद्धः पुरातन आत्मा यस्येति
वृद्धात्मा ।

जिनका आत्मा (देह) वृद्ध अर्थात्
पुरातन है वे भगवान् वृद्धात्मा हैं ।

महती अक्षिणी महान्त्यक्षीणि
वा अस्यति महाक्षः ।

भगवान्की दो अथवा अनेकों महान्
अक्षि (आँखें) हैं, इसलिये वे
महाक्ष हैं ।

गरुडाङ्गो ध्वजो यस्येति
गरुडध्वजः ॥५१॥

उनकी ध्वजा गरुडके चिह्नवाली
है, इसलिये वे गरुडध्वज हैं ॥५१॥



अतुलः शरभो भीमः समयज्ञो हविर्हरिः ।

सर्वलक्षणलक्षण्यो लक्ष्मीवान्समितिञ्जयः ॥ ५२ ॥

३५५ अतुलः, ३५६ शरभः, ३५७ भीमः, (अभीमः), ३५८ समयज्ञः, ३५९
हविर्हरिः । ३६० सर्वलक्षणलक्षण्यः, ३६१ लक्ष्मीवान्, ३६२ समितिञ्जयः ॥

तुलोपमानमस्य न विद्यत इति
अतुलः, 'न तस्य प्रतिमाम्नि यस्य
नाम महद्यशः' (श्रौ० उ० ४ । १९)
इति श्रुतः । 'न त्वन्ममोऽस्त्यभ्यधिक
कुतोऽन्यः' (गीता ११ । ४२)
इति स्मृतेश्च ।

भगवान्की कोई तुलना अर्थात्
उपमा नहीं है, इसलिये वे अतुल हैं ।
श्रुति कहती है—'जिसका नाम ही
महान् यश है उस परमात्माकी कोई
तुलना नहीं है।' स्मृति (श्रीभगवद्गीता)
में भी कहा है—'आपके समान ही
कोई नहीं है फिर अधिक तो कहाँसे
आया ?'

शराः शरीराणि शीर्यमाणत्वा-
त्तेषु प्रत्यगात्मतया भातीति
शरभः ।

शीर्यमाण (नाशवान्) होनेके
कारण शरीरकों ही शर कहते हैं;
उनमें प्रत्यगात्मारूपमें भासते हैं, इस-
लिये शरभ हैं ।

विभेत्यस्मात्सर्वमिति भीमः ।
'भीमादयोऽपादाने' (पा० सू० ३ ।
४ । ७४) इति पाणिनिस्मृतेः ।

भगवान्से सब भय मानते हैं, इसलिये
वे भीम हैं । 'भीमादयोऽपादाने'
इस पाणिनिस्मृत्यसे अपादान कारकमें
भीम शब्दका निपातन हुआ है ।

सन्मार्गवर्तिनाम् अर्चामः इति वा ।

सृष्टिस्थितिसंहारसमयवित्, पट-
समयाज्ञानातीति वा समयज्ञः ।
सर्वभूतेषु समन्त्रं यजनं माध्वम्येति
वा, 'ममन्वमाधनमभ्युतन्य' (विष्णु०
१ । १० । ९०) इति प्रह्लाद-
वचनान् ।

यज्ञेषु हविर्भागं हरतीति
हविर्हविः^१ 'अहं हि सर्वयज्ञाना भोक्ता
अ प्रभुरेव अ' (गीता ९ । २४)
इति भगवद्वचनान् । अथवा हयते
हविषेति हविः, 'अवधनारुणं पशुम्'
(पु० सू० १५) इति हविष्ट्वं श्रूयते ।
स्मृतिमात्रेण पुंसां पापं संसारं वा
हरतीति, हरिद्वर्णत्वाद्वा हरिः ।

'हराम्यर्थं च स्मृत्तृणां
हविर्भागं क्रतु' इत्यम् ।
वर्णश्च मे हरिः श्रेष्ठ-
स्तस्मादग्निहं स्मृतः ॥*

इति भगवद्वचनान् ।

अथवा उत्तम मार्गका अवलम्बन करने-
वालोंके लिये 'अमीम' हैं ।

सृष्टि, स्थिति और संहारके समयको
जाननेवाले हैं अथवा छः समयों
(क्रतुओं) को जानते हैं, इसलिये
समयज्ञ हैं, अथवा समस्त भूतोंमें
मममाय रहना ही भगवानका श्रेष्ठ
यज्ञ (पूजा) है इसलिये समयज्ञ हैं ।
प्रह्लादजीका कथन है कि 'समस्त
श्रीअभ्युतकी आराधना है ।'

यज्ञोंमें हविका भाग हरण करते हैं,
इसलिये हविर्हरि हैं । भगवानने कहा
है—'समस्त यज्ञोंका भोक्ता और प्रभु
मैं ही हूँ ।' अथवा हविद्वारा हवन किये
जाते हैं, इसलिये हरि हैं । 'पुरुषरूप
पशुको घोंघा' इस श्रुतिमें भगवानका
हवनायक प्रतिपादन किया गया है ।
तथा स्मरणमात्रसे पुरुषोंके पाप अथवा
[जन्ममरणचक्र] संसारको हर लेते हैं, इस-
लिये या हरि (इयाम्) वर्ण है, इसलिये
भगवान हरि हैं । भगवानका कथन है,
'मैं अपना स्मरण करनेवालोंके पाप
और यज्ञोंमें हविर्भागका हरण करता
हूँ, तथा मेरा अति सुन्दर हरितवर्ण
है, इसलिये मैं 'हरि' कहलाता हूँ ।'

* इस श्लोकका हमें पता नहीं लगा । थोड़ेसे पाठभेदमें एक श्लोक महाभारत
भागितयर्गमें मिलता है, वह इस प्रकार है—

इत्येव हतयानेन हरं भागं क्रतुब्रह्म । वर्णश्च मे हरिः श्रेष्ठस्तस्मादग्निहं स्मृतः ॥

(३६२ । ६८)

सर्वलक्षणैः प्रमाणैर्लक्षणं ज्ञानं
जायते यत्तद्विनिर्दिष्टं सर्वलक्षण-
लक्षणम्, तत्र साधुः सर्वलक्षण-
लक्ष्यः, तस्यैव परमार्थत्वात् ।

सब लक्षणों अर्थात् प्रमाणोंसे जो
लक्षण—ज्ञान होता है वह सर्वलक्षण-
लक्षण कहलाता है, उस ज्ञानमें जो
साधु अर्थात् परम उत्तम हैं वह
परमात्मा ही सर्वलक्षणलक्ष्य हैं,
क्योंकि वे ही परमार्थस्वरूप हैं ।

लक्ष्मीरस्य वक्षसि नित्यं वस-
नीति लक्ष्मीवान् ।

भगवान्के वक्षःस्थले लक्ष्मीजी
नित्य निवास करती है, अतः वे
लक्ष्मीवान् हैं ।

समितिं युद्धं जयतीति समिति-
अय. ॥५२॥

समिति अर्थात् युद्धको जीतते हैं,
इन्द्रिये समितिञ्जय हैं ॥५२॥



विक्षरो रोहितो मार्गो हेतुर्दामोदरः सहः ।

महोधरो महाभागो वेगवानमिताशनः ॥ ५३ ॥

३६३ विक्षरः, ३६४ रोहितः, ३६५ मार्गः, ३६६ हेतुः, ३६७ दामोदरः,
३६८ सहः । ३६९ महोधरः, ३७० महाभागः, ३७१ वेगवान्,
३७२ अमिताशनः ॥

विगतः क्षरो नाशो यस्यार्मा
विक्षरः ।

जिनका क्षर अर्थात् नाश नहीं है
वे भगवान् विक्षर हैं ।

स्वच्छन्दतया रोहितां मूर्तिं
मत्स्यविशेषमूर्तिं वा वहन् रोहितः ।

अपनी इच्छासे रोहितवर्ण मूर्ति
अथवा [रोहित नामक] एक मत्स्य-
विशेषका स्वरूप धारण करनेके कारण
रोहित हैं ।

शुश्रूषवस्तं देवं मार्गयन्ति इति
मार्गः परमानन्दो येन प्राप्यते स
मार्ग इति वा ।

शुश्रूषजन उन परमात्मदेवका मार्गण
(खोज) करते हैं, इसलिये वे मार्ग
हैं; अथवा जिस [माधन] से परमानन्द
प्राप्त होता है वह मार्ग है ।

उपादानं निमित्तं च कारणं
स एवेति हेतुः ।

दमादिसाधनेनोदारोत्कृष्टा म-
तिर्या तथा गम्यत इति दामोदरः,
'दमादामोदरो विभुः' इति महाभारते
(उद्योग० ७० । ८) । यशोदया
दामोदरे बद्ध इति वा दामोदरः,
'ददर्श चान्पदन्तास्यं

स्मिन्नाहसं च बालकम् ।

'तयोर्मध्यगतं बद्धं

दाम्ना गाढं तयोदरे ।

तनश्च दामोदरता

स ययौ दामबन्धनात् ॥'

(ब्रह्म० ७६ । १३-१४)

इति ब्रह्मपुराणे ।

'दामानि लोकनामानि

तानि यस्योदरान्तरे ।

तेन दामोदरो देवः

श्रृंगधरः श्रीसमाश्रितः ॥'

इति व्यासवचनाद् वा
दामोदरः ।

सर्वानभिभवति क्षमत इति
वा सह ।

महीं गिरिरूपेण धरतीति
महीधरः, 'वनानि विष्णुर्गिरयो दिशश्च'
(विष्णु० २ । १२ । ३८) इति
पराशरोक्तेः ।

संसारके निमित्त और उपादान-
कारण वे ही हैं, इसलिये हेतु हैं ।

दम आदि साधनोंसे जो मति उदार
अर्थात् उत्कृष्ट हो जाती है उसीसे
भगवान् जाने जाते हैं, इसलिये वे
दामोदर हैं । महाभारतमें कहा है—
'दमके कारण भगवान् दामोदर
[कहे गये] हैं।' अथवा यशोदाजी द्वारा
दाम (रस्सी) से उदरप्रदेश (कमर) में
बाँध दिये गये थे, इसलिये दामोदर हैं ।

ब्रह्मपुराणमें कहा है— 'ब्रजके मनुष्योंने
उन दोनों (यमलार्जुनों) के बीचमें
गये हुए बालकको रस्सीसे उदर-
प्रदेशमें खुब कसकर बाँध तथा थोड़े
दौनोंवाले मुँहसे मन्द-मन्द मुसकाते
देखा; तबसे दाम (रस्सी) से बाँध
जानेके कारण वह दामोदर
कहलाया ।' अथवा 'दाम लोकोंका
नाम है, वे जिसके उदर (पेट) में
हैं वे रमानिवास श्रीधरदेव इसी
कारणसे दामोदर कहलाते हैं' इस
व्यासजीके वचनानुसार ही दामोदर हैं ।

सबको नीचा दिखाते अथवा सबको
सहन करते हैं, इसलिये सह है ।

पर्वतरूप होकर मही (पृथिवी)
को धारण करते हैं, इसलिये महीधर
है; जैसा कि श्रीपराशरजीका वचन है—
'धन, पर्वत और दिशाएँ विष्णु ही हैं ।'

वेगो जवस्तद्वान् वेगवान्,
'अनेजदेकं मनसो जयीयः' (३० उ०
४) इति श्रुतेः ।

मंहारममये विश्वमश्नातीति
अमिताशन ॥५३॥

वेग जव (तीव्र गति) को कहते
हैं, तीव्र गतिवाले होनेके कारण भगवान्
वेगवान् हैं; श्रुति कहती है—'आत्मा
चलता नहीं, वह एक है और मनसे
भी अधिक वेगवाला है ।'

संहारके समय सारे विश्वको खा
जाते हैं इसलिये अमिताशन हैं ॥५३॥

उद्भवः क्षोभणो देवः श्रीगर्भः परमेश्वरः ।

करणं कारणं कर्ता विकर्ता गहनो गुहः ॥५४॥

३७३ उद्भवः, ३७४ क्षोभणः, ३७५ देवः, ३७६ श्रीगर्भः, ३७७ परमेश्वरः ।
३७८ करणम्, ३७९ कारणम्, ३८० कर्ता, ३८१ विकर्ता, ३८२ गहनः,
३८३ गुहः ॥

प्रपञ्चोत्पत्त्युपादानकारणत्वात्
उद्भवः, उद्भवो भवात्संसार-
दिति वा ।

सर्गकाले प्रकृतिं पुरुषं च
प्रविश्य क्षोभयामासेति क्षोभणः ।
'प्रकृतिं पुरुषं चैव
प्रविश्यात्मेच्छया हरिः ।
प्रविश्य क्षोभयामास
सर्गकाले व्ययाव्ययौ ॥'
इति विष्णुपुराणे (१।२।२९) ।

यतो दीव्यनि क्रीडति सर्गा-
दिभिः, विजिगीषतेऽसुरादीन्, व्यव-

प्रपञ्चकी उत्पत्तिके उपादान-कारण
होनेसे उद्भव है । अथवा भव यानी
संसारमे ऊपर हैं, इसलिये उद्भव हैं ।

जगत्की उत्पत्तिके समय प्रकृति
और पुरुषमें प्रविष्ट होकर उन्हें क्षुब्ध
किया था, इसलिये क्षोभण हैं । विष्णु-
पुराणमें कहा है—'अव्यय भगवान्
श्रीहरिने सर्गकालमें अपनी इच्छासे
विकांगी प्रकृति और अधिकारी पुरुष-
में प्रविष्ट होकर उन्हें क्षुब्ध किया था ।'

क्योंकि दीव्यनि अर्थात् सृष्टि आदिसे
क्रीडा करते हैं, दैत्यादिकोंको जीतना
चाहते हैं, समस्त भूतोंमें व्यवहार

इरति सर्वभूतेषु, आत्मतया द्योतते,
स्तूयते स्तुत्यः, सर्वत्र गच्छति
तस्मात् देवः 'एको देवः' (श्वे० उ०
६।११) इति मन्त्रवर्णात् ।

श्रीविभूतिर्यस्योदरान्तरे जग-
द्रूपा यस्य गर्भे स्थिता स श्रीगर्भः ।

परमश्चासावीशनशीलश्चेति पर-
मेश्वरः ।

'समं सर्वेषु भूतेषु

तिष्ठन्तं परमेश्वरम् ।'

(गीता १३।२०)

इति भगवद्रचनात् ।

जगदुत्पत्तौ साधकतमं करणम् ।

उपादानं निमित्तं च कारणम् ।

कर्ता स्वतन्त्रः ।

विचित्रं भुवनं कियते इति विकर्ता
स एव भगवान् विष्णुः ।

स्वरूपं सामर्थ्यं चेष्टितं वा तस्य
ज्ञातुं न शक्यत इति गहनः ।

गूह्यते संवृणोति स्वरूपादि

निजमाययेति गुहः ।

करते हैं, अन्तरात्मारूपसे प्रकाशित
होते हैं, स्तुत्य पुरुषोंसे स्तवन किये जाते
हैं और सर्वत्र जाते हैं, इसलिये देव हैं;
जैसा कि 'एक देव है' इस मन्त्रवर्णसे
सिद्ध होता है ।

जिनके उदर-गर्भमें संसाररूप
श्री—विभूति स्थित है वे भगवान्
श्रीगर्भ हैं ।

परम है और ईशानशील हैं इसलिये
परमेश्वर हैं । श्रीभगवान् कहते हैं—
'समस्त भूतोंमें समानभावसे स्थित
परमेश्वरको [जो पुरुष देखता है वही
देखता है] ।'

संसारकी उत्पत्तिके मयमें बड़े
साधन हैं, इसलिये करण हैं ।

जगत्के उपादान और निमित्त-
कारण हैं, इसलिये कारण हैं ।

स्वतन्त्र होनेमें कर्ता है ।

विचित्र भुवनोंकी रचना करते हैं,
इसलिये वे भगवान् विष्णु ही विकर्ता हैं ।

उनका स्वरूप, सामर्थ्य अथवा
कृत्य जाना नहीं जाना, इसलिये
गहन है ।

अपनी मायासे स्वरूप आदिको
प्रस्त करते हैं अर्थात् ढक देते हैं
इसलिये गुह्य हैं । भगवान्का कथन

‘नाहं प्रकाशः सर्वस्य

योगमायासमावृतः ।’

(गीता ७।२५)

इति भगवद्वचनात् ॥५४॥

है—‘योगमायासे आवृत होनेके कारण

मैं सबको प्रकट नहीं होता हूँ’ ॥५४॥

व्यवसायो व्यवस्थानः संस्थानः स्थानदो ध्रुवः ।

परद्धिः परमम्पष्टस्तुष्टः पुष्टः शुभेक्षणः ॥५५॥

३८४ व्यवसायः, ३८५ व्यवस्थानः, ३८६ संस्थानः, ३८७ स्थानदः,
३८८ ध्रुवः । ३८९ परद्धिः, ३९० परमम्पष्टः, ३९१ तुष्टः, ३९२ पुष्टः,
३९३ शुभेक्षणः ॥

संविन्मात्रस्वरूपत्वात् व्यवसायः ।

ज्ञानमात्रस्वरूप होनेसे व्यवसाय
है ।

अस्मिन् व्यवस्थितिः सर्वस्येति
व्यवस्थानः ; लोकपालाद्यधिकार-
जरायुजाण्डजोद्भिज्जन्त्राक्षणाक्षत्रिय-
वैश्यशूद्रायान्तरवर्णब्रह्मचारिगृहस्थ-
वानप्रस्थमन्यासलक्षणाश्रमतद्धर्मा-
दिकान् विभज्य करोति इति वा
व्यवस्थानः । ‘कृत्यन्युटो बहुलम्’
(पा० सू० ३।३।११३) इति
बहुलग्रहणान् कर्तरि ल्युट् प्रत्ययः ।

अत्र भूतानां संस्थितिः प्रल-
यात्मिका, समीचीनं स्थानमस्येति
वा संस्थानः ।

ध्रुवादीनां कर्मानुरूपं स्थानं
ददातीति स्थानदः ।

जिनमें सबकी व्यवस्था है वे भगवान्
व्यवस्थान हैं । अथवा लोकपालादि
अधिकारियों, जरायुज, अण्डज,
उद्भिज्ज आदि जीवोंको, ब्राह्मण, क्षत्रिय,
वैश्य, शूद्र और अवान्तर वर्णोंको, ब्रह्म-
चारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास
आश्रमोंको तथा उनके धर्म आदिको
विभक्त करके रचते हैं इसलिये व्यवस्थान
हैं । यहाँ ‘कृत्यन्युटो बहुलम्’ इस मूलमें
बहुल शब्दका ग्रहण (उच्चारण) होनेसे
कर्ता-अर्थमें ल्युट् प्रत्यय हुआ है ।

भगवान्‌में प्राणियोंकी प्रत्ययरूप स्थिति
है अथवा वे उम (प्रत्यय) के सम्यक्
स्थान हैं इसलिये वे संस्थान हैं ।

ध्रुवादिकोंको उनके कर्मोंके अनुसार
स्थान देते हैं इसलिये स्थानद हैं ।

अविनाशित्वात् ध्रुवः ।

परा ऋद्धिर्विभूतिरस्येति परद्धिः ।

परा मा शोभा अस्थेति परमः,
सर्वोत्कृष्टो वा अनन्याधीनसिद्धि-
त्वात्, संविदात्मतया स्पष्टः
परमस्पष्टः ।

परमानन्दैकरूपत्वात् तुष्टः ।

सर्वत्र सम्पूर्णत्वात् पुष्टः ।

ईक्षणं दर्शनं यस्य शुभं शुभ-
करं मुमुक्षुणां मोक्षदं भोगार्थिनां
भोगदं सर्वसन्देहविच्छेदकारणं
पापिनां पावनं हृदयग्रन्थेर्विच्छेद-
करं सर्वकर्मणां क्षणम् अविद्यायाश्च
निवर्तकं स शुभेक्षणः, 'भिद्यते
हृदयग्रन्थिः' (सु० उ० २।२।८)
इत्यादिश्रुतेः ॥५५॥

अविनाशी होनेके कारण ध्रुव हैं ।

भगवान्की ऋद्धि अर्थात् विभूति
परा (श्रेष्ठ) है, इसलिये वे परद्धि हैं ।

उनका मा अर्थात् लक्ष्मी-शोभा
परा (श्रेष्ठ) है इसलिये वे परम हैं ।
अथवा विना किसी अन्यके आश्रयके
ही सिद्ध होनेके कारण सर्वश्रेष्ठ हैं ।
नया ज्ञानस्वरूप होनेसे स्पष्ट है; इस
प्रकार [परम और स्पष्ट होनेसे]
परमस्पष्ट हैं ।

एकमात्र परमानन्दस्वरूप होनेके
कारण तुष्ट हैं ।

सर्वत्र परिपूर्ण होनेसे पुष्ट हैं ।

जिनका ईक्षण अर्थात् दर्शन सर्वथा
शुभ यानी मनुष्योंका शुभ करनेवाला है,
मुमुक्षुओंको मोक्ष देनेवाला, भोगार्थियों-
को भोग देनेवाला, समस्त सन्देहोंका
उच्छेद करनेवाला, पापियोंको पवित्र
करनेवाला, हृदयग्रन्थिको काटनेवाला,
समस्त कर्मोंका नाश करनेवाला और
अविद्याको दूर करनेवाला है, वे भगवान्
शुभेक्षण हैं । 'हृदयकी ग्रन्थि दूट
जाती है' इत्यादि श्रुतिसे यही बात
सिद्ध होती है ॥५५॥



रामो विरामो विरतो मार्गो नेयो नयोऽनयः ।

वीरः शक्तिमतां श्रेष्ठो धर्मो धर्मविदुत्तमः ॥५६॥

३९४ रामः, ३९५ विरामः, ३९६ विरतः, ३९७ मार्गः, ३९८ नेयः,
३९९ नयः, ४०० अनयः । ४०१ वीरः, ४०२ शक्तिमतां श्रेष्ठः, ४०३ धर्मः,
४०४ धर्मविद्वत्तमः ॥

नित्यानन्दलक्षणेऽस्मिन् योगिनो
रमन्त इति रामः;

'रमन्ते योगिनो यस्मिन्
नित्यानन्दे चिदात्मनि ।

इति रामपदेनैत-
त्परं ब्रह्माभिर्वीर्यते ॥'

इति पञ्चपुगणे; स्वेच्छया रम-
णीयं वपुर्वहन्वा दाशरथी रामः ।

विरामोऽवसानं प्राणिनामस्मि-
न्निति विरामः ।

विगतं रतमस्य विषयमेवाया-
मिति विरतः ।

यं विदित्वा अमृतत्वाय कल्पन्ते ।
योगिनो मुमुक्षवः स एव पन्थाः
मार्गः 'नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय'
(श्वे० उ० ६ । १५) इति श्रुतेः ।

मार्गेण सम्यग्ज्ञानेन जीवः
परमात्मतया नीयत इति नेयः ।

नयतीति नयः नेता । मार्गो
नेयो नय इति त्रिरूपः परिकल्प्यते ।

नित्यानन्दस्वरूप भगवान्में योगी-
जन रमण करते हैं, इसलिये वे राम
हैं । पञ्चपुगणमें कहा है—'जिस नित्या-
नन्दस्वरूप चिदात्मामें योगीजन
रमण करते हैं वह परब्रह्म 'राम' इस
पदसे कहा जाता है ।' अथवा अपनी
ही इच्छासे रमणीय शरीर धारण करने-
वाले दाशरथनन्दन ही राम हैं ।

भगवान्में प्राणियोंका विराम अर्थात्
अन्त होता है, इसलिये वे विराम हैं ।

विषयमेवनेमें जिनका राग नहीं
रहा है वे भगवान् विरत हैं ।

जिन्हें जानकर मुमुक्षुजन अमर हो
जाते हैं वे ही पथ—मार्ग हैं । श्रुति
कहती है—'भोक्षका [आत्मज्ञानके
अतिरिक्त] और कोई पथ नहीं है ।'

मार्ग अर्थात् सम्यक् ज्ञानमें जीव
परमात्मभावको ले जाया जाता है,
इसलिये वह (जीव) नेय है ।

जो ले जाना है वह [सम्यक् ज्ञान-
रूप] नेता नय कहलाता है । इस
प्रकार मार्ग, नेय और नय इन तीन
रूपोंसे भगवान्की कल्पना की जाती है ।

नास्य नेता विद्यत इति अनयः ।	भगवान्का कोई और नेता नहीं है इसलिये वे अनय हैं ।
इति नाम्नां चतुर्थं शतं विवृतम् ।	यहाँतक सहस्रनामके चौथे शतक- का विवरण हुआ ।
विक्रमशालित्वान् वीरः ।	विक्रमशाली होनेके कारण भगवान् वीर हैं ।
शक्तिमतां त्रिश्चयादीनामपि शक्तिमत्त्वान् शक्तिमतां श्रेष्ठः ।	ब्रह्मा आदि शक्तिमानोंमें भी शक्ति- मान होनेके कारण शक्तिमतां श्रेष्ठ हैं ।
सर्वभूतानां धारणाद् धर्मः 'अणुरेव धर्मः' (क० उ० १ । १ । २१) इति श्रुतः; धर्मरागाध्यत इति वा धर्मः ।	समस्त भूतोंको धारण करनेके कारण धर्म है । श्रुति कहती है— 'यह धर्म अति सूक्ष्म है' । अथवा धर्म- हीसे आराधन किये जाते हैं, इसलिये धर्म है ।
श्रुतयः स्मृतयश्च यस्याज्ञा- भूताः स एव सर्वधर्मविदामुत्तमः इति धर्मविदुत्तमः ॥ ५६ ॥	श्रुतियाँ और स्मृतियाँ जिसकी आज्ञास्वरूप हों वही समस्त धर्मवेत्ताओं- में उत्तम होना चाहिये । इसलिये भगवान् धर्मविदुत्तम हैं ॥ ५६ ॥



वैकुण्ठः पुरुषः प्राणः प्राणदः प्रणवः पृथुः ।

हिरण्यगर्भः शत्रुघ्नो व्यासो वायुरधोक्षजः ॥ ५७ ॥

४०५ वैकुण्ठः, ४०६ पुरुषः, ४०७ प्राणः, ४०८ प्राणदः, ४०९ प्रणवः,
४१० पृथुः । ४११ हिरण्यगर्भः, ४१२ शत्रुघ्नः, ४१३ व्यासः, ४१४ वायुः,
४१५ अधोक्षजः ॥

विविधा कुण्डा गतेः प्रनिहतिः विविध कुण्डा अर्थात् गनियोंके
विकुण्डा, विकुण्डायाः कर्तेति अवगोत्रको विकुण्डा कहते हैं, उस

वैकुण्ठः, जगदारम्भे विश्विष्टानि
भूतानि परस्परं संश्लेषयन् तेषां
गतिं प्रतिबध्नातीति ।

‘मया संश्लेषिता भूमि-

रद्विष्वोम च वायुना ।

वायुश्च तेजसा साथं

वैकुण्ठत्वं ततो मम ॥’

इति शान्तिपर्वणि । (३४२ । ८०)

सर्वस्मात्पुगः सदनान्मर्षपापस्य
सादनाद्धा पुरुषः; ‘स यः पूर्वोऽस्मात्सर्व-
स्मात्सर्वान्पाप्मानं औपत्तस्मात्पुरुषः’

(वृ० ३० १ । ४ । १) इति श्रुतेः

पुगि शयनाद्धा पुरुषः, ‘स वा अयं
पुरुषः सर्वसुः पूर्णः पुरिशयः’ (वृ० ३०
२ । ५ । १८) इति श्रुतेः ।

प्राणिनि क्षेत्रज्ञरूपेण प्राणात्मना
चेष्टयन्वा प्राणः । ‘चेष्टां कर्गति
असनस्वरूपी’ इति विष्णुपुराणे ।

खण्डयति प्राणिनां प्राणान्
प्रलयादिष्विति प्राणदः ।

विकुण्ठाके करनेवाले होनेसे भगवान्
वैकुण्ठ हैं; क्योंकि जगत्के आरम्भमें
ये त्रिग्वरे हुए भूतोंको परस्पर मिलाकर
उनकी गतिको रोक दिया करते हैं ।
महाभारत शान्तिपर्वमें कहा है—‘मैंने
पृथिवीको जलके साथ, आकाशको
वायुके साथ और वायुको तेजके
साथ मिलाया था इसीलिये मुझमें
वैकुण्ठता है ।’*

सबसे पहले होनेके कारण अथवा
सब पापोंका उत्प्रेद करनेवाले होनेसे
पुरुष हैं । श्रुति कहती है—‘वह जो
सबसे पहले था, सब पापोंको भस्म
कर देता है इसलिये पुरुष है ।’
अथवा पुग यानी शरीरमें शयन करने-
के कारण पुरुष हैं । श्रुति कहती है—
‘वह यह पुरुष सब पुगोंमें पुरिशय
(पुरियोंमें शयन करनेवाला) है ।’

क्षेत्रज्ञरूपमें जीवित रहने हैं अथवा
प्राणवायुरूपमें चेष्टा करते हैं, इसलिये
प्राण हैं । विष्णुपुराणमें कहा है—
‘प्राण-वायुरूप होकर चेष्टा करते हैं ।’

प्रलय आदिके समय प्राणियोंके
प्राणोंका खण्डन करते हैं, इसलिये
प्राणद हैं ।

* विगता कुण्डा यस्य स विकुण्ठा विकुण्ठ एव वैकुण्ठः ‘स्वार्थेऽण्’ इस विग्रहके
अनुसार जिसकी कुण्डा अर्थात् रोक-टोक न हो उसका नाम वैकुण्ठ है; भगवान् भी
किसी प्रकार प्रतिबद्ध नहीं हैं, इसलिये वे वैकुण्ठ हैं ।

प्रणौतीति प्रणवः, 'तस्मादोमिति
प्रणौति' इति श्रुतेः । प्रणम्यते इति
वा प्रणवः,

'प्रणमन्तीह वै वेदा-

मस्मात्प्रणव उच्यते'

इति सनत्कुमारवचनान् ।

प्रपञ्चरूपेण विस्तृतत्वात् पृथुः ।

हिरण्यगर्भमम्भृतिकारणं हिर-
ण्मयमण्डं यद्वीर्यमम्भृतम्, तदस्य
गर्भ इति हिरण्यगर्भः ।

त्रिदशशत्रुन्हन्तीति शत्रुघ्नः ।

कारणत्वेन सर्वकार्याणां व्याप-
नान्न व्याप्तः ।

वाति गन्धं करोतीति वायुः,
'पुण्यो गन्धः पृथिव्या च' गीता ७।९।
इति भगवद्वचनान् ।

'अभो न श्रीयते जातु

यस्मान्ममादधोक्षजः'

इति उद्योगपर्वणिः (७०।१०)
द्यौरक्षं पृथिवी चाधः, तयोर्यस्मा-
दजायत मध्ये वैराज्यरूपेण इति वा
अधोक्षजः अधोभूते प्रत्यक् प्रवाहिते
अक्षगणे जायत इति वा अधोक्षजः ।

[ॐ कहकर] स्तुति अथवा प्रणाम
करते हैं, इसलिये (ओंकार) प्रणव
हैं । श्रुतिमें कहा है 'अतः ओ३म् ऐसा
[कहकर] प्रणाम करता है ।' अथवा
प्रणाम किये जाते हैं, इसलिये (भगवान्
ही) प्रणव हैं । श्रीमन्नकुमारजीका
कथन है—'उन्हें वेद प्रणाम करते हैं,
इसलिये वे प्रणव कहे जाते हैं ।'

प्रपञ्चरूपसे विस्तृत होनेके कारण
पृथु हैं ।

हिरण्यगर्भ (ब्रह्मा) की उत्पत्तिका
कारण हिरण्मय अण्ड जिनके वीर्यमें
उत्पन्न हुआ है वे भगवान् उर्मिक गर्भ
हैं, इसलिये हिरण्यगर्भ हैं ।

देवताओंके शत्रुओंको मारने हैं,
इसलिये शत्रुघ्न हैं ।

कारणरूपसे सब कार्योंको व्याप्त
करनेके कारण व्याप्त हैं ।

वाति अर्थात् गन्ध करतें हैं, इसलिये
वायु हैं । भगवान् का कथन है—
'पृथिवीमें पुण्यगन्ध मैं हूँ ।'

महाभारत उद्योगपर्वमें कहा है—
'कभी नीचे [अर्थात् अपने स्वरूपसे]
श्रीण नहीं होते इसलिये अधोक्षज हैं ।'
अथवा द्यौ (आकाश) अक्ष हैं और
पृथिवी अधः है, भगवान् उनके
मध्यमें विराटरूपसे प्रकट होते हैं,
इसलिये वे अधोक्षज हैं । अथवा अक्ष-

'अधोभूते ह्यक्षणे
प्रत्यग्रूपप्रवाहिते ।
जायते तस्य वै ज्ञानं
तेनाधोक्षज उच्यते ॥'
इति ॥५७॥

गण (इन्द्रियों) के अधोमुख अर्थात्
अन्तर्मुख होनेपर प्रकट होते हैं इसलिये
अधोक्षज है । 'इन्द्रियोंके अधोभूत
होनेपर अर्थात् उन्हें भीतरकी ओर
प्रवृत्त करनेपर भगवान्का ज्ञान
होता है, इसलिये वे अधोक्षज कहलाते
हैं' ॥ ५७ ॥

ऋतुः सुदर्शनः कालः परमेष्ठी परिग्रहः ।

उग्रः संवत्सरो दक्षो विश्रामो विश्वदक्षिणः ॥ ५८ ॥

४१६ ऋतुः, ४१७ सुदर्शनः, ४१८ कालः, ४१९ परमेष्ठी, ४२० परिग्रहः ।
४२१ उग्रः, ४२२ संवत्सरः, ४२३ दक्षः, ४२४ विश्रामः, ४२५ विश्वदक्षिणः ॥

कालात्मना ऋतुशब्देन लक्ष्यत
इति ऋतुः ।

ऋतुशब्दद्वाग कालरूपसे लक्षित
होते हैं, इसलिये ऋतु हैं ।

शोभनं निर्वाणफलं दर्शनं
ज्ञानमस्येति, शुभे दर्शने ईक्षणे
पद्मपत्रायते अस्येति, सुखेन दृश्यते
भक्तोरिति वा सुदर्शनः ।

भगवान्का दर्शन अर्थात् ज्ञान अति
सुन्दर-निर्वाणरूप फल देनेवाला है,
अथवा उनके नेत्र अति सुन्दर-
पद्मपत्रके समान विशाल हैं अथवा
भक्तोंको सुगमतासे ही दिखलायी दे
जाते हैं इसलिये वे सुदर्शन हैं ।

कलयति सर्वमिति कालः, 'कालः
कलयतामहम्' (गीता १० । ३०)
इति भगवद्वचनात् ।

सबकी कलना (गणना) करनेके
कारण काल हैं । भगवान्ने कहा है—
'कलना करनेवालोंमें मैं काल हूँ' ।

परमे प्रकृष्टे स्वे महिम्नि हृदया-
काशे स्यातुं शीलमस्येति परमेष्ठी

हृदयाकाशके भीतर परम अर्थात्
अपनी प्रकृष्ट महिमामें स्थित रहनेका
स्वभाव होनेके कारण वे परमेष्ठी हैं ।

‘परमेष्ठी विभ्राजते’ इति मन्त्रवर्णात् । मन्त्रवर्ण कहता है—‘परमेष्ठीरूपसे सुशोभित है ।’

शरणाधिभिः परितो गृह्यते सर्वगतत्वात्, परितो ज्ञायते इति वा, पत्रपुष्पादिकं भक्तैरर्पितं परिगृह्णातीति वा परिग्रहः । सर्वगत होनेके कारण शरणाधिभ्यो-द्वारा सब ओरसे ग्रहण किये जाते हैं, या सब ओरसे जाने जाते हैं, अथवा भक्तोंके अर्पण किये हुए पत्र-पुष्पादिको ग्रहण करते हैं, इसलिये परिग्रह है ।

सूर्यादीनामपि भयहंतृत्वात् उग्रः, ‘भोपांतेन सूर्यः’ (नै० उ० २।८) इति श्रुतेः । सूर्यादिके भी भयके कारण होनेसे उग्र है । श्रुति कहती है—‘इसके भयसे सूर्य निकलता है ।’

संवमन्ति भूतान्यस्मिन्निति संवत्सरः । सब भूत इनसे बसते हैं, इसलिये संवत्सर है ।

जगद्रूपेण वर्धमानत्वात् सर्व-कर्माणि क्षिप्रं करोतीति वा दक्षः । जगत्-रूपमें बढ़नेके कारण, अथवा सब कार्य बड़ा शीघ्रतासे करने हैं, इसलिये दक्ष है ।

संसारमागरे क्षुत्पिपासादिषट्-मिभिस्तर्ज्जिते अविद्यायैर्महाक्लेशैः मदादिभिरुपक्लेशैश्च वशीकृतानां विश्रान्तिं काङ्क्षमाणानां विश्रामं मोक्षं करोतीति विश्रामः । क्षुधा-पिपासा आदि छः ऊर्मियोंमें तर्जित संसारमागरे अविद्या आदि महान् क्लेशों और मद आदि उप-क्लेशोंमें वर्णाभूत किये हुए विश्रामको इत्यादि मुमुक्षुओंको विश्राम अर्थात् मोक्ष देने हैं, इसलिये विश्राम है ।

विश्वस्मात् दक्षिणः शक्तः, विश्वेषु कर्मसु दाक्षिण्याद्वा विषदक्षिणः ॥ ५८ ॥ सबसे दक्ष अर्थात् समर्थ अथवा समस्त कार्योंमें कुशल होनेके कारण भगवान् विश्वदक्षिण हैं* ॥५८॥

* अथवा समस्त विश्व इन्हें बलिके दक्षमें दक्षिणरूपसे मिका था, इसलिये विश्वदक्षिण है ।

विस्तारः स्थावरस्थाणुः प्रमाणं बीजमव्ययम् ।

अर्थोऽनर्थो महाकोशो महाभोगो महाधनः ॥ ५६ ॥

४२६ विस्तारः, ४२७ स्थावरस्थाणुः, ४२८ प्रमाणम्, ४२९ बीजमव्ययम् ।
४३० अर्थः, ४३१ अनर्थः, ४३२ महाकोशः, ४३३ महाभोगः,
४३४ महाधनः ॥

विस्तीर्यन्ते ममस्तानि जगन्त्य-
स्मिन्निति विस्तारः ।

भगवान्मे समस्त लोकं विस्तार पाते
है, इसलिये वे विस्तार हैं ।

स्थितिशीलत्वात् स्थावरः
स्थितिशीलानि पृथिव्यादीनि
तिष्ठन्त्यस्मिन्निति स्थाणुः; स्थाव-
रश्चार्मा स्थाणुश्च स्थावरस्थाणु ।

स्थितिशील होनेके कारण स्थावर
है । तथा पृथिवी आदि स्थितिशील
पदार्थ उनमें स्थित हैं इसलिये स्थाणु
हैं । इस प्रकार स्थावर और स्थाणु
होनेसे भगवान् स्थावरस्थाणु हैं ।

मंविदान्मना प्रमाणम् ।

संविदस्वरूप होनेसे प्रमाण हैं ।

अन्यथाभावव्यतिरेकेण कारण-
मिति बीजमव्ययम्, सविशेषण-
मेकं नाम ।

बिना अन्यथाभावके ही संसारके
कारण हैं इसलिये उनका बीजमव्ययम्
यह विशेषणसहित एक ही नाम है ।

सुखरूपत्वात्सर्वैरर्ध्यत इति
अर्थः ।

सुखस्वरूप होनेके कारण सबसे
प्रार्थना किये जाते हैं, इसलिये अर्थ हैं ।

न विद्यते प्रयोजनम् आप्तकाम-
त्वान् अस्प्येति अनर्थः ।

आप्त (पूर्ण) काम होनेके कारण
उनका कोई अर्थ याती प्रयोजन नहीं
है, इसलिये वे अनर्थ हैं ।

महान्तः कोशो अन्नमयादयः
आच्छादका अस्प्येति महाकोशः ।

अन्नमय आदि महान् कोश भगवान्को
ढकनेवाले हैं, इसलिये वे महाकोश हैं ।

महान् भोगः सुखरूपोऽस्प्येति
महाभोगः ।

भगवान्का सुखरूप महान् भोग है,
इसलिये वे महाभोग हैं ।

महत् भोगसाधनलक्षणं धनम- । उनका भोगसाधनरूप महान् धन
स्येति महाधनः ॥ ५९ ॥ है, इसलिये वे महाधन हैं ॥ ५९ ॥



अनिर्विण्णः स्थविष्ठोऽभूर्धर्मयूपो महामखः ।

नक्षत्रनेमिर्नक्षत्री क्षमः क्षामः समीहनः ॥ ६० ॥

४३५ अनिर्विण्णः, ४३६ स्थविष्ठ, ४३७ अभूः (भूः), ४३८ धर्मयूपः, ४३९
महामखः । ४४० नक्षत्रनेमिः, ४४१ नक्षत्री, ४४२ क्षमः, ४४३ क्षामः,
४४४ समीहनः ॥

आप्तकामत्वात् निर्वेदोऽस्य न सम्पूर्ण कामनाएँ प्राप्त होनेके
विद्यत इति अनिर्विण्णः । कारण भगवान्को निर्वेद (उदासीनता)
नहीं है, इसलिये वे अनिर्विण्ण है ।

वैराजरूपेण स्थितः स्थविष्ठः ; वैराजरूपमें स्थित होनेके कारण
'अग्निर्मूर्धा चक्षुर्या चन्द्रमूर्ध्या' (मु० उ०
२।१।४) इति श्रुतः । स्थविष्ठ है । श्रुति कहती है - 'अग्नि
उत्तका शिर ई तथा सूर्य और
चन्द्रमा नेत्र हैं ।'

अजन्मा अभः; अथवा भवतीति अजन्मा होनेमें अभू हैं, अथवा है;
भूः 'भू सत्तायाम्' अन्यस्य सम्पदादि- इसलिये भू है । 'भू सत्तायाम्' यह
सम्पदादिगणमें होनेके कारण भू धातुसे
त्वात् क्तिप् मही वा । क्तिप् प्रत्यय हुआ है । अथवा भू
पृथिवीको भी कहते हैं ।

यूपे पशुवत् तत्समाराधनात्मका यूपमें जिन प्रकार पशु बाँधा जाता
धर्मास्तत्र बध्यन्त इति धर्मयूपः । है उसी प्रकार आराधनारूप धर्म
भगवान्में बाँधे जाते हैं इसलिये वे
धर्मयूप है ।

यस्मिन्नर्पिता मग्वा यज्ञानिर्वाण- जिनको अर्पित किये हुए मख
लक्षणफलं प्रयच्छन्तो महान्तो (यज्ञ) निर्वाणरूप फल देने हुए महान्
जायन्ते स महामखः । हो जाते हैं वे भगवान् महामख है ।

‘नक्षत्रतारकैः सार्धं

चन्द्रसूर्यादयो ग्रहाः ।

वायुपाशमयैर्वन्धै-

निबद्धा ध्रुवसंज्ञिते ॥’

म ज्योतिषां चक्रं भ्रामयंस्ता-
ममयस्य शिशुमारस्य पुच्छदंशं
व्यवस्थितो ध्रुवः । तस्य शिशुमारस्य
हृदये ज्योतिश्चक्रस्य नेमिवत्प्रवर्तकः
स्थितो विष्णुरिति नक्षत्रनेमिः
शिशुमारवर्णने ‘विष्णुर्हृदयम्’ इति
स्वाध्यायब्राह्मणे श्रूयते ।

चन्द्ररूपेण नक्षत्रा, ‘नक्षत्राणामहं
शशी’ (गीता १० । २१) इति
भगवद्वचनात् ।

समस्तकार्येषु समर्थः क्षमः;
क्षमत इति वा, ‘क्षमया पृथिवीसमः’
(वा० रा० १ । १ । १८) इति
वाल्मीकिवचनात् ।

सर्वविकारेषु क्षपितेषु स्वात्म-
नावस्थित इति क्षामः । ‘क्षायो मः’
(पा० मू० ८ । २ । ५३) इति निष्ठात-
कारस्य मकारादेशः ।

सृष्ट्याद्यर्थं सम्यगीहृत इति
समीहनः ॥६०॥

‘नक्षत्र और तारोंके सहित चन्द्र-
सूर्य आदि ग्रहगण वायुपाशरूप
बन्धनोंसे ध्रुवके साथ बँधे हुए हैं ।’

इस वचनके अनुसार ज्योतिश्चक्रके
सहित सम्पूर्ण नक्षत्रमण्डलको भ्रमाता
हुआ ध्रुव तारामय शिशुमारचक्रके पुच्छ-
देशमे स्थित है । उस शिशुमारके हृदय
(मध्य) में ज्योतिश्चक्रकी नेमि (केन्द्र)
के समान उसके प्रवर्तकरूपसे भगवान्
विष्णु वर्तमान हैं अतः वे नक्षत्रनेमि
कहलाते हैं । स्वाध्यायब्राह्मणमें शिशुमार-
का वर्णन करते हुए ‘विष्णु उसका
हृदय है’ ऐसी श्रुति है ।

चन्द्ररूप होनेसे भगवान् नक्षत्री
हैं; जैसा कि भगवान्का कथन है—
‘नक्षत्रोंमें मैं चन्द्रमा हूँ ।’

समस्त कार्योंमें समर्थ होनेके कारण
क्षम हैं; अथवा सहन करते हैं, इसलिये
क्षम हैं । वाल्मीकिजीका वचन है कि
‘[राम] क्षमामें पृथिवीके समान हैं ।’

समस्त विकारोंके क्षीण हो जानेपर
भगवान् आत्मभावसे स्थित रहते हैं,
इसलिये क्षाम हैं । ‘क्षायो मः’ इस
मूत्रके अनुसार निष्ठासंज्ञक त्रके
तकारको मकार आदेश हुआ है ।

सृष्टि आदिके लिये सम्यक् ईहा
(चेष्टा) करते हैं इसलिये समीहन
हैं ॥ ६० ॥

यज्ञ इज्यो महेज्यश्च क्रतुः सत्रं सतां गतिः ।

सर्वदर्शी विमुक्तात्मा सर्वज्ञो ज्ञानमुत्तमम् ॥ ६१ ॥

४४५, यज्ञः, ४४६ इज्यः, ४४७ महेज्यः, च, ४४८ क्रतुः, ४४९, सत्रम्, ४५० सतां गतिः । ४५१ सर्वदर्शी, ४५२ विमुक्तात्मा, ४५३ सर्वज्ञः, ४५४ ज्ञानमुत्तमम् ॥

सर्वयज्ञस्वरूपत्वाद् यज्ञः; सर्वेषां देवानां तुष्टिकारको यज्ञाकारेण प्रवर्तत इति वा, 'यज्ञो वै विष्णुः' (तै० सं० १।७।४) इति श्रुतः । सर्वयज्ञस्वरूप होनेके कारण यज्ञ है । अथवा यज्ञरूपमे समस्त देवताओं-को मन्तुष्ट करनेवाले है, इसलिये यज्ञ है । श्रुति कहती है—'यज्ञ ही विष्णु है'

यष्टव्योऽप्ययमेवेति इज्यः ।

'ये यजन्ति मयै' पुरुषै-

देवतादीन्पितृनपि ।

आत्मानमात्मना नित्यं

विष्णुमेव यजन्ति ते ॥'

इति हरिवंशे (३।४०।२७)

सर्वान् देवतासु यष्टव्यासु प्रकर्षेण यष्टव्या मोक्षफलदातृत्वादिति महेज्यः ।

यूपमहितो यज्ञः क्रतुः ।

आमन्युपैति चोदनालक्षणं मन्त्रम्;

सतस्त्रायत इति वा ।

सतां सुसुक्ष्माणां नान्या गतिरिति

सतां गतिः ।

यष्टव्य (पूजनीय) भी भगवान् ही हैं इसलिये वे इज्य हैं । हरिवंशमे कहा है—'जो लोग पवित्र यज्ञोंद्वारा देवता और पितृ आदिका पूजन करते हैं वे सर्वदा स्वयं अपने आत्मा विष्णुका ही पूजन करते हैं ।'

ममस्त यष्टव्य देवताओंमे मोक्षरूप फल देनेवाले होनेसे भगवान् ही मन्त्रसे अधिक यष्टव्य हैं, इसलिये वे महेज्य हैं ।

यूपमहित यज्ञ क्रतु कहलाना है [तत्प होनेसे भगवान् क्रतु है] ।

जो विगिरूप धर्मको प्राप्त करता है वह सत्र है । अथवा मन्त्र (कार्य-रूप जगत्) से रक्षा करते हैं इसलिये भगवान् सत्र हैं ।

मन्पुरुषो अर्थात् सुमुखोंकी [भगवान् की लोइकर] कोई और गति नहीं है, इसलिये वे सतां गति हैं ।

सर्वेषां प्राणिनां कृताकृतं सर्वं
पश्यति स्वाभाविकेन बोधेनेति
सर्वदर्शी ।

स्वभावेन विमुक्त आत्मा
यस्येति, विमुक्तश्रामावात्मा चेति
वा विमुक्तात्मा, 'विमुक्तश्च विमुच्यते'
(क० उ० २।५।१) इति श्रुतेः ।

सर्वश्रमां ज्ञश्चेति सर्वज्ञः, 'इदं
सर्वं यदयमात्मा' (बृ० उ० २।४।६)
इति श्रुतेः ।

ज्ञानमुत्तममित्येतन्मविशेषणमेकं
नामः ज्ञानं प्रकृष्टमजन्यमनवच्छिन्नं
सर्वस्य साधकतममिति ज्ञानमुत्तमं
ब्रह्म, 'मयं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' (तै०
उ० २।१) इति श्रुतेः ॥६१॥

अपने स्वाभाविक बोधसे समस्त
प्राणियोंके सम्पूर्ण कर्माकर्मको देखते
हैं इसलिये सर्वदर्शी हैं ।

स्वभावसे ही जिनकी आत्मा मुक्त
है अथवा जो विमुक्त भी हैं और
आत्मा भी हैं वे भगवान् विमुक्तात्मा
हैं । श्रुति कहती है 'मुक्त हुआ ही
मुक्त होता है ।'

जो सर्व है और ज्ञानस्वरूप है वह
परमात्मा सर्वज्ञ है । श्रुति कहती है—
'यह जो कुछ है सब आत्मा ही है ।'

ज्ञानमुत्तमम् यह विशेषणसहित
एक नाम है । जो प्रकृष्ट, अजन्य,
अनवच्छिन्न और सत्तका सबसे बड़ा
साधक ज्ञान है वह ज्ञानमुत्तमम्
कहलाता है । श्रुति कहती है—
'ब्रह्म सत्य, ज्ञान और अनन्तरूप
है' ॥६१॥

सुव्रतः सुमुखः सूक्ष्मः सुघोषः सुखदः सुहृत् ।

मनोहरो जितक्रोधो वीरबाहुर्विदारणः ॥ ६२ ॥

४५५ सुव्रतः, ४५६ सुमुखः, ४५७ सूक्ष्मः, ४५८ सुघोषः, ४५९ सुखदः,
४६० सुहृत् । ४६१ मनोहरः, ४६२ जितक्रोधः, ४६३ वीरबाहुः,
४६४ विदारणः ॥

शोभनं व्रतमस्येति सुव्रतः ।
'सकृदेव प्रपन्नाय
तवास्मीति च याचते ।

भगवान्का शुभ व्रत है, इसलिये वे
सुव्रत हैं । श्रीरामायणमें रामचन्द्रजी-
का वाक्य है—'जो एक बार भी

अभयं सर्वभूतेभ्यः

ददायेतद् व्रतं मम ॥'

(बा० रा० १।१८।३३)

इति श्रीरामायणे रामवचनम् ।

शोभनं भूस्वमस्येति सुमुखः ।

'प्रसन्नवदनं चारु-

पद्मपत्रायतेक्षणम् ।'

इति श्रीविष्णुपुराणे (६ । ७ ।

८०) । वनवाममुमुखत्वाद्वा दाश-

रथी रामः सुमुखः ।

'स्वपितुर्वचनं श्रीमान-

भित्तिकापरं प्रियम् ।

मनसा पूर्वमासाद्य

याचा प्रतिगृहीतवान् ॥'

'इमानि तु महागण्ये

विद्वन् नव पद्म च ।

वर्षाणि परमप्रतिः

स्थायामि वचने तत्र ॥'

(बा० रा० २।१४।१०)

'न यनं गन्तुकामस्य

व्यजतश्च वसुन्धराम् ।

सर्वजोकानिगस्थेय

मनो रामस्य विव्यथे ॥'

(बा० रा० २।१९।३३)

इति रामायणे । सर्वविशेषदेक्षेन

मेरी शरण आकर 'मैं तुम्हारा हूँ'

पेसा कहकर माँगता है उसे मैं

सब प्राणियोंसे अभय कर देता हूँ—

यह मेरा व्रत है ।'

उनका मुख सुन्दर है, इसलिये वे

सुमुख हैं । विष्णुपुराणमें कहा है—

'प्रसन्न मुखवाले और सुन्दर कमल-

दलके समान विशाल नयनवाले ।'

अथवा वनवामके समय भी सुमुख

(प्रसन्नवदन) रहनेके कारण दशरथ-

कुमार राम ही सुमुख हैं । रामायणमें

कहा है—'श्रीमान् रामने अपने

पिताके उन अभियेकसे भी अधिक

प्रिय [वनवास-विषयक] वचनोंको

प्रथम मनसे ग्रहण कर फिर

वाणीसे भी स्वीकार किया ।'

[वे बोले—] 'इन चौदह वर्षोंतक

वनमें घूम-फिरकर मैं बड़ी प्रसन्नता-

से आपके वचनोंका पालन करूँगा ।'

'उस समय वनको जानेके लिये

तत्पर तथा पृथिवीका राज्य छोड़ते

हुए सम्पूर्ण लोकोंमें श्रेष्ठ योगीके

समान रघुनाथजीका चित्त तनिक भी

नहीं दुःखा ।' अथवा समस्त विद्याओंका

वा सुमुखः, 'यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं' उपदेश करनेके कारण सुमुख हैं; यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै' (खे० जैसा कि श्रुति कहती है—'जो पहले ब्रह्माको रखता है और जो उसे उ० ६। १८) इत्यादिश्रुतेः । वेद-प्रदान करता है ।'

शब्दादिस्थूलकारणरहितत्वात्— शब्दादयोऽक्षाकाशादीनामुत्तरोत्तर-स्थूलत्वकारणानि, तदभावान्— सूक्ष्म, 'सर्वगतं सुसूक्ष्मम्' (मु० उ० १। १। ६) इति श्रुतेः ।

शब्दादि स्थूल कारणोंसे रहित होनेके कारण [भगवान् सूक्ष्म हैं] । शब्दादि विषय ही आकाशादि भूतोंकी उत्तरोत्तर स्थूलताके कारण हैं; उनका भगवान्में अभाव होनेसे वे सूक्ष्म हैं । श्रुति कहती है—'सर्वगत और अति सूक्ष्म है ।'

शोभनो घोषो वेदात्मकोऽस्येति, मधगम्भीरघोषत्वाद्वा सुघोषः ।

भगवान्का वेदरूप सुन्दर घोष है, अथवा वे मेघके समान गम्भीर घोष-वाले हैं, इसलिये सुघोष हैं ।

मद्बृत्तानां सुखं ददाति, अस-द्वृत्तानां सुखं द्याति खण्डयतीति वा सुखदः ।

सदाचारियोंका सुख देते हैं अथवा दुराचारियोंका सुख खण्डित करते हैं, इसलिये सुखद हैं ।

प्रत्युपकारनिरपेक्षतयोपकारि-त्वान् सुहृत् ।

बिना प्रत्युपकारकी इच्छाके ही उपकार करनेवाले होनेसे सुहृत् हैं ।

निरतिशयानन्दरूपत्वात् मनो हरतीति मनोहरः, 'यो वै भूमा तत्सुखं नान्ये सुखमस्ति' (छा० उ० ७। २३। १) इति श्रुतेः ।

अन्यन्त आनन्दस्वरूप होनेके कारण मनका हरण करते हैं, इसलिये मनोहर हैं । श्रुति कहती है—'जो भूमा है निश्चय वही सुख है अन्यमें सुख नहीं है ।'

जितः क्रोधो येन स जितक्रोधः; वेदमर्यादास्थापनार्थं सुगरीन् हन्ति न तु क्रोपवशादिति ।

जिन्होंने क्रोधको जीत लिया है वे भगवान् जितक्रोध हैं, क्योंकि वे वेदकी मर्यादा स्थापित करनेके लिये ही देवताओंके शत्रुओंको मारते हैं—क्रोपवश नहीं ।

त्रिदशशत्रुभिन्नन्वेदमर्यादां स्या-
पयन् विक्रमशाली बाहुरस्येति
वीरबाहुः ।

देव-शत्रुओंको मारकर वेदकी
मर्यादाको स्थापित करनेवाली भगवान्-
की बाहु अति विक्रमशालिनी है,
इसलिये वे वीरबाहु हैं ।

अधार्मिकान् विदारयतीति
विदारणः ॥६२॥

अधार्मिकोंको विदीर्ण करनेके कारण
भगवान् विदारण हैं ॥ ६२ ॥



स्थापनः स्वयशो व्यापी नैकात्मा नैककर्मकृत् ।

वत्सरो वत्सलो वत्सी रत्नगर्भो धनेश्वरः ॥ ६३ ॥

४६५. स्थापनः, ४६६ स्वयशः, ४६७ व्यापी, ४६८ नैकात्मा, ४६९.
नैककर्मकृत् । ४७० वत्सरो, ४७१ वत्सलो, ४७२ वत्सी, ४७३ रत्नगर्भः,
४७४ धनेश्वरः ॥

प्राणिनः स्थापयन् आत्मसम्बो-
धविधुरान् मायया कुर्वन् स्थापनः ।

प्राणियोंको सुनाने यानी जीवोंको
मायामे आत्मज्ञानरूप जागृतिमें रहित
करनेके कारण स्थापन हैं ।

स्वतन्त्रः स्वयशः, जगदुत्पत्ति-
व्यतिरिक्तहेतुत्वात् ।

जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और लयके
कारण होनेसे स्वतन्त्र है, इसलिये
स्वयश है ।

आकाशवत्सर्वगतत्वात् व्यापी,
'आकाशवत्सर्वगतश्च नित्यः' इति
श्रुतेः; कारणत्वेन सर्वकार्याणां
व्यापनाद्वा व्यापी ।

आकाशके समान सर्वव्यापी होनेसे
व्यापी है । श्रुति कहती है—'आकाश-
के समान सर्वगत और नित्य हैं ।'
अथवा कारणरूपमें समस्त कार्योंको
व्याप्त करनेके कारण व्यापी है ।

जगदुत्पत्त्यादिषु आविर्भूत-
निमित्तशक्तिभिर्विभूतिभिरनेकधा
तिष्ठन् नैकात्मा ।

जगत्की उत्पत्ति आदिमें नैमित्तिक
शक्तियोंको प्रकट करनेवाली विभूतियोंके
द्वारा नाना प्रकारमें स्थित हैं, इसलिये
नैकात्मा है ।

जगदुत्पत्तिसम्पत्तिविपत्तिप्रभृ-
तिकर्माणि करोतीति नैककर्मकृत् ।

वन्मत्यग्राखिलमिति वत्सरः ।

भक्तलोहित्वात् वत्सलः 'वत्सा-
माभ्या कामवले' (पा० सू० ५ ।
२ । ०८) इति लक्षप्रत्ययः ।

वत्सानां पालनान् वत्सां, जग-
त्पितृस्तस्य वत्सभूताः प्रजा इति
वा वत्सी ।

रत्नानि गर्भभूतानि अस्याति
समुद्रो रत्नगर्भः ।

धनानामीश्वरः धनेश्वरः ॥६३॥

संसारकी उत्पत्ति, सम्पत्ति (उन्नति)
और विपत्ति आदि [अनेक] कर्म करते
हैं, इसलिये नैककर्मकृत् हैं ।

सब कुल उन्हेंमें बसा हुआ है,
इसलिये वे वत्सर हैं ।

भक्तोंके स्नेही होनेके कारण वत्सल
हैं । 'वत्सांसाभ्यां कामबले' इस
मूलके अनुसार वत्सशब्दमें लच्
प्रत्यय हुआ है ।

वत्सोंका पालन करनेके कारण वत्सी
हैं । अथवा जगत्पिता होनेसे प्रजा उन-
की वत्सस्वरूपा हैं, इसलिये वत्सी हैं ।

रत्न जिसके गर्भरूप हैं उस समुद्र-
का नाम रत्नगर्भ है ।

धनोंके स्वामी होनेके कारण
धनेश्वर हैं ॥६३॥



धर्मगुर्वधर्मकृद्धर्मी

सदसत्क्षरमक्षरम् ।

अविज्ञाता सहस्रांशुर्विधाता कृतलक्षणः ॥ ६४ ॥

४७५ धर्मगुप्, ४७६ धर्मकृत्, ४७७ धर्मी, ४७८ सत्, ४७९ असत्,
४८० क्षरम्, ४८१ अक्षरम् । ४८२ अविज्ञाता, ४८३ सहस्रांशुः, ४८४
विधाता, ४८५ कृतलक्षणः ॥

धर्मं गोपयतीति धर्मगुप्,

'धर्मसंस्थापनार्थाय

सम्यवामि युगे युगे ॥'

(गीता ४ । ८)

इति भगवद्बचनान् ।

धर्मका गोपन (रक्षा) करते हैं,

इसलिये धर्मगुप् हैं । भगवानका वाक्य

है—'धर्मकी स्थापनाके लिये मैं युग-
युगमें अवतार लेता हूँ ।'

धर्माधर्मविहीनोऽपि धर्ममर्या-
दाभ्यापनार्थं धर्ममेव करोतीति
धर्मकृत् ।

धर्मान् धारयतीति धर्मी ।

अवितथं परं ब्रह्म सत्, 'सदेव
सांग्येदम्' (ला० उ० ६ । २ । १)
इति श्रुतेः ।

अपरं ब्रह्म असत्, 'वाचारम्भणं
विकारो नामयेयम्' (ला० उ० ६ । १ ।
४) इति श्रुतेः ।

सर्वाणि भूतानि क्षरम् । कूटस्थः
अक्षरम्,

'क्षरं सर्वाणि भूतानि

कूटस्थोऽक्षर उच्यते ॥'

(गीता १५ । १९)

इति भगवद्वचनान् ।

आत्मनि कर्तृत्वादिविकल्प-
विज्ञानं कल्पितमिति तद्वामनावगु-
प्ठितो जीवो विज्ञाता, तद्विलक्षणो
विष्णुः अविज्ञाता ।

आदित्यादिगता अंशवोऽस्ये-
त्ययमेव मुख्यः सहस्रांशुः, 'येन
सूर्यस्तपनि तेजसेद्भः' (नै० ब्रा० ३ ।
१२ । ७९ । ७) इति श्रुतेः, 'यदादि-
त्यग्नं तेजः' (गीता १५ । १२)
इति स्मृतेश्च ।

धर्माधर्मसे रहित होनेपर भी धर्मकी
मर्यादा स्थापित करनेके लिये धर्म ही
करते हैं, इसलिये धर्मकृत् हैं ।

धर्मोंको धारण करनेवाले हैं, इसलिये
धर्मी है ।

सत्यस्वरूप परब्रह्म ही सत् है ।
श्रुति कहती है—'हे सोम्य ! यह सत्
ही [पहले था] ।'

[प्रपञ्चरूप होनेसे] अपर ब्रह्म
असत् है; जैसा कि श्रुति कहती है—
'विकार केवल नाममात्र और वाणी-
का विलास ही है ।'

'सब भूत क्षर हैं और कूटस्थ अक्षर
कहलाता है ।' भगवान् के इस कथना-
नुसार समस्त भूत क्षर हैं और कूटस्थ
अक्षर है ।

आत्मामे कर्तृत्व आदि विकल्प-विज्ञान
कल्पित हैं, उसकी वासनासे ढका
हुआ जीव विज्ञाता है और उससे
विलक्षण विष्णु अविज्ञाता हैं ।

सूर्य आदिकी किरणें वान्तवर्मे
भगवान् की ही हैं इसलिये ये ही मुख्य
सहस्रांशु हैं । श्रुति कहती है—'जिस
तेजसे प्रज्वलित होकर सूर्य तपता है'
तथा स्मृति भी कहती है—'आदित्यम्
जो तेज है ।'

विशेषेण शेषदिग्गजभूधरान्
सर्वभूतानां धातुन् दधातीति
विधाता ।

समस्त भूतोंको धारण करनेवाले
शेष, दिग्गज और पर्वतोंको विशेष-
रूपसे धारण करते हैं, इसलिये
विधाता है ।

नित्यनिष्पन्नचैतन्यरूपत्वात्
कृतलक्षणः; कृतानि लक्षणानि
शास्त्राण्यनेनेति वा;

‘वेदाः शास्त्राणि विज्ञान-

मेतत्सर्वं जनार्दनात् ॥’

(वि० स० १३९)

इत्यत्रैव वक्ष्यति; सजातीय-
विजातीयव्यवच्छेदकं लक्षणं
सर्वभावानां कृतमनेनेति वा;
आत्मनः श्रीवत्सलक्षणं वक्षसि
तेन कृतमिति वा कृतलक्षणः ॥६४॥

नित्यसिद्ध चैतन्यस्वरूप होनेके
कारण कृतलक्षण है । अथवा लक्षण
यानी शास्त्रोंकी रचना की है इसलिये
कृतलक्षण है । इसी ग्रन्थमें आगे चल-
कर कहेंगे कि—‘वेद, शास्त्र और यह
सम्पूर्ण विज्ञान जनार्दनसे ही हुए हैं ।’
अथवा भगवान्ने ही समस्त भाव-
पदार्थोंके सजातीय-विजातीय-भेदोंका
विभाग करनेवाला लक्षण (चिह्न)
बनाया है, इसलिये या अपने वक्षः-
म्यलमे श्रीवत्सरूप लक्षण (चिह्न) धारण
किये है इसलिये कृतलक्षण हैं ॥ ६४ ॥

गभस्तिनेमिः सत्त्वस्थः सिंहो भूतमहेश्वरः ।

आदिदेवो महादेवो देवेशो देवभृद्गुरुः ॥६५॥

४८६ गभस्तिनेमिः, ४८७ सत्त्वस्थः, ४८८ सिंहः, ४८९ भूतमहेश्वरः ।

४९० आदिदेवः, ४९१ महादेवः, ४९२ देवेशः, ४९३ देवभृद्गुरुः ॥

गभस्तिचक्रस्य मध्ये सूर्यात्मना
स्थित इति गभस्तिनेमिः ।

गभस्तियां (किरणों) के चक्रके
बीचमें सूर्यरूपसे स्थित हैं, इसलिये
गभस्तिनेमि हैं ।

मत्त्वं गुणं प्रकाशकं प्राधान्य-
नाधितिष्ठतीति, सर्वप्राणिषु तिष्ठ-
तीति वा सत्त्वस्थः ।

प्रकाशस्वरूप सत्त्वगुणमें प्रधानता-
से रहते हैं अथवा समस्त प्राणियोंमें
स्थित हैं, इसलिये सत्त्वस्थ हैं ।

विक्रमशालित्वात्सिंहवत् सिंहः
नृशब्दलोपेन 'सत्यभामा भामा'
इतिबद्धा सिंहः ।

सिंहके समान पराक्रमी होनेसे
सिंह है । अथवा सत्यभामा—भामा-
के समान नृ शब्दका लोप होनेसे
नृसिंह ही सिंह है ।

भूतानां महानीश्वरः, भूतेन
सत्येन स एव परमो महानीश्वर
इति वा भूतमहेश्वरः ।

भूतोंके महान् ईश्वर है अथवा भूत-
सत्यरूपसे वे ही अति महान् ईश्वर हैं,
इसलिये भूतमहेश्वर है ।

सर्वभूतान्यादीयन्ते ज्ञेनेति
आदिः । आदिश्चामी देवश्चेति
आदिदेवः ।

भगवान् सब भूतोंका आदान (ग्रहण)
करते हैं, इसलिये आदि है इस प्रकार वे
आदि हैं और देव भी हैं, इसलिये
आदिदेव है ।

सर्वान्भावान्परित्यज्य आत्म-
ज्ञानयोगेश्वर्ये महति महीयते,
तस्मादुच्यते महादेवः ।

समस्त भावोंको छोड़कर अपने
महान् ज्ञानयोग और ऐश्वर्यमें
महिमान्वित है, इसलिये महादेव
कहलाते हैं ।

प्राधान्येन देवानामाशो देवेशः ।

[देवताओंमें] प्रधान होनेसे देवोंके
ईश अर्थात् देवेश है ।

देवान् विभर्तीति देवभृन् शक्रः,
तस्यापि शामिनेति देवभृद्गुरुः
देवानां भरणान्, सर्वविद्यानां च
निगरणाद्वा देवभृद्गुरुः ॥६५॥

देवताओंका पालन करने के इसलिये
इन्द्र देवभृन् है, उनके भी शासक
होनेसे भगवान् देवभृद्गुरु है । अथवा
देवताओंका भरण करनेसे या सब
विद्याओंके रक्षा होनेसे देवभृद्गुरु
है ॥६५॥

उत्तरो गोपनिर्गोप्ता ज्ञानगम्यः पुरातनः ।

शरीरभूतभृद्गोक्ता कपीन्द्रो भूरिदक्षिणः ॥६६॥

४९४ उत्तरः, ४९५ गोपतिः, ४९६ गोप्ता, ४९७ ज्ञानगम्यः, ४९८ पुरातनः ।

४९९, शरीरभूतभृत्, ५०० भोक्ता, ५०१ कपीन्द्रः, ५०२ भूरिद्रक्षिणः ॥

जन्मसंसारबन्धनादुत्तरतीति जन्मरूप संसारबन्धनसे उत्तीर्ण (मुक्त) होते हैं, इसलिये उत्तर हैं ।
उत्तरः; सर्वोत्कृष्ट इति वा, 'विश्व- अथवा सर्वश्रेष्ठ हैं, इसलिये उत्तर हैं ।
स्मादिन्द्र उत्तरः' इति श्रुतेः । श्रुति कहती है—'इन्द्र (परमेश्वर) सबसे श्रेष्ठ है ।'

गवां पालनाद्गोपवेपधरो गोपतिः, गोआंका पाटन करनेसे गोपवेप-
गौर्मही; तस्याः पतित्वाद्वा । धारी कृष्ण गोपति हैं । अथवा गो
पृथिवीका नाम है, उसके स्वामी होनेसे
भगवान् गोपति हैं । *

समस्तभूतानि पालयन् रक्षको समस्त भूतोंका पाटन करनेवाले
जगतः इति गोप्ता । भगवान् जगतके रक्षक हैं, इसलिये
गोप्ता हैं ।

न कर्मणा न ज्ञानकर्मभ्यां वा कर्मसे अथवा ज्ञान और कर्म [दोनों-
गम्यते, किन्तु ज्ञानेन गम्यत इति के समुच्चय] से नहीं जाने जाते, केवल
ज्ञानसे ही जाने जाते हैं, इसलिये
ज्ञानगम्यः । ज्ञानगम्य हैं ।

कालेनापरिच्छिन्नत्वात् पुरापि कालमें अपरिच्छिन्न होनेके कारण
भवतीति पुरातनः । सबमें पहचने भी रहते हैं, इसलिये
पुरातन हैं ।

शरीरारम्भकभूतानां भरणान् शरीरकी रचना करनेवाले भूतोंका
प्राणरूपधरः शरीरभूतभृत् । प्राणरूपसे पाटन करने हैं, इसलिये
शरीरभूतभृत् हैं ।

पालकत्वाद् भोक्ता; परमानन्द- पाटन करनेवाले होनेसे भोक्ता
सन्दोहसम्भोगाद्वा भोक्ता । हैं; अथवा निरतिशय आनन्दपुत्रका
सम्भोग करनेमें भोक्ता हैं ।

ॐ गो इन्द्रियको भी कहते हैं अतः इन्द्रियोंका पालन करनेवाला प्राण भी गोपति है ।

इति नाम्नां पञ्चमं शतं विवृतम् ।

यहाँ तक सहस्रनामके पाँचवें
शतकका विवरण हुआ ।

कपिश्रासाविन्द्रश्चेति कपिर्वराहः,
वाराहं वधुरास्थितः कपीन्द्रः ; कपीनां
वानराणामिन्द्रः कपीन्द्रः राघवां
वा ।

कपि वराहको कहते हैं, जो कपि
और इन्द्र भी हैं वे वराहरूपधारी भगवान्
कपीन्द्र हैं । अथवा कपियों—वानरादिके
इन्द्र (स्वामी) श्रीरघुनाथजी हैं कपीन्द्र हैं ।

भूरयो बह्वयः यज्ञदक्षिणाः धर्म-
मर्यादां दर्शयतो यज्ञं कुर्वतो विद्यन्त
इति भूरिदक्षिणः ॥६६॥

धर्ममर्यादा दिखाने हुए यज्ञ-
नृष्ठान करते समय भगवान् की बहुत-
सी दक्षिणाएँ रहती हैं, इसलिये वे
भूरिदक्षिण हैं ॥६६॥

सोमपोऽमृतपः सोमः पुरुजित्पुरुसत्तमः ।

विनयो जयः सत्यसन्धो दाशार्हः मात्वताम्पतिः ॥६७॥

५०३ सोमपः, ५०४ अमृतपः, ५०५ सोमः, ५०६ पुरुजित्, ५०७
पुरुसत्तमः । ५०८ विनयः, ५०९ जयः, ५१० सत्यसन्धः, ५११ दाशार्हः,
५१२ मात्वताम्पतिः ॥

सोमं पिबति सर्वयज्ञेषु यष्टव्य-
देवतारूपेणेति सोमपः ; धर्ममर्यादां
दर्शयन् यजमानरूपेण वा सोमपः ।

समस्त यज्ञोंमें यष्टव्य (पूजनीय)
देवतारूपमें सोमपान करते हैं, इसलिये
सोमप हैं । अथवा यजमानरूपमें धर्म-
मर्यादा दिखानेके कारण सोमप हैं ।

स्वात्मा मृतरमं पिबन् अमृतपः ;
असुरैः द्वियमाणममृतं रक्षित्वा
देवान् पाययित्वा स्वयमप्यपिब-
दिति वा ।

अपने आत्मारूप अमृतरसका पान
करनेके कारण अमृतप हैं । अथवा
असुरोंद्वारा हरे हुए अमृतकी रक्षा
करके उसे देवताओंको पिलाया और
स्वयं भी पिया इसलिये अमृतप हैं ।

सोमरूपेणौषधीः पोषयन् सोमः;
उमया सहितः शिवो वा ।

पुरुन् बहून् जयतीति पुरुजित् ।

विश्वरूपत्वात् पुरुः, उत्कृष्ट-
त्वात् सत्तमः; पुरुश्चामो सत्तमश्चेति
पुरुसत्तमः ।

विनयं दण्डं करोति दुष्टाना-
मिति विनयः ।

ममस्तानि भूतानि जयतीति
जयः ।

मन्या सन्धा सङ्कल्पः अस्येति
मन्यमन्धः, 'सत्यमङ्कल्पः' (वा० उ०
८ । १ । ५) इति श्रुतेः ।

दाशो दानं तमर्हतीति दाशार्हः;
दशार्हकुलोद्भवत्वाद्वा ।

सात्वतं नाम तन्त्रम्, 'तत्करोति
तदाचष्टे' (चुरादिगणमूत्रम्) इति
णिचि कृते क्तिप्रत्ययं णिलोपे च
कृते पदं सात्वत्, तेषां पतिः योग-
क्षेमकर इति सात्वतां पतिः ॥ ६७ ॥

सोम (चन्द्रमा) रूपसे ओषधियों-
का पोषण करनेके कारण सोम है ।
अथवा उमाके साथ रहनेके कारण
शिवरूपसे ही सोम है ।

पुरु अर्थात् बहुतोंको जीतते हैं,
इसलिये पुरुजित् हैं ।

विश्वरूप होनेसे पुरु हैं और उत्कृष्ट
होनेके कारण सत्तम हैं । पुरु है और
सत्तम है, इसलिये पुरुसत्तम हैं ।

दृष्ट प्रजाको विनय अर्थात् दण्ड
देते हैं, इसलिये विनय हैं ।

मम भूतोंको जीतते हैं, इसलिये
जय है ।

जिन भगवान्की सन्धा अर्थात्
सङ्कल्प मत्य है वे 'सत्यसङ्कल्प' इस
श्रुतिके अनुसार सत्यसन्ध हैं ।

दाश दानको कहते हैं, भगवान्
दानके योग्य हैं, इसलिये दाशार्ह हैं,
अथवा दशार्हकुलमे उत्पन्न होनेके
कारण दाशार्ह हैं ।

सात्वत नामका एक तन्त्र है 'उसे
रचता है या उसकी व्याख्या करता है'
इस अर्थमें 'तत्करोति तदाचष्टे' इस
गणमूत्रसे णिच् प्रत्यय करनेपर फिर क्तिप्
प्रत्यय करके णिका लोप कर देनेपर
सात्वत् पद बनता है, उन सात्वतोंके
पति अर्थात् योगक्षेम करनेवाले होनेसे
भगवान् सात्वतां पति हैं ॥ ६७ ॥

* सात्वतवंशीय ऋद्धोंके अथवा सात्वतां (वैश्यर्षों) के स्वामी होनेसे भी
भगवान् सात्वतां पति हैं ।

जीवो विनयितासार्क्षी मुकुन्दोऽमितविक्रमः ।

अम्भोनिधिरनन्तात्मा महोदधिशयोऽन्तकः ॥ ६८ ॥

५१३ जीवः, ५१४ विनयितासार्क्षी, (असार्क्षी), ५१५ मुकुन्दः, ५१६ अमितविक्रमः ।

५१७ अम्भोनिधिः, ५१८ अनन्तात्मा, ५१९ महोदधिशयः, ५२० अन्तकः ॥

प्राणान् क्षेत्रज्ञरूपेण धारयन्, क्षेत्रज्ञरूपमे प्राण धारण करनेके
जीव उच्यते । कारण जीव कहे जाते हैं ।

विनयित्वं विनयिता, तां च
साक्षान्पश्यति प्रजानामिति
विनयितासार्क्षी; अथवा, नयतेर्गति-
वाचिनो रूपं विनयिता, अमाक्षी
अमाक्षाद्द्रष्टा आत्मातिरिक्तं वस्तु
न पश्यतीत्यर्थः ।

विनयिता विनयित्वको कहते हैं ।
प्रजाको विनयिताको साक्षात् देखते हैं,
इसलिये विनयितासार्क्षी हैं । गति-
अर्थके वाचक ना वातुकारूप विनयिता
हैं और साक्षात् न देखनेवाले अर्थान्
आत्माके अतिरिक्त अन्य वस्तु न
देखनेवालेको अमाक्षी कहते हैं ।
[इस प्रकार विनयिता और अमाक्षी ये
दो नाम भी हो सकते हैं] ।

मुक्तिं ददातीति मुकुन्द, पृषो-
दरादिन्वात्माधुन्वम् । अक्षरमा-
भ्यान्निरुक्तिवचनात् नैरुक्तानां
मुकुन्द इति निरुक्तिः ।

मुक्ति देने हैं इसलिये मुकुन्द हैं ।
पृषोदरादिगणमे होनेके कारण [मुक्तिद-
के म्यानमें] मुकुन्द शब्दकी मिद्धि
होती है । अक्षरोंको समानता और
निरुक्तिके वचनसे निरुक्तकारोने मुकुन्द
कहा है ।

अमिता अपरिच्छिन्ना विक्रमा-
स्त्रयः पादबिक्षेपा अस्त्र, अमितं
विक्रमणं शौर्यमस्येति वा अमित-
विक्रमः ।

भगवान्के विक्रम अर्थात् तीन पाद-
बिक्षेप अमित यानी अपरिमित हैं,
इसलिये वे अमितविक्रम हैं । अथवा
उनका विक्रम—शूरवीरता अतुलित
है, इसलिये वे अमितविक्रम हैं ।

अम्भामि देवादयोऽस्मिन्नि-
धीयन्त इति अम्भोनिधिः, 'तानि
वा एतानि च वार्यम्भांसि । देवा मनुष्याः
पितरोगेऽवुगाः' इति श्रुतेः । सागरो
वा, 'सगमामस्मि सागरः' (गीता १०।
२४) इति भगवद्वचनान् ।

देशतः कालतो वस्तुतश्चापरि-
च्छिन्नत्वान् अनन्तात्मा ।

मंहन्त्य सर्वभूतान्येकार्णवं जग-
त्कृत्वा अधिशेते महोदधिमिति
महोदधिगयः ।

अन्तं करोति भूतानामिति
अन्तक । 'तत्करोति तदाचष्टे' (चुरादि-
गणमूत्रेण) इति णिच् 'ण्वुल्' (पा०
मृ० ३।१।१३३) इति 'युधोरनाकौ'
(पा० मृ० ७।१।१) इति
अकादेशः ॥ ६८ ॥

अम्भ अर्थात् देवता आदि भगवान्-
मे रहते हैं, इसलिये वे अम्भोनिधि
हैं । श्रुति कहती है—'वे ये चार
अम्भ हैं—देवता, मनुष्य, पितर
और असुर ।' अथवा 'मैं सरोंमें
सागर हूँ' इस भगवान्‌के वचनानुसार
समुद्र ही अम्भोनिधि है ।

देश, काल और वस्तुमें अपरिच्छिन्न
होनेके कारण भगवान् अनन्तात्मा है ।

समस्त भूतोंका संहार कर सम्पूर्ण
जगत्‌को जलमय करके महोदधि
(समुद्र) में शयन करने हैं, इसलिये
महोदधिगय हैं ।

भूतोंका अन्त करने हैं, इसलिये
अन्तक हैं । 'तत्करोति तदाचष्टे'
इस गणमूत्रसे णिच् प्रत्यय करनेके
अनन्तर 'ण्वुल्' मूत्रसे ण्वुल्
प्रत्यय हो जाता है और णिलुक्की
इत्संज्ञा—लोप होनेपर 'वु' का
'युधोरनाकौ' इस मूत्रसे अक आदेश
हो जाता है ॥ ६८ ॥



अजो महार्हः स्वाभाव्यो जितामित्रः प्रमोदनः ।

आनन्दो नन्दनो नन्दः सत्यधर्मा त्रिविक्रमः ॥ ६९ ॥

५२१ अजः, ५२२ महार्हः, ५२३ स्वाभाव्यः, ५२४ जितामित्रः, ५२५
प्रमोदनः । ५२६ आनन्दः, ५२७ नन्दनः, ५२८ नन्दः, (अनन्दः), ५२९
सत्यधर्मा, ५३० त्रिविक्रमः ॥

आत् विष्णोरजायत इति ।
कामः अजः ।

अ अर्थात् विष्णुसे उत्पन्न हुआ है,
इसलिये काम अज है ।

महः पूजा तदर्हत्वात् महार्हः ।

मह पूजाको कहते हैं, उनके
योग्य होनेके कारण महार्ह हैं ।

स्वभावेनैवाभाव्यो नित्य-
निष्पन्नरूपत्वात् इति स्वाभाव्यः ।

नित्यसिद्ध होनेके कारण स्वभावसे ही
उत्पन्न नहीं होते इसलिये स्वाभाव्य हैं ।

जिता अमित्रा अन्तर्वर्तिनो
रागद्वेषादयो बाह्याश्च रावण-
कुम्भकर्णशिशुपालादयो येनासौ
जितामित्रः ।

जिन्होंने रागद्वेषादि आन्तरिक और
रावणादि बाह्य अमित्र यानी शत्रु जीत
लिये हैं वे भगवान् जितामित्र हैं ।

म्यात्मा मृतरमास्वादाभित्यं प्रमो-
दतं, ध्यायिनां ध्यानमात्रेण प्रमोदं
करोतीति वा प्रमोदनः ।

अपने आत्मारूप अमृतरमका
आस्वादन करनेमें नित्य प्रमुदित होने
हैं, अथवा अपने ध्यानमात्रमें ध्यायियों-
को प्रमुदित करने हैं; इसलिये
प्रमोदन हैं ।

आनन्दः स्वरूपमस्येति आनन्दः,
'एतस्यैवानन्दस्यान्यानि भूतानि मात्रा-
मुपजीवन्ति' (सृ० उ० ४।३।
३२) इति श्रुतेः ।

भगवान्का स्वरूप आनन्द है, इस-
लिये वे आनन्द हैं । श्रुति कहती है—
'इस आनन्दकी ही मात्राका आश्रय
ले अन्य प्राणी जीवित रहते हैं ।'

नन्दयतीति नन्दनः ।

आनन्दित करने हैं, इसलिये
नन्दन हैं ।

सर्वाभिरुपपत्तिभिः समृद्धो नन्दः ।
सुखं वैषयिकं नास्य विद्यत इति
अनन्दः, 'यो वै भूमा तत्सुखं नान्ये
सुखमस्ति' (छा० उ० ७।२३।१)
इति श्रुतेः ।

सब प्रकारकी सिद्धियोंमें सम्पन्न
होनेमें नन्द हैं, अथवा भगवान्में
विषयजन्य सुखका अभाव है, इस-
लिये वे अनन्द हैं । श्रुति कहती है—
'जो भूमा (पूर्णता) है वही सुख है,
अन्यमें सुख नहीं है ।'

सत्या धर्मज्ञानादयोऽस्येति
सत्यधर्मा ।

भगवान्के धर्म-ज्ञानादि गुण सत्य हैं
इसलिये वे सत्यधर्मा हैं ।

त्रयो विक्रमास्त्रिषु लोकेषु क्रान्ता
यस्य स त्रिविक्रमः, 'त्राणि पदा
विचक्रमे' इति श्रुतेः, त्रयो लोकाः
क्रान्ता येनेति वा त्रिविक्रमः ।

'त्रिगिन्येव त्रयो लोका'

क्रान्तिता मुनिसत्तमैः ।

क्रमेण तास्त्रिंश सर्व-

त्रिविक्रम इति श्रुत ॥

(३ । ८८ । ५१)

इति हरिवंशे ॥६९॥

जिनके तीन विक्रम (डग) तीनों
लोकोमें क्रान्त (व्याप्त) हो गये वे
भगवान् त्रिविक्रम हैं । श्रुति कहती
है—'तीन पग चले ।' अथवा जिनहोंने
तीनों लोकोंका क्रमण (गहन) किया
है वे भगवान् त्रिविक्रम हैं । हरिवंशमें
कहा है—'मुनिश्रेष्ठोंने 'त्रि' शब्दसे
तीन लोक कहे हैं आप उनका तीन
बार उल्लङ्घन कर जाते हैं इसलिये
त्रिविक्रम नामसे प्रसिद्ध हैं' ॥६९॥

महर्षिः कपिलाचार्यः कृतज्ञो मेदिनीपतिः ।

त्रिपदम्बिदशाध्यक्षो महाशृङ्गः कृतान्तकृत् ॥ ७० ॥

५३१ महर्षिः + कपिलाचार्यः, ५३२ कृतज्ञः, ५३३ मेदिनीपतिः ।

५३४ त्रिपदः, ५३५ त्रिदशाध्यक्षः, ५३६ महाशृङ्गः, ५३७ कृतान्तकृत् ॥

महर्षिः कपिलाचार्यः इति मवि-
शेषणमेकं नाम । महांशासावृषिश्चेति
महर्षिः कृत्स्नस्य वेदस्य दर्शनात्;
अन्ये तु वेदैकदेशदर्शनाद् ऋषयः
कपिलश्चामौ सांख्यस्य शुद्धतत्त्व-
विज्ञानस्याचार्यश्चेति कपिलाचार्यः,

'शुद्धात्मतत्त्वविज्ञानं

सांख्यमित्यभिधीयते ।'

इति स्मृतेः

१२

महर्षि कपिलाचार्य यह विशेषण-
सहित एक नाम है । जो महान् ऋषि
हो उमें महर्षि कहते हैं । सम्पूर्ण
वेदोंको जाननेके कारण [कपिल
महर्षि हैं] और तो केवल वेदके एक
देशको जाननेके कारण ऋषि ही हैं ।
जो कपिल हैं और सांख्यरूप शुद्ध
तत्त्वविज्ञानके आचार्य भी हैं वे ही
कपिलाचार्य हैं । स्मृति कहती है—

‘ऋषिं प्रमूतं कपिलम्’
(खे० उ० ५ । २)

इति श्रुतेश्च,

‘सिद्धानां कपिशे मुनिः’
(गाता १० । २६)

इति स्मृतेश्च

कृतं कार्यं जगत्, ज्ञ आत्मा,
कृतं च तत् ज्ञश्चेति कृतज्ञः ।

मेदिन्या भूम्याः पतिः
मेदिनीपतिः ।

त्रीणि पदान्यस्येति त्रिपदः
‘त्रीणि पदा विचक्रमे’ इति श्रुतेः ।

गुणावेशेन मञ्जातास्तिस्रां दशा
अवस्था जाग्रदादयः, तामामध्यक्ष
इति त्रिदशाध्यक्षः ।

मत्स्यरूपी महति शृङ्गे प्रलया-
म्भोर्धा नावं बद्धा चिक्रीड इति
महाशृङ्गः ।

कृतस्यान्तं संहारं करोतीति,
कृतान्तं मृत्युं कृन्ततीति वा कृता-
न्तकृत् ॥७०॥

‘शुद्ध आत्मतत्त्वका विज्ञान सांख्य
कहलाता है ।’ श्रुतिमें भी कहा है—

‘ऋषिरूपसे उत्पन्न हुए कपिलको ।’
तथा यह स्मृति (गीतावाक्य) भी है—

‘सिद्धोंमें मैं कपिल मुनि हूँ ।’

कृत कार्यरूप जगत् और ज्ञ आत्मा-
को कहते हैं, कृत भी हैं और ज्ञ भी
हैं, इसलिये भगवान् कृतज्ञ हैं ।

मेदिनी अर्थात् पृथ्वीके पनि होनेसे
मेदिनीपति है ।

भगवान् के तीन पद हैं, इसलिये
वे त्रिपद हैं । श्रुति कहती है—
‘तीन पद चले ।’

गुणके आवेशमें जाग्रत, स्वप्न,
सुषुप्ति ये तीन दशा—अवस्थाएँ उत्पन्न
हुई; उनके अध्यक्ष (साक्षा) होनेसे
त्रिदशाध्यक्ष हैं ।

भगवान् ने मत्स्यरूप होकर अपने
महाशृङ्गमें नाव बाँधकर प्रलय-समुद्रमें
क्रीड़ा की थी इसलिये वे महाशृङ्ग हैं ।

कृत (कार्यरूप जगत्) का अन्त
अर्थात् संहार करते हैं, इसलिये
कृतान्तकृत् है । अथवा कृतान्त—
मृत्युको काटते हैं, इसलिये कृतान्त-
कृत् है* ॥७०॥

महावराहो गोविन्दः सुषेणः कनकाङ्गदी ।

गुह्यो गभीरो गहनो गुप्तश्चक्रगदाधरः ॥ ७१ ॥

५३८ महावराहः, ५३९ गोविन्दः, ५४० सुषेणः, ५४१ कनकाङ्गदी ।

५४२ गुप्तः, ५४३ गभीरः, ५४४ गहनः, ५४५ गुप्तः, ५४६ चक्रगदाधरः ॥

महाश्वामौ वराहश्चेति महावराहः । महान् और वराह भी हैं, इसलिये महावराह हैं ।

गोभिर्वाणीभिर्विन्दते, वेत्ति
वेदान्तवाक्यैरिति वा गोविन्दः ।

‘गोभिरेव यतो वेद्यो

गोविन्दः समुदाहृतः ।’

इति श्रीविष्णुतिलके ।

शोभना मेना गणात्मिका
यम्येति सुषेणः ।

कनकमयान्यङ्गदानि अस्येति
कनकाङ्गदी ।

रहस्योपनिषद्वैद्यत्वाद्गुहायां
हृदयाकाशे निहित इति वा गुप्तः ।

ज्ञानैश्वर्यबलवीर्यादिभिर्गम्भीरो
गभीरः ।

दुःप्रवेशत्वाद् गहनः, अवस्था-
त्रयभावाभावसाक्षित्वाद् गहनो वा ।

भगवान्को गो अर्थात् वाणीसे प्राप्त करते हैं अथवा वेदान्त-वाक्योंसे जानते हैं इसलिये वे गोविन्द हैं । विष्णुतिलक-में कहा है—‘क्योंकि वाणीहीसे वेद्य है, इसलिये वह गोविन्द कहलाता है ।’

जिनकी पापदम्प मुन्दर सेना है वे भगवान् सुषेण हैं ।

जिनके कनकमय (सोनेके) अङ्गद (भुजवन्ध) हैं वे भगवान् कनकाङ्गदी कहलाते हैं ।

गोपनीय उपनिषद्-विद्यासे ब्रह्म होनेके कारण अथवा गुहा यानी हृदयाकाशमें छिपे होनेके कारण गुप्त है ।

ज्ञान, ऐश्वर्य, बल और पराक्रम आदि-के कारण गम्भीर होनेसे गभीर है ।

कठिनतासे प्रवेश किये जाने योग्य होनेसे गहन हैं अथवा तीनों अवस्थाओं-के भाव और अभावके साक्षी होनेसे गहन हैं ।



वाङ्मनसागोचरत्वात् गुप्तः,
'एष सर्वेषु भूतेषु
गुह्योऽस्मा न प्रकाशते ।'
(क० उ० १।३।१२)

इति श्रुतेः ।

'मनस्तत्त्वात्मकं चक्रं
बुद्धितत्त्वात्मिका गदाम् ।
धारयन् लोकार्थार्थ-
मुक्तः चक्रगदाधरः ॥'

इति चक्रगदाधरः ॥७१॥

वाणी और मनके अविषय होनेसे
गुप्त हैं । श्रुति कहती है—'सब भूतोंमें
छिपा हुआ यह आत्मा प्रकाशित
नहीं होता ।'

'मनस्तत्त्वरूप चक्र और बुद्धि-
तत्त्वरूप गदाको लेकरक्षाके लिये
धारण करनेसे भगवान् चक्रगदाधर
कहलाते हैं' इस उक्तिके अनुसार
भगवान् चक्रगदाधर हैं ॥ ७१ ॥



वेधाः म्वाङ्गोऽजितः कृष्णो दृढः सङ्कर्षणोऽच्युतः ।

वरुणो वारुणो वृक्षः पुष्कराक्षो महामनाः ॥ ७२ ॥

५४७ वेधा, ५४८ स्वाङ्ग, ५४९ अजितः, ५५० कृष्णः, ५५१ दृढः, ५५२
सङ्कर्षणोऽच्युतः । ५५३ वरुणः, ५५४ वारुणः, ५५५ वृक्षः, ५५६ पुष्कराक्षः,
५५७ महामनाः ॥

विधाता वेधाः । पृषोदरादित्वा-
त्साधुत्वम् ।

स्वयमेव कार्यकरणे अङ्गं सहका-
रीति स्वाङ्गः ।

न केनाप्यवतारेषु जित इति
अजितः ।

कृष्णः कृष्णद्वैपायनः,
'कृष्णद्वैपायनं न्यासं

विद्धि नारायणं प्रभुम् ।

विधान करनेवाले हैं इसलिये वेधा
हैं । पृषोदरादिगणमें होनेके कारण
वेधा शब्द शुद्ध माना जाता है ।

कार्यके करनेमें स्वयं ही अंग अर्थात्
उसके सहकारी हैं, इसलिये स्वाङ्ग है ।

अपने अवतारोंमें किसीमें नहीं जीते
गये, इसलिये अजित हैं ।

कृष्णद्वैपायन ही कृष्ण हैं; जैसा
कि विष्णुपुराणमें कहा है—'कृष्ण-
द्वैपायन इत्यासको प्रभु नारायण ही

को व्यन्यः पुण्डरीकाक्षा-

महाभारतकृद्भवेत् ॥'

(३।४।५)

इति विष्णुपुराणवचनात् ।

स्वरूपसामर्थ्यादेः प्रच्युत्य-

भावाद् दृढः ।

संहारसमये युगपत्प्रजाः

सङ्कर्षतीति सङ्कर्षणः, न च्योतति

स्वरूपादित्यच्युतः, सङ्कर्षणोऽच्युत

इति नार्मकं सविशेषणम् ।

स्वर्गमीनां मन्वरेणात्सायङ्कृतः

सूर्यो वरुणः,

'इमं मे वरुण श्रुधी हवम्'

इति मन्त्रवर्णान् ।

वरुणस्यापत्यं वसिष्ठोऽगस्त्यो

चा वारुणः ।

वृक्ष इवाचलतया स्थित इति

वृक्षः, 'वृक्ष इव स्तब्धो दिवि तिष्ठत्येक'

(श्वे० उ० ३।९) इति श्रुतेः ।

व्याप्त्यर्थादक्षतेर्धातोः पुष्क-

रोपपदादप्रत्यये पुष्कराक्षः, इदय-

ॐ 'कर्मण्य' (पा० सू० ३।२।१) सूत्रमे यहाँ अन् प्रत्यय हुआ है ।

जानो, भला भगवान् पुण्डरीकाक्ष-

को छोड़कर महाभारतका रचने-
वाला और कौन हो सकता है ?'

भगवान् के स्वरूप-सामर्थ्यादिकी
कर्मा प्रच्युति (हाम) नहीं होती,
इसलिये वे दृढ हैं ।

संहारके समय एक साथ ही प्रजा-
का आकर्षण करते हैं इसलिये संकर्षण
है तथा अपने पदसे च्युत नहीं होते
इसलिये अच्युत हैं । इस प्रकार
सङ्कर्षणोऽच्युतः—यह विशेषणसहित
एक नाम है ।

अपनी विरणोका संवरण (संकोच)
करनेके कारण सायंकालीन सूर्य वरुण
है । इस विषयमे यह मन्त्रवर्ण है—
'इमं मे वरुण श्रुधी हवम्' इति ।

वरुणके पुत्र वसिष्ठ या अगस्त्य
वारुण हैं ।

वृक्षके समान अचल भावमे स्थित हैं
इसलिये वृक्ष हैं । श्रुति कहती है—
'स्वर्गमे वृक्षके समान स्तब्ध एक
[परमात्मा] स्थित है ।'

त्रिसका उपपद (पूर्ववर्ती शब्द)
पुष्कर है उस व्याप्ति अर्थवाले अक्ष-
धातुसे अण् प्रत्यय करनेपर पुष्कराक्ष

पुण्डरीके चिन्तितः, स्वरूपेण

प्रकाशत इति वा पुष्कराक्षः ।

सृष्टिस्थित्यन्तकर्माणि मनसैव
करोतीति महामनाः ;

‘मनसैव जगत्सृष्टि

संहारं च करोति यः ।’

इति विष्णुपुराणे ॥७२॥

शब्द सिद्ध होता है । हृदय-कर्म-में
चिन्तन किये जाते हैं अथवा चित्त-
रूपसे प्रकाशित होते हैं, इसलिये
पुष्कराक्ष हैं * ।

सृष्टि, स्थिति और अन्त ये तीनों
कर्म मनसे ही करते हैं इसलिये महामना
हैं । विष्णुपुराणमें कहा है—‘जो मनसे
ही जगत्की उत्पत्ति और संहार
करता है’ ॥७२॥

भगवान्भगवानन्दी वनमाली हलायुधः ।

आदित्यो ज्योतिरादित्यः सहिष्णुर्गतिसत्तमः ॥७३॥

५५८ भगवान्, ५५९ भगवा, ५६० आनन्दा, ५६१ वनमाली,
५६२ हलायुधः । ५६३ आदित्यः, ५६४ ज्योतिरादित्यः, ५६५ सहिष्णुः,
५६६ गतिसत्तम ॥

‘ऐश्वर्यस्य समप्रत्य

धर्मस्य यशसः श्रियः ।

ज्ञानवैराग्ययोश्चैव

पण्डा भग इतीगणा ॥’

(विष्णु ० ६ । ५ । ७४)

मोक्षस्याप्नोति भगवान् ।

‘उत्पत्तिं प्रत्यं चैव

भूतानामगतिं गतिम् ।

वेत्ति विद्यामविद्या च

स वाच्यो भगवानिति ॥’

(६ । ५ । ७८)

इति विष्णुपुराणे ।

‘सम्पूर्ण ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री,

ज्ञान और वैराग्य—इन छःका नाम

भग है’ यह [इस वाक्यमें कहा हुआ]

भग जिसमें है वही भगवान् हैं । अथवा

विष्णुपुराणमें कहा है—‘उत्पत्ति, प्रलय,

प्राणियोंका भाना और जाना, तथा

विद्या और अविद्याको जो जानता है

उसे भगवान् कहना चाहिये ।’

ॐ पुष्कर अर्थात् कमलके समान नेत्रवाले हैं, इसलिये भी पुष्कराक्ष हैं ।

ऐश्वर्यादिकं संहारममये हन्तीति
भगवा ।

सुखस्वरूपत्वात् आनन्दी; सर्व-
सम्पत्तममृदत्वादानन्दी वा ।

भृततन्मात्ररूपां वैजयन्त्याख्यां
वनमालां वहन् वनमाली ।

हलमायुधमस्येति हतमायुधः
बलभद्राकृतिः ।

अदित्यां कश्यपाद्वामनरूपेण
जात आदित्यः ।

ज्योतिषि मवितृमण्डले स्थितो
ज्योतिरादित्यः ।

द्वन्द्वानि शीतोष्णादीनि सहन
इति सहिष्णुः ।

गतिश्चास्मां सत्तमश्चेति
गतिमन्त्रमः ॥७३॥

संहारके समय ऐश्वर्य आदिका
हनन करते हैं, इसलिये भगवा हैं ।

सुखरूप होनेसे आनन्दी हैं ।
अथवा सम्पूर्ण सम्पत्तियोंसे सम्पन्न
होनेके कारण आनन्दी हैं ।

भृततन्मात्राओंकी बनी हुई वैजयन्ती
नामकी वनमाला धारण करनेसे
भगवान् वनमाली कहलाते हैं ।

हल ही जिनका आयुध (शस्त्र) है
वे बलभद्रस्वरूप भगवान् हलमायुध हैं ।

कश्यपजीके द्वारा वामनरूपमें
अदितिके गर्भमें उत्पन्न हुए थे, इसलिये
आदित्य हैं ।

सूर्यमण्डलान्तर्गत ज्योतिर्म स्थित
है, इसलिये ज्योतिरादित्य हैं ।

शीतोष्णादि द्वन्द्वोंको सहन करने
है, इसलिये सहिष्णु हैं ।

गति है और सर्वश्रेष्ठ हैं, इसलिये
गतिसत्तम हैं ॥७३॥

सुधन्वा खण्डपरशुर्दारुणो द्रविणप्रदः ।

दिवःस्पृक् सर्वदृग्व्यासो वाचस्पतिरयोनिजः ॥७४॥

५६७ सुधन्वा, ५६८ खण्डपरशुः, (अखण्डपरशुः), ५६९ दारुणः, ५७० द्रविण-
प्रदः । ५७१ दिवःस्पृक्, ५७२ सर्वदृग्व्यासः, ५७३ वाचस्पतिरयोनिजः ॥

शोभनमिन्द्रियादिमयं शार्ङ्गं भगवान्का इन्द्रियादिमय सुन्दर
धनुस्वास्तीति सुधन्वा । शार्ङ्गधनुष है, इसलिये वे सुधन्वा हैं ।

शत्रूणां खण्डनात् खण्डः परशु-
रस्य जामदग्न्याकृतेरिति खण्डपरशुः ;
अखण्डः परशुरस्येति वा [अखण्ड-
परशुः] ।

सन्मार्गविरोधिनां दारुणत्वात्
दारुणः ।

द्रविणं वाञ्छितं भक्तेभ्यः प्रद-
दातीति द्रविणप्रदः ।

दिवः स्पर्शनात् दिवःस्पृक् ।

सर्वदृशां सर्वज्ञानानां विस्तार-
कृद्ग्रामः सर्वदृग्व्यासः । अथवा,
सर्वा च सा दृक् चेति सर्वदृक् सर्वा-
कारं ज्ञानम् ; सर्वस्य दृष्टित्वाद्वा
सर्वदृक् । ऋग्वेदादिविभागेन
चतुर्धा वेदा व्यस्ताः कृताः, आद्यो
वेद एकविंशतिधा कृतः, द्वितीय
एकांशतशतधा कृतः, सामवेदः
सहस्रधा कृतः, अथर्ववेदो नवधा
शाखाभेदेन कृतः । एवम् अन्यानि
च पुराणानि व्यस्तान्यनेनेति व्यास-
ब्रह्मा ।

वाचस्पतिरयोनिजः ; वाचो विद्या-
याः पतिः वाचस्पतिः, जनन्यां

शत्रुओंका खण्डन करनेसे जिन
परशुरामस्वरूप भगवान्का परशु खण्ड
कहलाता है वे खण्डपरशु हैं; अथवा
जिनका परशु अखण्ड अर्थात् अखण्डित
है वे भगवान् अखण्डपरशु हैं ।

सन्मार्गके विरोधियोंके लिये दारुण
(कठोर) होनेके कारण दारुण है ।

भक्तोंको द्रविण अर्थात् इच्छित धन
देते हैं, इसलिये द्रविणप्रद हैं ।

दिव् (स्वर्ग) का स्पर्श करनेमें
दिवःस्पृक् है ।

सर्वदृक् अर्थात् सम्पूर्ण ज्ञानोंका
विस्तार करनेवाले—व्यास हैं; इसलिये
सर्वदृग्व्यास हैं । अथवा जो सर्व है और
दृक् है वह सर्वाकार ज्ञान ही सर्वदृक्
है । अथवा सबको दृष्ट होनेके कारण
भगवान् सर्वदृक् है । जिन्होंने ऋग्वेदादि
विभागसे वेदको चार भागोंमें विभक्त
किया, फिर शाखा-भेदसे उनमेंसे प्रथम
(ऋग्वेद) के इक्कीस भाग किये, दूसरे
(यजुर्वेद) के एक मी एक भाग किये,
सामवेदको सहस्र भागोंमें बाँटा और
अथर्ववेदके भी शाखा-भेद किये; इसी
प्रकार अन्य पुराणोंका भी विभाग
किया; इसलिये ब्रह्मा जी ही व्यास हैं ।

वाक् अर्थात् विद्याके पति होनेसे
वाचरपति हैं और जननीसे जन्म नहीं

न जायत इति अयोनिजः; इति चेत्, इसलिये अयोनिज है । इस प्रकार
वाचस्पतिरयोनिजः यद् विशेषण-
सविशेषणमेकं नाम ॥७४॥ सहित एक नाम है ॥ ७४ ॥



त्रिसामा सामगः साम निर्वाणं भेषजं भिषक् ।

संन्यासकृच्छ्रमः शान्तो निष्ठा शान्तिः परायणम् ॥ ७५ ॥

५७४ त्रिसामा, ५७५ सामगः, ५७६ साम, ५७७ निर्वाणम्, ५७८
भेषजम्, ५७९ भिषक् । ५८० संन्यासकृत्, ५८१ शमः, ५८२ शान्तः,
५८३ निष्ठा, ५८४ शान्तिः, ५८५ परायणम् ॥

देवव्रतममाख्यातस्त्रिभिः सा- देवव्रत नामक तीन सामाद्वारा
मभिः सामगैः स्तुत इति त्रिसामा । सामगान करनेवालोंसे स्तुति किये जाते
हैं, इसलिये त्रिसामा हैं ।

साम गायतीति सामगः ।

सामगान करने हैं इसलिये सामग हैं ।

‘वेदाना सामवेदोऽस्मि’ (गीता
१० । २२) इति भगवद्वचनान्
सामवेदः नाम ।

‘वेदोमै मै सामवेद हैं’ भगवान्के
इस वचनानुसार सामवेद ही साम है ।

सर्वदुःखोपशमलक्षणं परमा-
नन्दरूपं निर्वाणम् ।

सर्व दुःखोंसे रहित परमानन्दस्वरूप
ब्रह्म ही निर्वाण है ।

मंसाररोगसूर्यावधं भेषजम् ।

मंसाररूप रोगकी औषध होनेसे
भेषज हैं ।

मंसाररोगनिर्मोक्षकारिणीं परां
विद्यामुपदिदेश गीतास्त्विति भिषक्,
‘भिषक्तम् त्वा भिषज्ज्ञां शृणोमि’ इति
श्रुतेः ।

गीतामें संसाररूप रोगसे छुड़ानेवाली
परा विद्याका उपदेश किया है, इसलिये
भगवान् भिषक् हैं । श्रुति कहती है—
‘वैद्योमै मै तुम्हें सबसे बड़ा वैद्य
सुनता हूँ ।’

मोक्षार्थं चतुर्थमाश्रमं कृतवा-
निति संन्यामकृत् ।

मोक्षके लिये चतुर्थाश्रम (संन्यास) का
रचना की है इसलिये संन्यासकृत् है । *

संन्यासिनां प्राधान्येन ज्ञान-
साधनं शममाचष्टे इति शमः ।

'यनोना प्रशमो धर्मो

नियमो वनवासिनाम् ।

दानमेव गृहस्थाना

शुश्रूषा ब्रह्मचारिणाम् ॥'

इति स्मृतेः । 'तत्करोति तदाचष्टे'

(चुरादिगणमन्त्रम्) इति णिचि

पचाश्चि कृते रूपं शम इति ।

सर्वभूतानां शमयितेति वा शमः ।

संन्यासियोंको ज्ञानके साधन शम-
का विशेषरूपसे उपदेश दिया इसलिये
भगवान् शम है । स्मृतिमें कहा है—
'यतियोंका धर्म शम है, वनवासियों-
का नियम है, गृहस्थोंका दान है और
ब्रह्मचारियोंका गुरु-शुश्रूषा ही परम
धर्म है ।' इस शम शब्दसे 'तत्करोति
तदाचष्टे' इस गणमन्त्रके अनुसार णिच्
कर देनेपर [शमयति होता है] उसे
पचादि मानकर अच् प्रत्यय करनेमें 'शम'
पद मिश्र होता है । अथवा मन्त्रप्राणियों
का शमन करनेवाले हैं, इसलिये
शम है ।

विषयमुखेभ्यः सङ्गतया शान्तः ।

'निष्कलं निष्क्रियं शान्तम्' (श्लो० ३०

६ । १९.) इति श्रुतेः ।

विषयमुखोंमें अनामक होनेके
कारण शान्त हैं । श्रुति कहती है—
'परब्रह्म कलारहित, क्रियारहित और
शान्त है ।'

प्रलये नितरां तत्रैव तिष्ठन्ति
भूतानीति निष्ठा ।

प्रलयकालमें प्राणी सर्वथा भगवान्में
ही स्थित रहते हैं, इसलिये वे निष्ठा हैं ।

समस्ताविद्यानिवृत्तिः शान्तिः
मा ब्रह्मैव ।

सम्पूर्ण अविद्याकी निवृत्ति ही
शान्ति है, वह शान्ति ब्रह्मरूप ही है ।

॥ नर-नारायणरूपसे भगवान्ने संन्यास ग्रहण किया था, इसलिये भी वे
संन्यासकृत् हैं ।

परमुत्कृष्टमयनं स्थानं पुनरावृ- पुनरावृत्तिकी शंकासे रहित परम-
त्तिशङ्कारहितमिति परायणम् । उत्कृष्ट अयन अर्थात् स्थान है, इसलिये
पुँल्लिङ्गपक्षे बहुव्रीहिः ॥७५॥ परायण हैं। यदि [परायणमके स्थानमें
परायणः ऐसा] पुँल्लिङ्ग पाठ हो तो
बहुव्रीहिसमास करना चाहिये* ॥७५॥

शुभाङ्गः शान्तिदः स्रष्टा कुमुदः कुवलेशयः ।

गोहितो गोपतिर्गोप्ता वृषभाक्षो वृषप्रियः ॥ ७६ ॥

५८६ शुभाङ्गः, ५८७ शान्तिदः, ५८८ स्रष्टा, ५८९ कुमुदः, ५९० कुवलेशयः ।

५९१ गोहितः, ५९२ गोपतिः, ५९३ गोप्ता, ५९४ वृषभाक्षः, ५९५ वृषप्रियः ॥

मुन्दरां तनुं धारयन् शुभाङ्गः । सुन्दर शरीर धारण करनेके कारण
भगवान् शुभाङ्ग है ।

रागद्वेषादिनिर्मोक्षलक्षणां शा- राग-द्वेषादिमें मुक्त हो जानाक्य
न्तिं ददातीति शान्तिदः । शान्ति देने है, इसलिये शान्तिद है ।

मर्गादीं सर्वभूतानि समर्जयि- मर्गके आरम्भमें सब भूतोंको रचा
स्रष्टा । है, इसलिये स्रष्टा है ।

कौं भूम्यां मोदत इति कुमुदः । कु अर्थात् पृथिवीमें मुदित होते हैं,
इसलिये कुमुद हैं ।

कोः क्षितेर्वलनात् संमरणात् कु अर्थात् पृथिवीका बलन करने
कुचलं जलम्, तस्मिन् शेत इति (घेरने) से जल कुचल कहलाता है,
कुवलेशयः; 'शयवासवासिष्यकालात्' उसमें शयन करते हैं इसलिये कुवलेशय
है । 'शयवासवासिष्यकालात्' इस
(पः० मू० ६। ३। १८) इति सूत्रके अनुसार यहाँ समीक्षा लुक्
(लोप) नहीं हुआ । अथवा कुचल अर्थात्

अलुक् सप्तम्याः; कुचलस्य बदरी- बदरीपत्रके मध्यमें तक्षक शयन करता

ॐ तब इसका विग्रह इस प्रकार होगा—परम् अयनं यस्य सः; अर्थात् जिसका
अयन (निवासस्थान) परम (उत्कृष्ट) हो, वह ।

फलस्य मध्ये शेते तक्षकः, सोऽपि
तस्य विभूतिरिति वा हरिः कुव-
लेशयः। कौ भूम्यां वलते संश्रयन
इति मर्षणामुदरं कुवलम्, तस्मिन्
शेषोदरे शेन इति कुवलेशयः।

गवां वृद्धयर्थं गोवर्धनं धृतवा-
निनि गोभ्यो दितो गोहितः। गोर्भूमिः
भारावनरणेच्छया शरीरग्रहणं
कुर्वन्वा गोहितः।

गोर्भूम्याः पतिः गोपतिः।

रक्षको जगत इति गोप्ता।
स्वमायया स्वमात्मानं संवृणोतीति
वा गोप्ता।

सकलान् कामान् वृषुंके अक्षिणी
अस्प्येति, वृषभो धर्मः स एव वा
दृष्टिरस्प्येति वृषमाक्षः।

वृषो धर्मः प्रियो यस्य स वृष-
प्रियः, 'वा प्रियस्य' (वार्तिकम्)
इति पूर्वनिपातविकल्पविधानात्

है, वह भी भगवानकी विभूति ही है,
इसलिये भी श्रीहरि कुवलेशय हैं।
अथवा कु अर्थात् पृथिवीका आश्रय
लेनेके कारण सर्पोंका उदर कुवल
कहलाता है, उसपर-शेषोदरपर शयन
करते हैं, इसलिये कुवलेशय हैं।

गौओंकी वृद्धिके लिये गोवर्धनधारण
क्रिया था अतः गौओंके हितकारि
होनेसे भगवान् गोहित है। अथवा
गौ-पृथिवीका भार उतारनेके लिये
अपनी इच्छासे शरीर धारण करनेके
कारण गोहित है।

गो अर्थात् भूमि आदिके पनि होनेके
कारण भगवान् गोपति है।

जगत्के रक्षक हैं इसलिये गोप्ता हैं।
अथवा अपनी मायामे अपनेको ढँक
लेने है, इसलिये गोप्ता है।

भगवान्की अक्षि (आँखें)
सम्पूर्ण कामनाओंको बरसानेवाली है,
इसलिये अथवा वृष धर्मको कहते हैं
और वही उनकी दृष्टि है, इसलिये वे
वृषमाक्ष हैं।

जिन्हें वृष अर्थात् धर्म प्रिय है वे
भगवान् वृषप्रिय हैं। 'वा प्रियस्य'
इस वार्तिकके अनुसार प्रिय शब्दके
पूर्वनिपातका विकल्प होनेसे यहाँ

॥ यह वार्तिक 'सप्तमविशेषणे बहुव्रीही' (पा० सू० २। २। २५) मूलके
ऊपर है।

परनिपातः वृषध्यासौ प्रियश्चेति परनिपात हुआ है । अथवा जो वृष
वा ॥७६॥ एवं प्रिय भी हैं [वे भगवान् वृषप्रिय
हैं] ॥७६॥



अनिवर्ती निवृत्तात्मा सङ्क्षेप्ता क्षेमकृच्छिवः ।

श्रीवत्सवक्षाः श्रीवासः श्रीपतिः श्रीमतां वरः ॥ ७७ ॥

५९६ अनिवर्ती, ५९७ निवृत्तात्मा, ५९८ सङ्क्षेप्ता, ५९९ क्षेमकृत्,
६०० शिवः । ६०१ श्रीवत्सवक्षाः, ६०२ श्रीवासः, ६०३ श्रीपतिः,
६०४ श्रीमतां वरः ॥

देवासुरसंग्रामाच्च निवर्तत इति
अनिवर्ती; वृषप्रियत्वाद्धर्माच्च निव-
र्तत इति वा ।

देवासुरसंग्रामसे पीछे नहीं हटने,
इसलिये अनिवर्ती है; अथवा धर्मप्रिय
होनेके कारण धर्मसे विमुख नहीं होने
इसलिये अनिवर्ती हैं ।

स्वभावतो विषयभ्यो निवृत्त
आत्मा मनोऽस्येति निवृत्तात्मा ।

भगवानका आत्मा यानी मन स्व-
भावसे ही विषयोंसे निवृत्त (हटा हुआ)
है, इसलिये वे निवृत्तात्मा है ।

विस्तृतं जगत् संहारममयं
सूक्ष्मरूपेण सङ्क्षिपन् सङ्क्षेप्ता ।

संहारके समय विस्तृत जगत्को
सूक्ष्मरूपमें संक्षिप्त करने हैं, इसलिये
संक्षेप्ता है ।

उपात्तस्य परिरक्षणं करोतीति
क्षेमकृत् ।

प्राप्त हुए पदार्थको रक्षा [अर्थात्
क्षेम] करने हैं, इसलिये क्षेमकृत् है ।

स्वनामस्मृतिमात्रेण पावयन्
शिवः ।

अपने नामस्मरणमात्रसे पवित्र करने-
के कारण शिव हैं ।

इति नाम्नां षष्ठं शतं विवृतम् ।

यहाँतक सहस्रनामके छठे शतकका
विवरण हुआ ।

श्रीवत्ससंज्ञं चिद्धमस्य वक्षसि
स्थितमिति श्रीवत्सवक्षाः ।

अस्य वक्षसि श्रीरनपायिनी
वसतीति श्रीवामः ।

अमृतमयने सर्वान् सुरासुरादीन्
विडाय श्रीरेनं पतित्वेन वरया-
मामेति श्रीपतिः । श्रीः पराशक्तिः,
तस्याः पतिरिति वा, 'पराम्य शक्ति-
विधिर्देव भ्रूयते' (इवे० उ० ६।८)
इति श्रुतेः ।

ऋग्यजुःसामलक्षणा श्रीर्येषां
तेषां सर्वेषां श्रीमतां विरिञ्चया-
दीनां प्रधानभूतः श्रीमतां वरः, 'ऋच'
सामानि यजुःषि । सा हि श्रीमृता
सताम' इति श्रुतेः ॥७७॥

भगवान्के वक्षःस्थले श्रीवत्स नामक
चिह्न है, इसलिये वे श्रीवत्सवक्षा हैं ।

उनके वक्षःस्थले कर्मा नष्ट न होने-
वाली श्री निवाम करती हैं, इसलिये
वे श्रीवाम हैं ।

अमृतमन्थनके समय श्रीने सुर-
असुर सबको छोड़कर भगवान्को हां
पतिरूपमे वरण किया था, इसलिये वे
श्रीपति हैं । अथवा श्री पराशक्तिको
कहते हैं, उसके पति होनेके कारण
श्रीपति हैं; जैसा कि श्रुति कहती है—
'उस (ईश्वर) की पराशक्ति अनेक
प्रकारकी ही सुनी जाती है ।'

जिनकी ऋक्, यजुः और सामरूप
श्री हैं उन ब्रह्मा आदि श्रीमानोंमे प्रधान
होनेसे भगवान् श्रीमतां वर हैं । श्रुति
कहती है—'ऋक्, साम और यजुः ही
सत्पुरुषोंकी अमर श्री हैं' ॥७७॥



श्रीदः श्रीशः श्रीनिवासः श्रीनिधिः श्रीविभावनः ।

श्रीधरः श्रीकरः श्रेयः श्रीमाल्लोकत्रयाश्रयः ॥ ७८ ॥

६०५ श्रीदः, ६०६ श्रीशः, ६०७ श्रीनिवासः, ६०८ श्रीनिधिः, ६०९
श्रीविभावनः । ६१० श्रीधरः, ६११ श्रीकरः, ६१२ श्रेयः, ६१३ श्रीमान्,
६१४ लोकत्रयाश्रयः ॥

अभयं ददाति भक्तानामिति । भक्तोंको श्री देते हैं इसलिये श्रीद हैं ।
श्रीदः ।

श्रिय ईशः श्रीशः ।

श्रीके ईश होनेसे श्रीश हैं ।

श्रीमत्सु नित्यं वसतीति श्री-
निवासः । श्रीशब्देन श्रीमन्तो
लक्ष्यन्ते ।

श्रीमानोंमें नित्य निवास करते हैं,
इसलिये श्रीनिवास हैं । (यहाँ) श्री
शब्दसे श्रीमान् लक्षित होते हैं ।

सर्वशक्तिमयेऽस्मिन्नखिलाः श्रियो
निधीयन्त इति श्रीनिधिः ।

इन सर्वशक्तिमान् ईश्वरमें सम्पूर्ण
श्रियाँ एकत्रित हैं, इसलिये ये
श्रीनिधि हैं ।

कर्मानुरूपेण विविधाः श्रियः
सर्वभूतानां विभावयतीति श्री-
विभावन ।

समस्त भूतोंको उनके कर्मानुसार
विविध प्रकारकी श्रियाँ देने हैं, इसलिये
श्रीविभावन हैं ।

सर्वभूतानां जननीं श्रियं वक्षसि
वहन् श्रीधर ।

सम्पूर्ण भूतोंकी जननी श्रीको
छातीमें धारण करनेके कारण श्रीधर हैं ।

अगतां स्तुवताम् अर्चयतां
च भक्तानां श्रियं करोतीति
श्रीकर ।

स्मरण, स्तवन और अर्चन करने-
वाले भक्तोंको श्रीयुक्त करते हैं, इसलिये
श्रीकर हैं ।

अनपायिसुखावासिलक्षणं श्रेयः,
तच्च परस्यैव रूपमिति श्रेयः ।

कभी नष्ट न होनेवाले सुखका
प्राप्त होना ही श्रेय है, और वह
परमात्माका ही स्वरूप है, इसलिये वे
श्रेय हैं ।

श्रियोऽस्य सन्तीति श्रीमान् ।

भगवान्में श्रियाँ हैं, इसलिये वे
श्रीमान् हैं ।

त्रयाणां लोकानाम् आश्रयत्वात्
लोकत्रयाश्रयः ॥७८॥

तीनों लोकोंके आश्रय होनेसे
लोकत्रयाश्रय है ॥७८॥



स्वक्षः स्वङ्गः शतानन्दो नन्दिज्योतिर्गणेश्वरः ।

विजितात्माविधेयात्मा सत्कीर्तिश्छिन्नसंशयः ॥ ७९ ॥

६१५ स्वक्षः, ६१६ स्वङ्गः, ६१७ शतानन्दः, ६१८ नन्दिः, ६१९ ज्योति-
र्गणेश्वरः । ६२० विजितात्मा, ६२१ अविधेयात्मा, ६२२ सत्कीर्तिः, ६२३
स्निग्धसंशयः ॥

शोभने पुण्डरीकाभे अक्षिणी
अस्येति स्वक्षः ।

शोभनान्यङ्गानि अस्येति स्वङ्गः ।

एक एव परमानन्द उपाधि-
भेदाच्छ्रुतधा भिद्यत इति शतानन्द
'पतस्यैवानन्दस्यान्यानि भूतानि मात्रा-
मुपजीवन्ति' (वृ० उ० ४।३।३२)
इति श्रुतः ।

परमानन्दविग्रहो नन्दिः ।

ज्योतिर्गणानामीश्वरः ज्योति-
र्गणेश्वरः । 'नमेव भान्तमनुमानि सर्वम्'
(क० उ० २।५।१५) इति श्रुतः,
'यदादित्यगर्तं तेजः' (गीता १५।
१२) इत्यादिस्मृतंश्च ।

विजित आत्मा मनो येन स
विजितात्मा ।

न केनापि विधेय आत्मा
स्वरूपमस्येति अविधेयात्मा ।

भगवान्की अक्षि (आँखें) कमन्के
समान सुन्दर हैं, इसलिये वे स्वक्ष हैं ।

उनके अङ्ग सुन्दर हैं, इसलिये वे
स्वङ्ग हैं ।

वे एक ही परमानन्दस्वरूप भगवान्
उपाधि-भेदमे मैकडों प्रकारके हो
जाते हैं, इसलिये शतानन्द हैं । श्रुति
कहती है—'इस आनन्दकी मात्राके ही
सहारे अन्य प्राणी जीते हैं ।'

परमानन्दरूप होनेसे भगवान्
नन्दि हैं ।

ज्योतिर्गणों (नक्षत्रगणों) के ईश्वर
होनेसे वे ज्योतिर्गणेश्वर हैं; जैसा
कि श्रुति कहती है—'उसके भासनेपर
ही सब भासते हैं ।' तथा स्मृतिका
भी कथन है—'जो आदित्यमें स्थित
तेज है' इत्यादि ।

जिन्होंने आत्मा अर्थात् मनको
जीत लिया है वे भगवान् विजि-
तात्मा हैं ।

भगवान्का आत्मा अर्थात् स्वरूप
किसीके द्वारा विधिरूपसे नहीं कहा
जा सकता इसलिये वे अविधेयात्मा हैं ।

सती अवितथा कीर्तिरस्येति
सकीर्तिः ।

भगवान्की कीर्ति सती अर्थात् सत्य
है, इसलिये वे सत्कीर्ति हैं ।

करतलामलकवत्सर्वसाक्षात्कृत-
वतः क्तापि संशयो नास्तीति
छिन्नसंशयः ॥ ७९ ॥

हाथपर रत्ने हुए आँवलेके समान
सबको साक्षात् देखनेवाले भगवान्को
कोई संशय नहीं है, इसलिये वे
छिन्नसंशय हैं ॥ ७९ ॥

उदीर्णः सर्वतश्चक्षुरनीशः शाश्वतस्थिरः ।

भूशयो भूषणो भूतिर्विशोकः शोकनाशनः ॥ ८० ॥

६२४ उदीर्णः, ६२५ सर्वतश्चक्षुः, ६२६ अनीशः, ६२७ शाश्वतस्थिरः ।
६२८ भूशयः, ६२९ भूषणः, ६३० भूतिः, ६३१ विशोकः, ६३२
शोकनाशनः ॥

सर्वभूतेभ्यः समुद्रित्तन्वात्
उदीर्णः ।

सब प्राणियोंसे उन्कृष्ट होनेके कारण
उदीर्ण है ।

सर्वतः सर्वं स्यचैतन्येन पश्य-
तीति सर्वतश्चक्षुः, 'विश्वतश्चक्षुः'
(श्र० उ० ३।३) इति श्रुतेः ।

अपने चैतन्यस्वरूपसे सब ओरसे
सबको देखते हैं, इसलिये सर्वतश्चक्षुः
है । श्रुति कहती है—'ईश्वर सब ओर
नेत्रवाला है ।'

न विद्यतेऽस्येश इति अनीशः
'न तस्येश कथन' (ना० उ० २)
इति श्रुतेः ।

भगवान्का कोई ईश नहीं है इसलिये
वे अनीश हैं; जैसा कि श्रुति कहती है—
'उसका कोई ईश्वर नहीं हुआ ।'

शश्वद्भवन्नपि न विक्रियां कदा-
चिदुपैति इति शाश्वतस्थिरः इति
नामकम् ।

नित्य होनेपर भी कभी विकारको
प्राप्त नहीं होते, इसलिये शाश्वतस्थिर
हैं । यह एक नाम है ।

लक्षां प्रति मार्गमन्वेपयन्
सागरं प्रति भूमीं श्रेत इति भूशयः ।

लक्षाके लिये मार्ग निकालनेके समय
समुद्रतटपर भूमिपर सोये थे, इसलिये
भूशय हैं ।

स्वेच्छावतारैः बहुभिः भूमि
भूषयन् भूषणः ।

भूतिः भवनं सत्ता, विभूतिर्वा;
मर्वविभूतीनां कारणत्वाद्वा भूतिः ।

विगतः शोकोऽस्य परमानन्द-
करूपत्वादिति विशोकः ।

स्मृतिमात्रेण भक्तानां शोकं
नाशयतीति शोकनाशनः ॥ ८० ॥

अपनी इच्छासे बहुत-से अवतार
लेकर पृथिवीको भूषित करनेके कारण
भगवान् भूषण हैं ।

भवन (होना) सत्ता या विभूतिरूप
होनेसे भूति हैं । अपवा समस्त
विभूतियोंके कारण होनेसे भूति हैं ।

परमानन्दस्वरूप होनेसे भगवान्का
शोक विगत हो गया है, इसलिये वे
विशोक हैं ।

अपने स्मरणमात्रसे भक्तोंका शोक
नष्ट कर देते हैं, इसलिये शोकनाशन
हैं ॥ ८० ॥

अर्चिष्मानर्चितः कुम्भो विशुद्धात्मा विशोधनः ।

अनिरुद्धोऽप्रतिरथः प्रद्युम्नोऽमितविक्रमः ॥ ८१ ॥

६३३ अर्चिष्मान्, ६३४ अर्चितः, ६३५ कुम्भः, ६३६ विशुद्धात्मा, ६३७
विशोधनः । ६३८ अनिरुद्धः, ६३९ अप्रतिरथः, ६४० प्रद्युम्नः, ६४१
अमितविक्रमः ॥

अर्चिष्मन्तो यदीयेनार्चिषा
चन्द्रसूर्यादयः, स एव मुख्यः
अर्चिष्मान् ।

सर्वलोकार्चितैर्विरञ्जयादिभिर-
प्यर्चित इति अर्चितः ।

कुम्भवदस्मिन् सर्वं प्रतिष्ठित-
मिति कुम्भः ।

जिनकी अर्चियां (किरणों) से
सूर्य, चन्द्र आदि अर्चिष्मान् हो रहे हैं
वे भगवान् ही मुख्य अर्चिष्मान् हैं ।

ब्रह्मा आदि सम्पूर्ण लोकोसे अर्चित
(पूजित) हैं, इसलिये अर्चित हैं ।

कुम्भ (घड़े) के समान भगवान्में
सब वस्तुएँ स्थित हैं, इसलिये वे
कुम्भ हैं ।

गुणत्रयातीततया विशुद्धभासा-
चात्मेति विशुद्धात्मा ।

तीनों गुणोंसे अतीत होनेके कारण
भगवान् विशुद्ध आत्मा हैं, इसलिये वे
विशुद्धात्मा हैं ।

स्मृतिमात्रेण पापानां क्षपणात्
विशोधनं ।

अपने स्मरणमात्रसे पापोंका नाश
कर देनेके कारण विशोधन हैं ।

चतुर्व्यूहेषु चतुर्थो व्यूहः
अनिरुद्धः; न निरुद्धयते शत्रुभिः
कदाचिदिति वा ।

[वासुदेव, मंकर्पण, प्रद्युम्न और
अनिरुद्ध-इन] चार व्यूहोंमेंसे चौथा
व्यूह अनिरुद्ध है । अथवा अपने
शत्रुओंद्वारा कभी रोंके नहीं जाते,
इसलिये अनिरुद्ध हैं ।

प्रतिरथः प्रतिपक्षोऽस्य न
विद्यत इति अप्रतिरथः ।

भगवानका कोई प्रतिरथ अर्थात्
प्रतिपक्ष (विरुद्धपक्ष) नहीं है, इसलिये
वे अप्रतिरथ हैं ।

प्रकृष्टं युम्नं द्रविणमस्येति
प्रद्युम्नः; चतुर्व्यूहात्मा वा ।

भगवानका युम्न-धन प्रकृष्ट (श्रेष्ठ)
है, इसलिये वे प्रद्युम्न हैं । अथवा
चतुर्व्यूहके अन्तर्बर्ती प्रद्युम्न हैं ।

अमितोऽतुलितो विक्रमोऽस्य
इति अमितविक्रमः, अहिंसितविक्रमो
वा ॥ ८१ ॥

उनका विक्रम (पुरुषार्थ या डग)
अपरिमित है, इसलिये वे अमित-
विक्रम हैं । अथवा उनका विक्रम
अहिंसित-अप्रतिहत है, इसलिये वे
अमितविक्रम हैं ॥ ८१ ॥



कालनेमिनिहा वीरः शौरिः शूरजनेश्वरः ।

त्रिलोकात्मा त्रिलोकेशः केशवः केशिहा हरिः ॥ ८२ ॥

६४२ कालनेमिनिहा, ६४३ वीरः, ६४४ शौरिः, ६४५ शूरजनेश्वरः ।

६४६ त्रिलोकात्मा, ६४७ त्रिलोकेशः, ६४८ केशवः, ६४९ केशिहा, ६५० हरिः ॥

कालनेमिमसुरं निजघानेति
कालनेमिनिहा ।

वीरः शूरः ।

शूरकुलोद्भवत्वात् शौरिः ।

शूरजनानां वामवादीनां शौर्या-
तिशयेनेष्ट इति शूरजनेश्वरः ।

त्रयाणां लोकानाम् अन्तर्या-
मितया आत्मेति, त्रयो लोका
अस्मात्परमार्थतो न भिद्यन्त इति
वा त्रिलोकान्मा ।

त्रयो लोकास्तदाज्ञप्ताः स्वेषु
स्वेषु कर्मसु वर्तन्त इति त्रिलोकेशः ।

केशसंज्ञिताः सूर्यादिसङ्क्रान्ता
अंशवः, तद्वत्तया केशवः;

‘अंशवो ये प्रकाशन्ते

मम ते केशसंज्ञिताः ।

सर्वज्ञाः केशवं तस्मा-

न्मामाहुर्दिजसत्तमाः ॥’

(शान्ति० ३४१ । ४८) इति

महाभारते । ब्रह्मविष्णुशिवाख्याः

शक्तयः केशसंज्ञिताः; तद्वत्तया वा

भगवान्ने कालनेमि नामक असुर-
का हनन किया था, इसलिये वे
कालनेमिनिहा हैं ।

शूर होनेके कारण वीर हैं ।

शूरकुलमें उत्पन्न होनेके कारण
भगवान् शौरि हैं ।

अतिशय शौर्यके कारण इन्द्र आदि
शूरवीरोंका भी शासन करने हैं, इसलिये
शूरजनेश्वर हैं ।

अन्तर्यामीरूपसे तीनों लोकोंके
आत्मा होनेके कारण अथवा तीनों
लोक ब्रह्मत्वमें उनमें पृथक् नहीं हैं,
इसलिये वे त्रिलोकात्मा हैं ।

भगवान्की आज्ञासे तीनों लोक
अपने-अपने कार्योंमें लगे रहने हैं,
इसलिये वे त्रिलोकेश हैं ।

सूर्यादिके अन्दर व्याप्त हुई किरणोंकेश
कहलाती हैं, उनसे युक्त होनेके कारण
भगवान् केशव हैं । महाभारतमें कहा है

‘मेरी जो किरणें प्रकाशित होती हैं
वे केश कहलाती हैं, इसलिये सर्वज्ञ

दिग्बोधेष्ट मुझे केशव कहते हैं ।’ अथवा
ब्रह्मा, विष्णु और शिव नामकी शक्तियाँ
केश हैं, उनसे युक्त होनेके कारण

केशवः । 'त्रयः केशिनः' इति श्रुतेः ।
'मत्केशी वसुधातले' (विष्णु ०५।१।६१)
इति केशशब्दः शक्तिपर्यायत्वेन
प्रयुक्तः ।

'यो व्रजेति ममाख्यात

इशोऽहं सर्वदेहिनाम् ।

आवा तवांशमभूतौ

तस्मात्केशवनामवान् ॥'

(१ । ८८ । ३८)

इति हरिवंश ।

केशिनामानमसुरं हतवानिति
केशिना ।

महेतुकं संसारं हरतीति
हरि ॥ ८२ ॥

भगवान् केशव हैं । श्रुति कहती है--
'तीन केशवाले हैं ।' तथा 'मेरे दो
केश (शक्तियाँ) पृथ्वीतलमें हैं ।'
इस वाक्यमें केश शब्दका शक्तिके
पर्यायरूपसे प्रयोग किया गया है ।
हरिवंशमें [महादेवजीने] कहा है--
'रुद्राक्षका नाम है और मैं सम्स्त
देहधारियोंका ईश हूँ । हम दोनों
आपके अंशसे उत्पन्न हुए हैं, इसलिये
आप केशव नामवाले हैं ।'

भगवान्ने केशी नामके असुरको
मारा था, इसलिये वे केशिना हैं ।

[अविद्यारूप] कारणके सहित
संसारको हर लेते हैं, इसलिये हरि
हैं ॥ ८२ ॥

- - - - -

कामदेवः कामपालः कामी कान्तः कृतागमः ।

अनिर्देश्यवपुर्विष्णुर्वीरोऽनन्तो धनञ्जयः ॥ ८३ ॥

६५१ कामदेवः, ६५२ कामपालः, ६५३ कामी, ६५४ कान्तः, ६५५
कृतागमः । ६५६ अनिर्देश्यवपुः, ६५७ विष्णुः, ६५८ वीरः, ६५९ अनन्तः,
६६० धनञ्जयः ॥

धर्मादिपुरुषार्थचतुष्टयं वाञ्छद्भिः
काम्यत इति कामः; स चासौ
देवश्चेति कामदेवः ।

कामिनां कामान् पालयतीति
कामपालः ।

धर्मादि पुरुषार्थचतुष्टयकी इच्छा-
वान्छेसे कामना किये जाते हैं, इसलिये
काम हैं । काम भी हैं और देव भी हैं,
इसलिये कामदेव हैं ।

कामियोंकी कामनाओंका पालन
करते हैं, इसलिये कामपाल हैं ।

पूर्णकामस्वभावत्वात् कामी ।
अमिरूपतमं देहं वहन् कान्तः ।
द्विपरार्धान्ते कस्य ब्रह्मणोऽप्यन्तो-
ऽस्मादिति वा कान्तः ।

कृत आगमः श्रुतिस्मृत्यादि-
लक्षणो येन स कृतागमः, 'श्रुति-
स्मृती ममैवाज्ञे' इति भगवद्वचनात् ।
'वेदाः शास्त्राणि विज्ञान-
मेतत्सर्वं जनार्दनात् ।'
(वि० स० १३९)

इत्यत्रैव वक्ष्यति ।

इदं तदीदृशं वेति निर्देष्टुं यन्न
शक्यते गुणाद्यतीतत्वात् तदेव रूप-
मस्येति अनिर्देश्यवपुः ।

रोदसी व्याप्य कान्तिरभ्यधिका
स्थितास्येति विष्णुः;

'व्याप्य मे रोदसी पार्थ
कान्तिरभ्यधिका स्थिता ।'
'क्रमणाद्वाप्यहं पार्थ
विष्णुरित्यभिसंज्ञितः ॥'

इति महाभारते (शान्ति० ३४१ ।
४२-४३) ।

गन्यादिमन्त्रात् धीरः, 'वी

स्वभावतः पूर्णकाम होनेसे कामी है ।

परम सुन्दर देह धारण करनेके
कारण कान्त हैं । अथवा द्विपरार्ध
(ब्रह्माके सी वर्ष) के अन्तमें क-
ब्रह्माका अन्त (लय) भी इन्होंने
होता है, इसलिये कान्त हैं ।

'श्रुति तथा स्मृति मेरी ही
आज्ञाएँ हैं' इस भगवद्वचनके अनुसार
जिन्होंने श्रुति, स्मृति आदि आगम
(शास्त्र) रचे हैं वे भगवान् कृतागम
हैं; जैसा कि आगे चल्कर कहेंगे-
'वेद, शास्त्र और विज्ञान ये सब
श्रीजनार्दनसे ही [प्रकट] हुए हैं ।'

गुणादिमें अतीत होनेके कारण
भगवान्का रूप 'यह, वह अथवा ऐसा'
इस प्रकार निर्दिष्ट नहीं किया जा
सकता, इसलिये वे अनिर्देश्यवपुः हैं ।

भगवान्की प्रचुर कान्ति पृथिवी
और आकाशको व्याप्त करके स्थित है,
इसलिये वे विष्णु हैं । महाभारतमें
कहा है- 'हे पार्थ ! मेरी प्रचुर कान्ति
पृथिवी और आकाशको व्याप्त करके
स्थित है' [इसलिये] 'अथवा सर्वत्र
क्रमण (गमन) करनेसे मैं विष्णु
कहलाता हूँ ।'

गति आदिसे युक्त होनेके कारण
धीर हैं, जैसा कि धातुपाठ है- 'वी

गतिप्रजनकान्त्यसनम्बादनेषु' इति
धातुपाठात् ।

व्यापित्वाभित्यत्वात्सर्वात्मत्वा-
देशतः कालतो वस्तुतश्चापरि-
च्छिन्न अनन्तः, 'सत्यं ज्ञानमनन्तं
ब्रह्म' (तै० उ० २ । १) इति श्रुतेः;
'गन्धर्वाप्सरसः सिद्धाः

किन्नरोगगारणाः ।

नान्तं गुणानां गच्छन्ति

तेनानन्तोऽयमन्ययः ॥'

(१ । ५ । २४)

इति विष्णुपुराणवचनाद्वा अनन्तः ।

यद्विग्विजयं प्रभूतं धनमजयत्तेन

यनक्षय अर्जुनः, 'पाण्डवानां

यनक्षय' (गीता १० । ३७) इति

भगवद्वचनात् ॥ ८३ ॥

धातु गति, व्याप्ति, अनन्त, काम्ति,
कँकनेऔरखानेजर्ममेंप्रयुक्तहोताहै।'

व्यापी, नित्य, सर्वात्मा तथा देश,
काल और वस्तुसे अपरिच्छिन्न होनेके
कारण भगवान् अनन्त हैं । श्रुति
कहती है- 'ब्रह्म सत्य, ज्ञान और
अनन्त है।' अथवा 'गन्धर्व, अप्सरा,
सिद्ध, किन्नर, सर्प और खारण
आदि अविनाशीभगवान्के गुणोंका
अन्त नहीं पा सकते, इसलिये वे
अनन्त हैं।' इस विष्णुपुराणके वचनके
अनुसार भगवान् अनन्त हैं ।

अर्जुनने दिग्विजयके समय बहुत-सा
धन जीता था, इसलिये वे धनक्षय हैं ।
तथा 'पाण्डवोंमें मैं धनक्षय हूँ'
भगवान्के इस वचनानुसार [अर्जुन
भगवान्की विभूति होनेसे वे स्वयं भी
धनक्षय हैं] ॥ ८३ ॥



ब्रह्मण्यो ब्रह्मकृद्ब्रह्मा ब्रह्म ब्रह्मविवर्धनः ।

ब्रह्मविद्ब्राह्मणो ब्रह्मी ब्रह्मज्ञो ब्राह्मणप्रियः ॥ ८४ ॥

६६१ ब्रह्मण्यः, ६६२ ब्रह्मकृत्, ६६३ ब्रह्मा, ६६४ ब्रह्म, ६६५ ब्रह्म-
विवर्धनः । ६६६ ब्रह्मवित्, ६६७ ब्राह्मणः, ६६८ ब्रह्मी, ६६९ ब्रह्मज्ञः,
६७० ब्राह्मणप्रियः ॥

'तपो वेदाश्च विप्राश्च

ज्ञानं च ब्रह्मसंज्ञितम् ।'

तेभ्यो हितत्वात् ब्रह्मण्यः ।

'तप, वेद, ब्राह्मण और ज्ञान-ये सब
ब्रह्म कहलाते हैं' इनके हितकारी होनेसे
भगवान् ब्रह्मण्य हैं ।

तपआदीनां कर्तृत्वात् ब्रह्मकृत् ।

तप आदिके करनेवाले होनेसे ब्रह्मकृत् हैं ।

ब्रह्मात्मना सर्वं सृजतीति ब्रह्मा ।

ब्रह्मारूपसे सबकी रचना करने है, इसलिये ब्रह्मा हैं ।

बृहन्वाद्बृंहणत्वाच्च सत्यादि-
लक्षणं ब्रह्म, 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म'
(तै० उ० २ । १) इति श्रुतेः;

बड़े तथा बढ़ानेवाले होनेसे भगवान् सत्यादि लक्षणविशिष्ट ब्रह्म हैं । श्रुति कहती है—'ब्रह्म सत्य, ज्ञान और अनन्त-रूप है।' विष्णुपुराणमें कहा है—'जो समस्त भेदोंसे रहित, सत्तामात्र, वाणीका अधिपति और स्वसंघेय (स्वयं ही जाननेयोग्य) है उस ज्ञान-का नाम ब्रह्म है ।'

'प्रत्यस्तमितभेदं यत्

सत्तामात्रमगोचरम् ।

वचसामात्मसंघेयं

तज्ज्ञानं ब्रह्मसंज्ञितम्॥'

इति विष्णुपुराणे (६ । ७ । ५३)

तपआदीनां विवर्धनात् ब्रह्म-
विवर्धनः ।

तप आदिको बढ़ानेके कारण ब्रह्मविवर्धन हैं ।

वेदं वेदार्थं च यथावद्वेत्तीति
ब्रह्मवित् ।

वेद तथा वेदके अर्थको यथावत् जानते हैं, इसलिये ब्रह्मवित् हैं ।

ब्राह्मणात्मना समस्तानां
लोकानां प्रवचनं कुर्वन् वेदस्याय-
मिति ब्राह्मणः ।

ब्राह्मणरूपसे समस्त लोकोंके प्रति 'वेदमें यह है' ऐसा उपदेश करते हैं, इसलिये ब्राह्मण हैं ।

ब्रह्मसंज्ञितास्तच्छेषभूता अत्रेति
ब्रह्मो ।

ब्रह्मके शेषभूत [तप, वेद, मन, प्राण आदि] जो ब्रह्म ही कहलाते हैं भगवान्मे ही हैं, इसलिये वे ब्रह्म ही हैं ।

वेदान् स्वात्मभूतान् जानातीति
ब्रह्मज्ञः ।

अपने आत्मभूत वेदोंको जानते हैं, इसलिये ब्रह्मज्ञ हैं ।

ब्राह्मणानां प्रियो ब्राह्मणप्रियः।
ब्राह्मणाः प्रिया अस्येति वा ।

‘घ्नन्तं शपन्तं परुषं वदन्तं

यो ब्राह्मणं न प्रणमंश्चथार्हम् ।

म पापकृद्भयदग्निरदग्धो

वध्यश्च दण्ड्यश्च न चाम्मदीयः॥’

इति भगवद्बचनात् ।

‘यं देवं देवकी देवी

वसुदेवादर्जीजनत् ।

मामस्य ब्रह्मणो गुप्यं

दाममग्निमिवारणिः ॥’

इति च महाभारते (शान्ति०

४७।२०) ॥ ८४ ॥

ब्राह्मणोंके प्रिय होनेसे ब्राह्मणप्रिय हैं । अथवा ब्राह्मण इनके प्रिय हैं, इसलिये ब्राह्मणप्रिय हैं । जैसा कि भगवान् ने कहा है—‘मारते, शपते और कठोर भाषण करते हुए भी ब्राह्मण को जो यथायोग्य प्रणाम नहीं करता वह ब्रह्मवाचानलसे दग्ध पापी मार डालने योग्य और दण्डनीय है; वह मेरा जन नहीं हो सकता ।’ महाभारतमें भी कहा है—‘प्रज्वलित अग्निको जिस प्रकार अरणि प्रकट करती है उसी प्रकार जिस देवको पृथिवीके ब्राह्मणोंकी रक्षाके लिये देवो देवकीने वसुदेवजीसे उत्पन्न किया है’ ॥ ८४ ॥



महाकर्मो महाकर्मा महान्तजा महोरगः ।

महाक्रतुर्महायज्ञा महायज्ञो महाहविः ॥ ८५ ॥

६७१ महाकर्म, ६७२ महाकर्मा, ६७३ महान्तजा, ६७४ महोरगः ।

६७५ महाक्रतुः, ६७६ महायज्ञा, ६७७ महायज्ञो, ६७८ महाहविः ॥

महान्तः क्रमाः पादविक्षेपा
अस्येति महाकर्मः; ‘शं नो विष्णु-
रुरुकमः’ (शुक्ल यजु० ३६।०)
इति श्रुतेः ।

महत् जगदुत्पत्त्यादि कर्मास्येति
महाकर्मा ।

भगवान् का क्रम अर्थात् पादविक्षेप
(डग) महान्त है, इसलिये वे महाकर्म
हैं । श्रुति कहती है—‘उरुकम (बड़ी
डगोंवाले) विष्णु हमें शान्ति दें ।’

उनके जगत्की उत्पत्ति आदि
महान् कर्म हैं, इसलिये वे महाकर्मा हैं ।

यदीयेन तेजसा तेजस्विनो
मास्करादयः तसेजो महदस्येति
महातेजाः, 'येन सूर्यस्तपति तेजसेन्द्रः'
(तै० ब्रा० ३।१२।९।७)
इति श्रुतेः,

'यदादित्यगतं तेजो
जगद्रासयतेऽस्मिन् ।

यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नी
तत्तेजो विद्धि मामकम् ॥'
(गीता १५।१२)

इति भगवद्वचनाच्च । कार्य-
शौर्यादिभिर्धर्मैर्महद्भिः समलङ्कृत
इति वा महातेजाः ।

महांश्वासानुरगश्चेति महोरगः ।
'सर्पाणामस्मि वासुकिः' (गीता १०।
२८) इति भगवद्वचनात् ।

महांश्वासौ क्रतुश्चेति महाक्रतुः,
'यथाश्चमेध' क्रतुराट्' (मनु० ११।
२६०) इति मनुवचनात्; सोऽपि
स एवेति स्तुतिः ।

महांश्वासौ यज्वा चेति लोक-
मंत्रार्थयज्ञान्निर्वर्तयन् महायज्वा ।

महांश्वासौ यज्ञश्चेति महायज्ञः,
'यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि' (गीता १०।२५)
इति भगवद्वचनात् ।

जिनके तेजसे सूर्य आदि तेजस्वी
हो रहे हैं उन भगवान्का वह तेज
महान् है, इसलिये वे महातेजा हैं ।
श्रुति कहती है—'जिस तेजसे प्रज्वलित
होकर सूर्य तपता है।' स्मृति भी कहती
है—'जो तेज सूर्यमें स्थित होकर
सम्पूर्ण जगत्को प्रकाशित करता है
तथा जो चन्द्र और अग्निमें भी है,
उसे मेरा ही जान ।' अथवा भगवान्
कृता, श्रुता आदि महान् गुणोंमें
अलङ्कृत हैं, इसलिये महातेजा हैं ।

वे महान् उरग [अर्थात् वासुकि
सर्पकृप] हैं, इसलिये महोरग हैं ।
भगवान्का यह वचन भी है कि
'सर्पोंमें मैं वासुकि हूँ ।'

जो महान् क्रतु (यज्ञ) है वह
महाक्रतु है जैसा कि मनुजीने कहा
है—'जैसे यज्ञराज अश्वमेध ।' वह भी
वही (भगवान् ही) है, इसलिये इस
नामसे उनकी स्तुति होती है ।

महान् है और लोक-संप्रहके लिये
यज्ञानुष्ठान करनेसे यज्वा भी हैं,
इसलिये महायज्वा हैं ।

महान् हैं और यज्ञ हैं, इसलिये
महायज्ञ हैं; जैसा कि भगवान्ने कहा
है—'यज्ञोंमें मैं जपयज्ञ हूँ ।'

महाश्च तद्विविधेति ब्रह्मात्मनि सर्वं महान् हैं और हवि हैं क्योंकि
जगत्सदात्मतया हूयत इति महाहविः । ब्रह्मात्मामें ही ब्रह्मभावसे सम्पूर्ण जगत्का
महाक्रतुरित्यादयो बहुव्रीहयो हैं । अथवा महाक्रतु आदि नामोंमें
वा ॥ ८५ ॥ [महान् हे क्रतु जिसका आदि
प्रकारसे] बहुव्रीहि समास है ॥ ८५ ॥



स्तव्यः स्तवप्रियः स्तोत्रं स्तुतिः स्तोता रणप्रियः ।

पूर्णः पूरयिता पुण्यः पुण्यकीर्तिरनामयः ॥ ८६ ॥

६७९. स्तव्यः, ६८०. स्तवप्रियः, ६८१. स्तोत्रम्, ६८२. स्तुतिः,
६८३. स्तोता, ६८४. रणप्रियः । ६८५. पूर्णः, ६८६. पूरयिता, ६८७. पुण्यः,
६८८. पुण्यकीर्तिः, ६८९. अनामयः ॥

सर्वैः स्तूयते न स्तोता कस्यचित् सवमे स्तुति किये जाते हैं स्वयं
इति स्तव्यः । किसीकी स्तुति नहीं करते, इसलिये
स्तव्य हैं ।

अत एव स्तवप्रियः ।

और इसी कारणसे स्तवप्रिय हैं ।

येन स्तूयते तत् स्तोत्रम्, गुण-
मकीर्तनात्मकं तद्वरिरेवेति ।

जिसमें स्तुति की जाती है वह
गुण-कीर्तन ही स्तोत्र है । वह भी
श्रीहरि ही हैं ।

स्तुतिः स्तवनक्रिया ।

स्तवन-क्रियाका नाम स्तुति है ।

स्तोता अपि स एव ।

[सर्वरूप होनेके कारण] स्तोता
(स्तुति करनेवाले) भी भगवान् स्वयं
ही हैं ।

प्रियो रणो यस्य यतः पञ्च जिन्हें रण प्रिय है और इसीलिये
महायुधानि धत्ते सततं लोकरक्ष- जो लोक-रक्षाके निमित्त पाँच आयुध*
णार्थमतो रणप्रियः । निरन्तर धारण किये रहते हैं वे
भगवान् रणप्रिय हैं ।

सकलैः कामैः सकलाभिः समस्त कामनाओंसे और सम्पूर्ण
शक्तिभिश्च सम्पन्न इति पूर्णः । शक्तियोंसे सम्पन्न हैं, इसलिये भगवान्
पूर्ण हैं ।

न केवलं पूर्ण एव; पूरयिता च केवल पूर्ण ही नहीं हैं बल्कि
सर्वेषां सम्पद्भिः । सम्पत्तिसे सबके पूरयिता (पूर्ण करने-
वाले) भी हैं ।

स्मृतिमात्रेण कल्मषाणि क्षप- स्मरणमात्रसे पापोंका क्षय कर देते
यतीति पुण्यः । हैं, इसलिये पुण्य है ।

पुण्या कीर्तिरस्य यतः पुण्य- भगवानकी कीर्ति पुण्यमयी है
मावहत्यस्य कीर्तिर्नृणाभिनि क्योंकि वह मनुष्योंको पुण्य प्रदान
पुण्यकीर्तिः । करती है, इसलिये वे पुण्यकीर्ति हैं ।

आन्तरैर्ब्रह्मैर्व्याधिभिः कर्मजैर्न कर्मसे उत्पन्न हुई वाय अथवा
पीडयत इति अनामयः ॥ ८६ ॥ आन्तरिक व्याधियोंसे पीडित नहीं
होते, इसलिये अनामय है ॥ ८६ ॥



मनोजवस्तीर्थकरो वसुरेता वसुप्रदः ।

वसुप्रदो वासुदेवो वसुर्वसुमना हविः ॥ ८७ ॥

६९० मनोजवः, ६९१ तीर्थकरः, ६९२ वसुरेताः, ६९३ वसुप्रदः ।

६९४ वसुप्रदः, ६९५ वासुदेवः, ६९६ वसुः, ६९७ वसुमनाः, ६९८ हविः ॥

* पाञ्चजन्य शङ्ख, सुरसैन शङ्ख, कौमोदकी गदा, शार्ङ्ग धनुष और नन्दक
खट्वा—ये भगवान्के पाँच आयुध हैं ।

मनसो वेग इव वेगोऽस्य सर्व-
गतत्त्वान् मनोजवः ।

चतुर्दशविद्यानां बाह्यविद्या-
समयानां च प्रणेता प्रवक्ता चेति
तीर्थकरः । हयग्रीवरूपेण मधुकैटभौ
हन्वा विरिञ्चाय सर्गादीं सर्वाः
श्रुतीरन्याश्च विद्या उपदिशन् वेद-
बाह्या विद्याः सुरवैरिणां वञ्चनाय
चापदिदेशेति पौगाणिकाः कथ-
यन्ति ।

वसु सुवर्णं गतोऽस्येति वसुगेता ,
'देवः पूर्वमप सृष्ट्वा

तामु वीर्यमपामृजत् ।

तदण्डमभवद्भ्रमं

ब्रह्मणः कारणं परम् ॥'

इति व्यामवचनान् ।

वसु धनं प्रकर्षेण ददाति
साक्षाद्दनाध्यक्षोऽयम्, इतरस्तु
तत्प्रमादाद्दनाध्यक्ष इति वसुप्रदः ।

वसु प्रकृष्टं मोक्षारूपं फलं
भक्तेभ्यः प्रददातीति द्वितीयो

सर्वगत होनेके कारण भगवान्का
मनके वेगके समान वेग है, इसलिये वे
मनोजव हैं ।

[तीर्थ विद्याको कहते हैं] भगवान्
चौदह विद्याओं और वेद-वाप-विद्याओं-
के सिद्धान्तोंके कर्ता तथा वक्ता हैं, इसलिये
वे तीर्थकर हैं । पौगाणिकोंका कथन है
कि भगवान्ने सर्गके आरम्भमें हयग्रीव-
रूपमें मधु और कैटभको मागकर
सम्पूर्ण श्रुतियों और अन्य विद्याएँ
प्रमाजोंको उपदेश करके देव-रात्रुओं-
को वञ्चनाके लिये वेद-वाप विद्याओंका
भी उपदेश किया था ।

वसु अर्थात् सुवर्ण भगवान्का रेतस्
(वीर्य) है, इसलिये वसुगेता है ।
'देवने प्रथम जलको ही रचकर उसमें
वीर्य छोड़ा । वह प्रमा [की उत्पत्ति]
का प्रथम कारण सुवर्णमय भण्डा हो
गया ।' इस व्यामवचनके अनुसार
[भगवान् वसुगेता हैं] ।

भगवान् प्रकर्षसे (खुले हाथमें)
वसु अर्थात् धन देने हैं, इसलिये वे
वसुप्रद हैं क्योंकि साक्षात् धनाध्यक्ष
तो वे ही हैं और (कुबेरादि) तो उनकी
कृपासे ही धनाध्यक्ष हैं ।

भक्तोंको वसु अर्थात् मोक्षरूप
उत्कृष्ट फल देने हैं—ऐसा दूसरे

वसुप्रदः, 'विज्ञानमानन्दं ब्रह्म रातिर्दातुः
परायणं तिष्ठमानस्य तद्विदः' इति
श्रुतं; (बृ० उ० ३।१।२८)
सुरारीणां वसूनि प्रकर्षेण खण्डयन्
वा वसुप्रदः ।

वसुदेवस्यापत्यं वासुदेवः ।

वसन्ति भूतानि तत्र, तेष्व-
यमपि वसतीति वसुः ।

अविशेषेण सर्वेषु विषयेषु
वसतीति वसु, तादृशं मनोऽस्येति
वसुमनाः ।

'ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविः' (गीता
४।२४) इति भगवद्वचनात्
हविः ॥८७॥

वसुप्रद का तात्पर्य है । श्रुति कहती
है—'ब्रह्म विज्ञान और आनन्दस्वरूप
है, वह धन देनेवाले [कर्मपरायण
ब्रह्मानी] तथा ब्रह्ममें स्थित ज्ञानी-
का भो परायण है ।' अथवा देव-
शत्रुओके वसु (धन) का अधिकतर
खण्डन करते हैं, इसलिये वसुप्रद हैं ।
वसुदेवजीके पुत्र होनेसे वासुदेव
हैं ।

भगवान्मे सब भूत ब्रमते हैं अथवा
सब भूतोंमें भगवान् ब्रमते हैं, इसलिये
वे वसु हैं ।

जो समस्त पदार्थोंमें सामान्य भाव-
से वसता है उसे वसु कहते हैं, इस
प्रकारका भगवान्का मन है, इसलिये
वे वसुमना है ।

'ब्रह्मको अर्पण किया जाता है, ब्रह्म
ही हवि है' भगवान्के इस वचनानुसार
वे हवि हैं ॥८७॥



सद्गतिः सत्कृतिः सत्ता सद्भूतिः सत्परायणः ।

शूरसेनो यदुश्रेष्ठः सन्निवासः सुयामुनः ॥८८॥

६९९ सद्गतिः, ७०० सत्कृतिः, ७०१ सत्ता, ७०२ सद्भूतिः,
७०३ सत्परायण । ७०४ शूरसेनः, ७०५ यदुश्रेष्ठः, ७०६ सन्निवासः,
७०७ सुयामुनः ॥

‘अस्ति प्रकृति चेद्वेद

सन्तमेनं ततो विदुः ।’

(सं० उ० २।६)

इति श्रुतेः, ब्रह्मास्तीति ये विदुस्ते
सन्तः, तैः प्राप्यत इति सद्रतिः;
सती गतिर्बुद्धिः समुत्कृष्टा अस्याति
वा सद्रतिः ।

सती कृतिः जगद्रक्षणलक्षणा
अस्य यस्मात्तेन सत्कृतिः ।

इति नाम्नां समं शतं विवृतम् ।

मजानीयविजातीयस्वगतभेद-
रहिता अनुभूतिः सत्ता, ‘एकमेवा-
द्वितीयम्’ (छा० उ० ६।२।१)
इति श्रुतेः ।

सत्त्वेव परमान्मा चिदात्मकः
अबाधात् भासमानत्वाच्च सद्भूतिः;
नान्यः, प्रतीतेर्बाध्यमानत्वाच्च
न सन्नाप्यसत् । श्रौतां यौक्तिकी
वा बाधः प्रपञ्चस्य विवक्षितः ।

सतां तत्त्वविदां परं प्रकृष्ट-
मयनमिति सत्परायणम् ।

हनूमत्प्रमुखाः सैनिकाः शौर्य-
शालिनो यस्यां सेनायां सा
शूरसेना यस्य स शूरसेनः ।

‘ब्रह्म है—ऐसा यदि जानता तो
[विद्वज्जन] उसे सम्म मानते हैं’ इस
श्रुतिके अनुसार जो ऐसा जानते हैं कि
ब्रह्म है—वे सन्त हैं; उनसे प्राप्त किये
जाते हैं, इसलिये भगवान् सद्रति है ।
अथवा उनकी गति यानी बुद्धि श्रेष्ठ है,
इसलिये वे सद्रति हैं ।

जगत्की उत्पत्ति आदि भगवान्की
कृति श्रेष्ठ है, इसलिये वे सत्कृति हैं ।

यज्ञांतक सहस्रनामके सातवें
शतकका विवरण हुआ ।

मजानीय, विजानीय और स्वगत-
भेदसे रहित अनुभूतिका नाम सत्ता
है । श्रुति कहती है—‘एक ही
अद्वितीय था ।’

वे चिदात्मक सत्त्वरूप परमात्मा
ही अबाधित तथा बहुत प्रकारसे भासित
होनेके कारण सद्भूति हैं और कोई
नहीं । प्रतीतिके बाधित होनेसे अन्य सत्
या असत् कुछ भी नहीं है, यहाँ श्रुति या
युक्तिके प्रपञ्चका बाध ही विवक्षित है ।

तत्त्वदर्शी सत्पुरुषोंके परम—श्रेष्ठ
अपन (स्थान) हैं, इसलिये सत्परायण
हैं ।

जिस सेनामें हनुमान् आदि शूरवीर
सैनिक हैं वह शूरसेना जिनकी है वे
भगवान् शूरसेन हैं ।

यद्नां प्रधानत्वात् यदुश्रेष्ठः ।

यद्वंशियोमें प्रधान होनेके कारण
भगवान् यदुश्रेष्ठ हैं ।

सतां विदुषामाश्रयः सन्निवामः ।

सत् अर्थात् विद्वानोंके आश्रय हैं,
इसलिये सन्निवास हैं ।

शोभना यामुना यमुनासम्ब-
न्धिनो देवकीवसुदेवनन्दयशोदा-
बलभद्रसुभद्रादयः परिवेष्टारो-
ऽस्येति सुयामुनः; गोपवेषधरा
यामुनाः परिवेष्टारः पद्मासनादयः
शोभना अस्येति वा सुयामुनः॥८८॥

जिनके यामुन अर्थात् यमुना-सम्बन्धी
देवकी, वसुदेव, नन्द, यशोदा, बलभद्र
और सुभद्रा आदि परिवेष्टा सुन्दर हैं वे
भगवान् सुयामुन हैं अथवा जिनके
यमुनातटवर्ती गोपवेषधारी परिवेष्टा
या पद्म एवं आसन आदि सुन्दर हैं
वे भगवान् सुयामुन हैं ॥८८॥



भूतावासो वासुदेवः सर्वामुनिलयोऽनलः ।

दर्पहा दर्पदो दृप्तो दुर्धरोऽथापराजितः ॥ ८९ ॥

७०८ भूतावासः, ७०९ वासुदेवः, ७१० सर्वामुनिलयः, ७११ अनलः ।

७१२ दर्पहा, ७१३ दर्पदः, ७१४ दृप्तः, ७१५ दुर्धरः, अप, ७१६ अपराजितः ॥

भूतान्यत्राभिमुख्येन वसन्तीति
भूतावामः,

भगवान्मे सर्वभूत मुख्यरूपसे
निवास करते हैं, इसलिये वे भूतावास

'वसन्ति त्वयि भूतानि

भूतावामस्तानो भवान् ।'

(३ । ८८ । ५३)

हैं । हरिवंशमें कहा है—'आपमें भूत
वसते हैं, इसलिये आप भूतावास हैं ।'

इति हरिवंशे ।

जगदाच्छादयति माययेति

जगत्को मायासे आच्छादित करते
हैं, इसलिये वासु हैं और वे (वासु)
ही देव भी हैं, इसलिये वासुदेव हैं ।

वासुः, स एव देव इति वासुदेवः;

'धादयामि जगद्विश्वं
भूया सूर्य इवांशुभिः ।'
(महा० शक्ति० १४१ । ४१)
इति भगवद्वचनात् ।

सर्वे एवामवः प्राणा जीवात्मके
यस्मिन्नाश्रये निलीयन्ते म सर्वामु-
निलयः ।

अलम्पर्याप्तिः शक्तिसम्पदां
नाम्य विद्यत इति अनलः ।

धर्मविरुद्धे पथि निष्ठानां दर्पं
हन्तीति दर्पहा ।

धर्मवर्त्मनि वर्तमानानां दर्पं
ददातीति दर्पदः ।

स्वात्माभूतसाम्बादनान् नित्य-
प्रमुदिनो दत्तः ।

न शक्या धारणा यस्य प्रणि-
धानादिषु सर्वोपाधिविनिर्मुक्त-
त्वात्, तथापि तत्प्रमादतः कश्चिदु-
दुःखेन धार्यते हृदये जन्मान्तर-
सहस्रेषु भावनायोगात्, तस्माद्
दुर्धरः ।

भगवान्का वचन है—'सूर्य जैसे
किरणोंसे ढँकता है उसी प्रकार मैं
सम्पूर्ण जगत्को अपनी विभूतिसे
ढँक लेता हूँ ।'

सम्पूर्ण अमु अर्थात् प्राण जिस
जीवरूप आश्रयमें लीन हो जाते हैं
वह सर्वासुनिलय है ।

भगवान्की शक्ति और सम्पत्तिका
अलं अर्थात् समाप्ति नहीं है, इसलिये
वे अनल है ।

धर्मविरुद्ध मार्गमें रहनेवालोंको दर्प
नष्ट करते हैं, इसलिये दर्पहा है ।

धर्म मार्गमें रहनेवालोंको दर्प अर्थात्
गर्व (गौरव) देने हैं, इसलिये दर्पद
है ।*

अपने आमारूप अमृतसत्ता
आस्वादन करनेके कारण नित्य प्रमुदिन
रहते हैं, इसलिये दत्त है ।

समस्त उपाधियोंसे रहित होनेके
कारण जिनकी प्रणिधान आदिमें
धारणा नहीं की जा सकती, फिर भी
उन भगवान्के ही प्रसादसे कोई-कोई
हजारों जन्मोंका भावनाके योगसे उन्हें
अपने हृदयमें बड़ी कठिनतासे धारण
करते हैं, इसलिये वे दुर्धर हैं ।

* 'दर्प घाते' इस विग्रहके अनुसार दर्पका दहन करनेवाले हैं, इसलिये भी
दर्पद है ।

‘क्लेशोऽधिकतरस्तेषा-

मव्यक्तासक्तचेतसाम् ।

अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं

देहवद्विरवाप्यते ॥’

(गीता १२।५)

भगवान्ने कहा है—‘अव्यक्तमें मा

लगानेवालोंको अधिक क्लेश होता है

देहधारियोंको अव्यक्त गति कठिनता

से प्राप्त होती है ।’

इति भगवद्वचनात् ।

न आन्तरैः रागादिभिर्बाह्यैरपि

दानवादिभिः शत्रुभिः पराजित

इति अपराजितः ॥ ८९ ॥

रागादि आन्तरिक शत्रुओंसे और

बाह्य दानवादि शत्रुओंसे पराजित नहीं

होते, इसलिये अपराजित हैं ॥ ८९ ॥



विश्वमूर्तिर्महामूर्तिर्दीप्तमूर्तिरमूर्तिमान् ।

अनेकमूर्तिरव्यक्तः शतमूर्तिः शताननः ॥ ९० ॥

७१७ विश्वमूर्तिः, ७१८ महामूर्तिः, ७१९ दीप्तमूर्तिः, ७२० अमूर्तिमान् ।

७२१ अनेकमूर्तिः, ७२२ अव्यक्तः, ७२३ शतमूर्ति, ७२४ शताननः ॥

विश्वं मूर्तिरस्य सर्वात्मकत्वात्

इति विश्वमूर्तिः ।

सर्वात्मक होनेके कारण विश्व

भगवान्की मूर्ति है, इसलिये वे

विश्वमूर्ति है ।

शेषपर्यङ्कशायिनोऽस्य महती

मूर्तिरिति महामूर्तिः ।

शेषशय्यापर शयन करनेवाले

भगवान्की मूर्ति महती (बड़ी) है,

इसलिये वे महामूर्ति हैं ।

दीप्ता ज्ञानमयी मूर्तिर्यस्येति,

स्वेच्छया गृहीता तैजसी मूर्ति-

दीप्ता अस्पृष्टेति वा दीप्तमूर्तिः ।

भगवान्की ज्ञानमयी मूर्ति दीप्त

है, इसलिये अथवा उनकी स्वेच्छासे

धारण की हुई तैजसी [हिरण्य-

गमरूप] मूर्ति दीप्तिमयी है, इसलिये

वे दीप्तमूर्ति हैं ।

कर्मनिबन्धना मूर्तिरस्य न

बिधत इति अमूर्तिमान् ।

उनकी कोई कर्मजन्य मूर्ति नहीं

है, इसलिये वे अमूर्तिमान् हैं ।

अवतारेषु स्वेच्छया लोकाना-
मुपकारिणीर्बह्वीर्मूर्तिर्मज्जत इति
अनेकमूर्तिः ।

यद्यप्यनेकमूर्तित्वमस्य, तथा-
प्ययमीदृश एवेति न व्यज्यत
इति अन्यक्तः ।

नानाविकल्पजा मूर्तयः संवि-
दाकृतेः सन्तीति ज्ञानमूर्तिः ।

विश्वादिमूर्तित्वं यतोऽत एव
ज्ञानान्नः ॥ ९० ॥

अवतारोंमें अपनी इच्छासे लोकों-
का उपकार करनेवाली अनेकों मूर्तियाँ
धारण करते हैं, इसलिये अनेकमूर्ति हैं ।

यद्यपि अनेक मूर्तिवाले हैं तो भी
'ये ऐसे हैं'—इस प्रकार व्यक्त नहीं
होते, इसलिये अन्यक्त हैं ।

ज्ञानस्वरूप भगवान्की विकल्पजन्य
अनेक मूर्तियाँ हैं, इसलिये वे शतमूर्ति हैं ।

क्योंकि वे विश्व आदि मूर्तियोंवाले
हैं; इसलिये शतान्न (सैकड़ों मुख-
वाले) हैं ॥ ९० ॥

एको नैकः सवः कः किं यत्तत्पदमनुत्तमम् ।

लोकबन्धुलोकनाथो माधवो भक्तवत्सलः ॥ ९१ ॥

७२५ एकः, ७२६ नैकः, ७२७ सवः, ७२८ कः, ७२९ किम्, ७३०
यत्, ७३१ तत्, ७३२ पदमनुत्तमम् । ७३३ लोकबन्धु, ७३४ लोकनाथः,
७३५ माधवः, ७३६ भक्तवत्सलः ॥

परमार्थतः सजातीयविजातीय-
स्वगतमेदविनिर्मुक्तत्वात् एकः,
'एकमेवाद्वितीयम्' (छा० उ० ६।
२। १) इति श्रुतेः ।

मायया बहुरूपत्वात् नैकः,
'इन्द्रो मायामिः पुरुरूप ईयते' (वृ०
उ० २। ५। १९) इति श्रुतेः ।

सोमो यत्रामिषूयते सांऽध्वरः
सवः ।

परमार्थमे सजातीय, विजातीय और
स्वगत-भेदोंसे शून्य होनेके कारण
परमात्मा एक हैं; जैसा कि श्रुति
कहती है—'एक ही अद्वितीय था ।'

मायासे अनेक रूप होनेके कारण
नैक है । श्रुति कहती है—'इन्द्र (ईश्वर)
मायासे अनेक रूप प्रतीत होता है ।'

त्रिसमे सोम निकाला जाता है उस
पञ्चको सव कहते हैं ।

कशब्दः सुखवाचकः, तेन
स्नूयत इति कः, 'कं ब्रह्म' (छा०
उ० ४।१०।५) इति श्रुतेः ।

मय्यपुरुषार्थरूपत्वाद्ब्रह्मैव विचा-
र्यमिति ब्रह्म किम् ।

यच्छब्देन स्वतःसिद्धवस्तुदेश-
वाचिना ब्रह्म निर्दिश्यत इति ब्रह्म
यत्, 'यतो ना इमानि भूतानि जायन्ते'
(तै० उ० ३।१) इति श्रुतेः ।

तनोतीति ब्रह्म तन,
'ॐ तत्सदिति निर्देशो
ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः ।'
(गीता १०।२३)
इति भगवद्वचनात् ।

पद्यते गम्यते सुसुक्षुमिरिति
पदम् । यस्मादुत्कृष्टं नास्ति तन
अनुत्तमम् । मविशेषणमेकं नाम
पदमनुत्तमम् इति ।

आधारभूतंऽसिन्मकला लोका
बन्ध्यन्त इति लोकानां
बन्धुः लोकबन्धुः; लोकानां
जनकत्वाजनकोपमो बन्धुर्नास्तीति
वा, लोकानां बन्धुकृत्यं

क शब्द सुखका वाचक है, सुख-
रूपसे स्तुति किये जानेके कारण
परमात्मा क है; जैसा कि श्रुति कहती
है—'सुख ब्रह्म है ।'

मय्यपुरुषार्थरूप होनेसे ब्रह्म ही
विचार करने योग्य हैं, इसलिये वह
किम् है ।

स्वतःसिद्धवस्तुके वाचकयत् शब्द-
ने ब्रह्मका निर्देश होता है, इसलिये
ब्रह्म यत् है । श्रुति कहती है—
'जिसमे ये सब भूत उत्पन्न होते हैं ।'

ब्रह्म तनन अर्थात् विस्तार करना
है, इसलिये वह तत् है । भगवानने
कहा है—'ॐ, तत् और सत्-ये तीन
नाम ब्रह्मके कहे गये हैं ।'

सुसुक्षुमोद्वारा प्राप्त किया जाता है
इसलिये [ब्रह्म] पद है, क्योंकि उसमे
बढ़कर श्रेष्ठ कोई और नहीं है इसलिये
वह अनुत्तम है । इस प्रकार पदमनुत्त-
मम् यह विशेषणसहित एक नाम है ।

आधारभूत परमात्मामे सब लोक
बंधे रहने हैं, इसलिये लोकोंके बन्धु
होनेसे भगवान् लोकबन्धु हैं । अथवा
लोकोंके जनक होनेके कारण लोकबन्धु
हैं क्योंकि पिताके समान कोई
बन्धु नहीं होता, या बन्धुओंका कर्म

हिताहितोपदेशं श्रुतिस्मृतिलक्षणं श्रुति-स्मृतिरूप हिताहितोपदेश किया
कृतवानिति वा लोकबन्धुः । है, इसलिये लोकबन्धु हैं ।

लोकैर्नाथ्यते यान्यते लोकानु- भगवान् लोकांसे याचना किये
पतपति आशास्ते लोकानामीष्ट इति जाने हैं अथवा उनका नियमन, आशा-
वा लोकनाथ । मन या शासन करने हैं, इसलिये
लोकनाथ है ।

मधुकुले जातवान् माधव । मधुवंशमे उत्पन्न होनेके कारण
भगवान् माधव हैं ।

भक्तस्नेहवान् भक्तवत्सलः ॥९१॥ भक्तोंके प्रति स्नेहयुक्त होनेसे
भक्तवत्सल है ॥९१॥

सुवर्णवर्णां हेमाङ्गो वराङ्गश्चन्दनाङ्गदी ।

वीरहा विषमः शून्यो घृताशीरचलश्चलः ॥९२॥

७३७ सुवर्णवर्ण, ७३८ हेमाङ्ग, ७३९ वराङ्ग, ७४० चन्दनाङ्गदी ।
७४१ वीरहा, ७४२ विषम, ७४३ शून्यः, ७४४ घृताशीः, ७४५ अचलः,
७४६ चर ॥

सुवर्णस्यैव वर्णोऽस्येति सुवर्णवर्ण, भगवानका वर्ण सुवर्णके समान
'यदा पश्यः पश्यते रुक्मवर्णम्' (मु० है, इसलिये वे सुवर्णवर्ण हैं । श्रुति
उ० ३ । १ । ३) इति श्रुतेः । कहती है—'अब द्रष्टा सुवर्णके-से
वर्णवालेको देखता है ।'

हेमेवाङ्गं वपुरस्येति हेमाङ्गः, 'य उनका शरीर हेम (सुवर्ण) के
एषोऽन्तरादिव्ये हिरण्यमयः पुरुषः' समान है, इसलिये वे हेमाङ्ग हैं । श्रुति
(ला० उ० १ । ६ । ६) इति श्रुतेः । कहती है—'यह जो आदित्यके भीतर
सुवर्णमय पुरुष है ।'

वराणि शोभनान्यङ्गान्यस्येति उनके अङ्ग वर अर्थात् सुन्दर हैं,
वराङ्गः । इसलिये वे वराङ्ग हैं ।

चन्दनैराह्लादनैरङ्गदैः केयूरैर्भू-
षित इति चन्दनाङ्गदी ।

धर्मत्राणाय वीरान् असुरमुख्यान्
हन्तीति वीरहा ।

समो नास्य विद्यते सर्व-
विलक्षणत्वादिति विषमः,
'न त्वत्समोऽस्म्यन्यधिकः कुतोऽन्य'
(गीता ११ । २३)
इति भगवद्भचनात् ।

सर्वविशेषरहितत्वात् शून्यवत्
गन्धः ।

घृता विगलिता आशिषः
प्रार्थना अम्भेति घृताशीः ।

न स्वरूपाश्च सामर्थ्याश्च च
ज्ञानादिकाद्युगुणात् चलनं विद्यते-
ऽस्येति अचलः ।

वायुरूपेण चलतीति चलः ॥९२॥

आह्लादित करनेवाले चन्दनों और
अङ्गदों अर्थात् मुज्रबन्धोंसे विभूषित हैं,
इसलिये चन्दनाङ्गदी हैं ।

धर्मकी रक्षाके लिये [हिरण्यकशिपु
आदि] प्रमुख दैत्यवीरोक्त हनन करते
हैं, इसलिये वीरहा हैं ।

सबसे विशुद्ध होनेके कारण
भगवान् के समान कोई नहीं है, इसलिये
वे विषम हैं । गीतामें कहा है—
'तुम्हारे समान ही कोई नहीं है फिर
अधिक तो हो ही कहाँसे ?' ।

समस्त विशेषोंमें रहित होनेके कारण
भगवान् गन्धके समान शून्य है ।

भगवान् की आशिष् अर्थात्
प्रार्थनाएँ घृत यानाँ विगलित हैं, इसलिये
वे घृताशी हैं ।

स्वरूपसे, सामर्थ्यमें अथवा ज्ञानादि
गुणोंसे विचलित नहीं होते, इसलिये
वे अचल हैं ।

वायुरूपमें चलते हैं, इसलिये चल
हैं ॥९२॥



अमानो मानदो मान्यो लोकस्वामी त्रिलोकधृक् ।

सुमेधा मेधजो धन्यः सत्यमेधा धराधरः ॥९३॥

७४७ अमानी, ७४८ मानदः, ७४९ मान्यः, ७५० लोकस्वामी, ७५१ त्रिलोकधृक् । ७५२ सुमेधाः, ७५३ मेधजः, ७५४ धन्यः, ७५५ सत्यमेधाः, ७५६ भ्रशधरः ॥

अनात्मवस्तुष्वात्माभिमानो ना-
स्त्यस्या स्वच्छमवेदनाकृतेरिति
अमानी ।

स्वमायया सर्वेषामनात्मस्वात्मा-
भिमानं ददाति, भक्तानां सत्कारं
मानं ददातीति, तन्वविदामनात्म-
स्वात्माभिमानं खण्डयतीति वा
मानदः ।

सर्वैर्माननीयः पूजनीयः सर्वे-
श्वरत्वादिति मान्यः ।

चतुर्दशानां लोकानामीश्वर-
त्वात् लोकस्वामी ।

त्रीन् लोकान् धारयतीति
त्रिलोकधृक् ।

शोभना मेधा प्रज्ञास्येति
सुमेधा । 'नित्यमसिचप्रज्ञामेधयोः'
(पा० म० ५ । ४ । १२२) इति
समासान्तोऽसिच् ।

मेधेऽध्वरे जायत इति मेधजः ।

कृतार्थो धन्यः ।

शुद्धज्ञानस्वरूपभगवान्को अनात्म-
वस्तुओंमें आत्माभिमान नहीं है, इसलिये
वे अमानी हैं ।

अपनी मायामें सबको अनात्मामें
आत्माभिमान देने है, भक्तोंको आदर
—मान देने हैं, अथवा तत्त्ववेत्ताओंके
अनात्मवस्तुओंमें आत्माभिमानका
खण्डन करने हैं, इसलिये मानद हैं ।

सबके ईश्वर होनेमें सबके मान-
नीय—पूजनीय हैं, इसलिये मान्य हैं ।

चौदहों लोकोंके स्वामी होनेसे
लोकस्वामी है ।

तीनों लोकोंको धारण करते हैं,
इसलिये त्रिलोकधृक् हैं ।

भगवान्की मेधा अर्थात् प्रज्ञा
सुन्दर है, इसलिये वे सुमेधा हैं ।
'नित्यमसिचप्रज्ञामेधयोः ।' इस
सूत्रसे यहाँ समासान्त असिच्प्रत्यय
हुआ है ।

मेध अर्थात् यज्ञमें उपन (प्रकट)
होते हैं, इसलिये मेधज हैं ।

कृतार्थ होनेसे धन्य हैं ।

सत्या अवितथा मेधा अस्प्येति ।
सत्यमेधाः ।

भगवान्की मेधा सत्य अर्थात् अमोघ
है, इसलिये वे सत्यमेधा हैं ।

अंशैरशेषैः शेषाद्यैरशेषां धरां
धारयन् धराधरः ॥९३॥

अंश आदि अपने सम्पूर्ण अंशोंमें
पृथिवीको धारण करने हैं, इसलिये
धराधर है ॥९३॥

तेजोवृषो द्युतिधरः सर्वशस्त्रभृतां वरः ।

प्रग्रहो निग्रहो व्यग्रो नैकशृङ्गो गदाग्रजः ॥९४॥

७५७ तेजोवृषः, ७५८ द्युतिधरः, ७५९ सर्वशस्त्रभृता वरः । ७६० प्रग्रहः,
७६१ निग्रहः, ७६२ व्यग्रः, ७६३ नैकशृङ्गः, ७६४ गदाग्रजः ॥

तेजमामम्भमां सर्वदा आदित्य-
रूपेण वर्षणान् तेजोवृषः ।

आदित्यरूपमें सदा तेज अर्थात् जल-
की वर्षा करते हैं, इसलिये तेजोवृष है ।

द्युतिमङ्गलतां कान्ति धारयन्
द्युतिधरः ।

द्युति अर्थात् देहगत कान्तिको
धारण करनेके कारण द्युतिधर है ।

सर्वशस्त्रभृतां श्रेष्ठः सर्वशस्त्रभृता
वरः ।

समस्त शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ होनेके
कारण सर्वशस्त्रभृता वर है ।

भक्तेरुपहतं पत्रपुष्पादिकं
प्रगृह्णातीति प्रग्रहः; धावतो विषया-
रथ्ये दुर्दान्तेन्द्रियवाजिनः तत्प्रमा-
देन रश्मिनेव बध्नातीति वा प्रग्रहवत्
प्रग्रहः; 'रश्मी च' (पा० नू० ३।३।

भक्तोद्देश समर्पित किये हुए पत्र-
पुष्पादि ग्रहण करते हैं, इसलिये प्रग्रह
है । अथवा विषयरूपी वनमें दौड़ते
हुए इन्द्रियरूपी दुर्दृश्य घोड़ोंको
रस्मीके समान अपनी कृपासे बाँध
लेते हैं, इसलिये प्रग्रह (रस्मी)
के सदृश प्रग्रह हैं । 'रश्मी च'

५३) इति पाणिनिवचनात् प्रग्रहः । इस पाणिनिजीके वचनानुसार प्रग्रह* शब्दस्य साधुत्वम् । शब्द सिद्ध होता है ।

स्ववशेन सर्वं निगृह्णातीति । अपने अधीन करके सबका निग्रह करने है, इसलिये निग्रह है ।

विगतमग्रमन्तो विनाशोऽस्येति । उनका अग्र-अन्त यानी नाश नहीं व्यग्रः भक्तानामभीष्टप्रदानेषु व्यग्र है, इसलिये ये व्यग्र हैं । अथवा भक्तोंको इच्छित फल देनेमें लगे हुए हैं, इसलिये व्यग्र हैं ।

चतुःशृङ्गो नैकशृङ्गः । चतुःशृङ्ग (चार सींगवाले) होनेके 'चत्वारि शृङ्गा त्रयोऽस्य पादा' कारण नैकशृङ्ग है । श्रुति कहती है-- 'जिसके चार सींग, तीन पाद, दो शिर और सात हाथ हैं वह तीन स्थानोंमें बैधा हुआ वृषभरूप महान् देव शङ्क करता है और मनुष्योंमें प्रवेश किये हुए है ।'†

इति मन्त्रवर्णान् ।

निगदेन मन्त्रेणाग्रे जायत इति । निगद अर्थात् मन्त्रसे पहले ही प्रकट होते हैं, इसलिये नि शब्दका लोप करके गदाग्रज कहलाने हैं । अथवा गद श्रीवासुदेवजीके ओठों भाईका नाम है उससे पहले उत्पन्न होनेके कारण गदाग्रज हैं ॥९४॥

* 'रश्मौ च' इस सूत्रसे रश्मि (रश्मा तथा किरण) अर्थमें प्रपूर्वक ग्रह धानुसे वैकल्पिक अणु प्रत्यय होता है तो प्रगाह रूप बनता है; और घण्टेके अभावमें 'प्रवृत्तिभिर्गमग्र' (३ । ३ । ५८) सूत्रसे अणु प्रत्यय करके प्रग्रह बनता है ।

† दशकरण महाभाष्यके प्रथम आह्निकमें सवशानुशासनका प्रयोगन बतलाते हुए महर्षिपतञ्जलिजाने इस भूतिकों शब्दबलका प्रतिपादिका माना है; सो इस प्रकार

चतुर्मूर्तिश्चतुर्बाहुश्चतुर्व्यूहश्चतुर्गतिः ।

चतुरात्मा चतुर्भावश्चतुर्वेदविदेकपात् ॥ ६५ ॥

७६५ चतुर्मूर्तिः, ७६६ चतुर्बाहुः, ७६७ चतुर्व्यूहः, ७६८ चतुर्गतिः ।

७६९. चतुरात्मा, ७७० चतुर्भावः, ७७१ चतुर्वेदवित्, ७७२ एकपात् ॥

चतस्रो मूर्तयो विराट्मूत्राव्या- विराट्, मूत्रात्मा, अव्याकृत और
कृततुरीयात्मानोऽस्येति चतुर्मूर्तिः तुरीयव्यप भगवान्की चार मूर्तियाँ हैं,
इसलिये वे चतुर्मूर्ति हैं । अथवा
मिता रक्ता पीता कृष्णा चेति उनकी रंग-रक्त, पीत और कृष्ण ये
चतस्रो मूर्तयोऽस्येति वा । चार [समुण] मूर्तियाँ हैं, इसलिये
चतुर्मूर्ति हैं ।

चत्वारो बाहवोऽस्येति चतुर्बाहुः भगवान्की चार भुजाएँ हैं । इसलिये
इति नाम वासुदेवे रुद्रम् । वे चतुर्बाहु हैं । यह नाम श्रीवासुदेवमें
रुद्र है ।

‘शरीरपुरुषरुद्रः पुरुषो वेदपुरुषो बह्वृचोपनिषद्मे कहे हुए ‘शरीर-
महापुरुष’ (पे० आ० ३ । ४ । २) पुरुष, रुद्रः पुरुष, वेदपुरुष और
इति बह्वृचोपनिषदुक्ताश्चत्वारः महापुरुष’—ये चार पुरुष भगवान्के
पुरुषा व्यूहा अस्येति चतुर्व्यूहः । व्यूह हैं, इसलिये वे चतुर्व्यूह हैं ।*

आश्रमाणां वर्णानां चतुर्णां विधिके अनुसार चरनेवाले चार
यथोक्तकारिणां गतिः चतुर्गतिः । आश्रम और चार वर्णोंकी गति हैं,
इसलिये भगवान् चतुर्गति हैं ।

हे—इस [वृषभरूपा शब्द-ब्रह्म] के चार सींग [ज्ञान, आत्मघात, उपसर्ग और
निपात] हैं, तीन पैर [भूत, अविषय तथा वर्तमान काल] हैं, [निम्न और
कार्यरूप शब्द हैं] दो शिर तथा [सातों विभक्तिरूप] सात हाथ हैं । यह [इन्द्र,
कण्ठ और शिररूप] तीन स्थानोंमें बैठा हुआ [कामनाओंका वर्षण करनेसे]
वृषभरूप महान् देव शब्द करता है और मनुष्योंमें प्रवेश किये हुए है ।

ॐ वैष्णव-सम्प्रदायोंमें वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध—ये चार
भगवान्के व्यूह माने गये हैं, इसलिये भी भगवान् चतुर्व्यूह हैं ।

रागद्वेषादिरहितत्वात् चतुर
आत्मा मनोज्ञस्येति, मनोबुद्धय-
हङ्कारचित्ताख्यान्तःकरणचतुष्टया-
न्मकत्वाद्वा चतुरात्मा ।

धर्मार्थकाममोक्षाख्यपुरुषार्थचतु-
ष्टयं भवत्युत्पद्यते अस्मादिति
चतुर्भाष्यः ।

यथावद्वेत्ति चतुर्णां वेदानामर्थ-
मिति चतुर्वेदवित् ।

एकः पादोऽस्येति एकपात् :
'पादोऽस्य विश्वा भूतानि' (पु० म० ३)
इति श्रुतेः,

'विष्टभ्याहमिदं कृत्वा-

मेकाशेन स्थितो जगत् ॥'

(गाता १० । ४२)

इति भगवद्वचनाच्च ॥ ९५ ॥

रागद्वेषादिसे रहित होनेके कारण
भगवान्का आत्मा-मन चतुर है,
इसलिये अपवा मन, बुद्धि, अहंकार और
चित्त नामक चार अन्तःकरणोंसे युक्त
है, इसलिये भगवान् चतुरात्मा है ।

धर्म, अर्थ काम और मोक्ष-ये चार
पुरुषार्थ भगवान्से प्रकट होते अर्थात्
उत्पन्न होते हैं, इसलिये वे चतुर्भाष्य हैं ।

चारों वेदोंके अर्थको ठीक-ठीक
जानते हैं, इसलिये परमात्मा चतुर्वेद-
वित् हैं ।

भगवान्का एक ही पाद [विश्व-
रूपसे स्थित] है, इसलिये वे एकपात्
हैं । श्रुति कहती है—'सम्पूर्ण भूत
इसके एक पाद हैं ।' भगवान्का भी
वचन है—'मैं अपने एक ही अंशसे इस
सम्पूर्ण जगत्को व्याप्त करके स्थित
हूँ ॥ ९५ ॥



समावर्तोऽनिवृत्तात्मा दुर्जयो दुरतिक्रमः ।

दुर्लभो दुर्गमो दुर्गो दुरावासो दुरारिहा ॥ ९६ ॥

७७३ समावर्तः, ७७४ अनिवृत्तात्मा, [निवृत्तात्मा], ७७५ दुर्जयः,
७७६ दुरतिक्रमः । ७७७ दुर्लभः, ७७८ दुर्गमः, ७७९ दुर्गः, ७८० दुरावासः,
७८१ दुरारिहा ॥

संसारचक्रस्य सम्यगावर्तक इति
समावर्तः ।

सर्वत्र वर्तमानत्वात् न निवृत्त
आत्मा कुतोऽपीति अनिवृत्तात्मा,
निवृत्त आत्मा मनो विषये-
भ्योऽस्येति वा निवृत्तात्मा ।

जेतुं न शक्यत इति दुर्जयः ।

भयहेतुत्वादस्याङ्गां सूर्यादयो
नातिक्रामन्तीति दुरतिक्रमः ।

‘भयादस्याग्निस्तपति

भयात्तपति सूर्यः ।

भयादिन्द्रश्च वायुश्च

मृत्युर्भावति पञ्चमः ॥’

(क० उ० २ । ६ । ३)

इति मन्त्रवर्णान्, ‘महद्भयं वज्रमुद्य-
तम्’ (क० उ० २ । ६ । २)

इति च ।

दुर्लभया भक्त्या लभ्यत्वात्
दुर्लभः ।

‘जन्मान्तरसहस्रेषु

तपोज्ञानममाधिभिः ।

नराणां क्षीणपापानां

कृष्णे भक्तिः प्रजायते ॥’

संसार-चक्रको भरी प्रकार घुमाने-
वाले हैं, इसलिये समावर्त हैं ।

सर्वत्र वर्तमान होनेके कारण
भगवान्का आत्मा (शरीर) कहींमें
भी निवृत्त नहीं है, इसलिये वे
अनिवृत्तात्मा हैं । अथवा उनका
आत्मा याना मन विषयोंसे निवृत्त है,
इसलिये वे निवृत्तात्मा हैं ।

किसीमें जीने नहीं जा सकते,
इसलिये दुर्जय है ।

भयके हेतु होनेमें सूर्य आदि भी
उनकी आज्ञाका अतिक्रमण (उल्लङ्घन)
नहीं करते, इसलिये वे दुरतिक्रम हैं;
जैसा कि मन्त्रवर्ण कहता है—‘इस
(ईश्वर) के भयसे अग्नि तपता है,
सूर्य प्रकाशित होता है और इसीके
भयसे इन्द्र, वायु और पाँचवाँ मृत्यु
दौड़ता है ।’ तथा [दूसरा मन्त्र कहता
है—] ‘महान् भयरूप वज्र उद्यत है ।’

दुर्लभ भक्तिमें प्राप्य होनेके
कारण भगवान् दुर्लभ हैं । व्यासजीका
कथन है—‘इजाराँ जन्मोंमें किये हुए
तप, ज्ञान और समाधिमें जिन
मनुष्योंके पाप क्षीण हो जाते हैं
उन्हींकी श्रीकृष्णमें भक्ति होनी है ।’

इति व्यासवचनात्, 'भक्त्या भगवान्ने भी कहा है—'मैं अनन्य-प्रक्रिये
न्यस्तवनन्यया' (गीता ८।२२) ही प्राप्त हो सकता हूँ।
इति भगवद्वचनाच्च ।

दुःखेन गम्यते ज्ञायत इति दुःख (कठिना) से गम्य होते
दुर्गमः । अर्थात् जाने जाते हैं, इसलिये दुर्गम हैं।

अन्तरायप्रतिहतैर्दुःखादवाप्यत नाना प्रकारके विघ्नोंसे प्रतिहत
इति दुर्ग । (आहत) हुए पुरुषोंद्वारा कठिनासे
प्राप्त किये जाते हैं, इसलिये दुर्गम हैं।

दुःखेनावस्थिते चित्ते योगिभिः ममाधिमे योगिजन बड़ी कठिनातासे
ममाधाविति दुराधामः । चित्तमे भगवान्को वसा पाते हैं, इसलिये
वे दुराधाम हैं।

दुरारिणो दानवादयस्तान् दानवादि दुरागियो अर्थात् दृष्टमार्गमें
हन्तीति दुरारिहा ॥ ९६ ॥ चलनेवालोंको मारते हैं, इसलिये
दुरारिहा हैं ॥ ९६ ॥



शुभाङ्गो लोकसारङ्गः सुतन्तुस्तन्तुवर्धनः ।

इन्द्रकर्मा महाकर्मा कृतकर्मा कृतागमः ॥ ९७ ॥

७८२ शुभाङ्गः, ७८३ लोकसारङ्गः, ७८४ सुतन्तुः, ७८५ तन्तुवर्धनः ।
७८६ इन्द्रकर्मा, ७८७ महाकर्मा, ७८८ कृतकर्मा, ७८९ कृतागमः ॥

शोभनैरङ्गैर्ध्येयत्वात् शुभाङ्गः । सुन्दर अङ्गोंसे ध्यान किये जानेके
कारण शुभाङ्ग हैं ।

लोकानां मारं सारङ्गवत् भृङ्ग- लोकोंका जो मार है उसे सारङ्ग
वद्गृह्णातीति लोकसारङ्गः, 'प्रजा- अर्थात् भ्रमरके समान ग्रहण करते हैं,
पतिर्लोकानम्यतपत्' इति श्रुतेः; इसलिये लोकसारङ्ग हैं। श्रुति कहती
[अर्थात् लोकोंका सार निकाला] ।

लोकसारः प्रणवः, तेन प्रतिपत्तव्य
इति वा; पृषोदरादित्वात्माधुत्वम् ।

शोभनस्तन्तुर्विस्तीर्णः प्रपञ्चो-
ऽस्येति सुतन्तुः ।

तमेव तन्तुं वर्धयति छेदय-
तीति वा तन्तुवर्धनः ।

इन्द्रस्य कर्मैव कर्मास्येति
इन्द्रकर्मा, ऐश्वर्यकर्मैत्यर्थः ।

महान्ति त्रियदादीनि भूतानि
कर्माणि कार्याण्यस्येति महाकर्मा ।

कृतमेव सर्वं कृतार्थत्वात्,
न कर्तव्यं किञ्चिदपि कर्मास्य
विद्यत इति कृतकर्मा; धर्मात्मकं कर्म
कृतवानिति वा ।

कृतो वेदान्तमक आगमो येनेति
कृतागमः, 'अयं महतो भूतस्य निःस्व-
सिनमेतद्यदगवेदः' (बृ० उ० २ ।
४ । १०) इत्यादिश्रुतेः ॥९७॥

अथवा प्रणव लोकसार है उससे जानने
योग्य होनेके कारण लोकसारङ्ग हैं ।
पृषोदरादिगणमे होनेसे [लोकसारगम्य-
के स्थानमें लोकसारङ्ग] सिद्ध होता है ।

भगवान्का तन्तु-यह विस्तृत जगत्
सुन्दर है, इसलिये वे सुतन्तु हैं ।

उसी तन्तुको बढ़ाते या काटते हैं,
इसलिये भगवान् तन्तुवर्धन हैं ।

इन्द्रके कर्मके समान ही भगवान्का
कर्म है, इसलिये वे इन्द्रकर्मा अर्थात्
ऐश्वर्यकर्मा है ।

भगवान्के कर्म अर्थात् कार्य
आकाशादि भूत महान् हैं, इसलिये वे
महाकर्मा हैं ।

कृतार्थ होनेके कारण भगवान्का
सब कुछ किया हुआ ही है, उन्हे कोई
कर्म करना नहीं है, इसलिये वे कृतकर्मा
हैं । अथवा उन्होंने धर्मरूप कर्म किया है
इसलिये वे कृतकर्मा हैं ।

उन्होंने वेदरूप आगम बनाया है,
इसलिये वे कृतागम हैं । श्रुति कहती
है- 'इस महाभूतका निःस्वास ही
अग्वेव है' ॥९७॥

उद्भवः सुन्दरः सुन्दो रत्ननाभः सुलोचनः ।

अर्को वाजसनः शृङ्गी जयन्तः सर्वविजयी ॥ ९८ ॥

७९० उद्भवः, ७९१ सुन्दरः, ७९२ सुन्दः, ७९३ रत्ननामः, ७९४ सुलोचनः । ७९५ अर्कः, ७९६ वाजसनः, ७९७ शृङ्गी, ७९८ जयन्तः, ७९९ सर्वविजयी ॥

उत्कृष्टं भवं जन्म स्वेच्छया
भजति इति, उद्गतमपगतं जन्मास्य
सर्वकारणत्वादिति वा उद्भवः ।

भगवान् अपनी इच्छासे उत्कृष्ट
भव अर्थात् जन्म धारण करते हैं,
इसलिये अथवा सबके कारण होनेसे
उनका जन्म नहीं है, इसलिये
उद्भव हैं ।

विश्वातिशायिसौभाग्यशालि-
न्वान् सुन्दरः ।

विश्वमेवदकर सौभाग्यशाली होने-
के कारण सुन्दर हैं ।

सुष्ठु उनतीति सुन्दः, उन्दी
क्लेदने इति धातोः पचाद्यच्;
आर्द्राभावस्य वाचकः करुणाकर
इत्यर्थः; पृषोदरादित्वात्पररूपत्वम् ।

शुभ उन्दन (आर्द्रभाव) करते हैं,
इसलिये सुन्द हैं । यहाँ 'उन्दी क्लेदने'
(उन्द् धातु क्लेदन अर्थमें होता है)
इस धातुसे पचादिसम्बन्धी अच्
प्रत्यय हुआ है; यह आर्द्रभावका वाचक
है । इसका भाव करुणाकर है ।
'पृषोदरादिगण' में होनेसे सु के उकार-
का पररूप [अर्थात् उत्तरवर्ती वर्णके
समान रूप] हो गया है ।

रत्नशब्देन शोभा लक्ष्यते;
रत्नवत्सुन्दरा नाभिरस्येति रत्ननामः ।

रत्न शब्दमे शोभा लक्षित होती
है । भगवान्की नाभि रत्न के समान
सुन्दर है, इसलिये वे रत्ननाम हैं ।

शोभनं लोचनं नयनं ज्ञानं वा
अस्येति सुलोचनः ।

भगवान्के लोचन—नेत्र अथवा
ज्ञान सुन्दर हैं, इसलिये वे सुलोचन हैं ।

ब्रह्मादिभिः पूज्यतमैरपि अर्च-
नीयत्वात् अर्कः ।

ब्रह्मा आदि पूज्यतमोंके भी पूजनीय
होनेसे अर्क हैं ।

वाजमश्रमयिनां मनोति ददा-
तीति वाजमन ।

प्रलयाम्भसि शृङ्गवन्मत्स्यविशेष-
स्यः शृङ्गाः मन्त्रार्थीयोजतिशायने
इतिप्रत्ययः ।

अरीन् अतिशयेन जयति, जय-
हेतुर्वा जयन्तः ।

सर्वविषयं ज्ञानमस्येति सर्ववित्ः
आभ्यन्तरान् रागादीन् बाह्यान्
हिरण्याक्षार्दींश्च दुर्जयान् जेतुं शील-
मस्येति जयीः तच्छीलाधिकारे
'जिहृक्षि' (पा० म० ३ । २ । १५७)
इत्यादिपाणिनीयवचनादिनि-
प्रत्ययः; सर्वविश्वासौ जयी चेति
सर्वविजयी इत्येकं नाम ॥ ९८ ॥

याचकोको वाज अर्थात् अन्न देने
हैं, इसलिये वाजसन हैं ।

प्रलय-ममुद्रमें सोंगवाले मत्स्य-
विशेषका रूप धारण करनेसे शृङ्गी
है । यहाँ अतिशय अर्थमें मत्स्यार्थीय
इतिप्रत्यय हुआ है ।

शत्रुओंको अतिशयसे जीतते हैं,
अथवा उनको जीतनेके हेतु हैं,
इसलिये जयन्त हैं ।

भगवान्को सब विषयोंका ज्ञान है,
इसलिये वे सर्ववित् हैं । तथा उन्हे
रागादि आन्तरिक और हिरण्याक्षदि
बाह्यदुर्जय शत्रुओंको जीतनेका स्वभाव
है, इसलिये वे जयी हैं । 'जिहृक्षि'*
इत्यादि पाणिनीय वचनसे यहाँ इनि-
प्रत्यय हुआ है । इस प्रकार सर्ववित्
है और जयी है, इसलिये सर्वविजयी
है, यह एक नाम है ॥ ९८ ॥



सुवर्णचिन्दुरक्षोभ्यः

सर्ववागीश्वरेश्वरः ।

महाहृदो महागर्तो महाभूतो महानिधिः ॥ ९९ ॥

८०० सुवर्णचिन्दुः, ८०१ अक्षोभ्यः, ८०२ सर्ववागीश्वरेश्वरः ।

८०३ महाहृदः, ८०४ महागर्तः, ८०५ महाभूतः, ८०६ महानिधिः ॥

* इस सूत्रमें 'प्रजोरिति' (३ । २ । १५९) सूत्रसे इतिप्रत्ययकी अनुवृत्ति
होती है ।

विन्दवोऽवयवाः सुवर्णसदृशा
अस्येति सुवर्णविन्दुः, 'आप्रणखात्सर्व
एव सुवर्णः' (छा० उ० १।६।६)
इति श्रुतेः, शोभनो वर्णोऽश्वरं
विन्दुश्च यस्मिन्मन्त्रे तन्मन्त्रात्मा
वा सुवर्णविन्दुः ।

इति नाम्नामष्टमं शतं विवृतम् ।

रागद्वेपादिभिः शब्दादिविपर्ययैश्च
त्रिदशारिभिश्च न क्षोभ्यत इति
अक्षोभ्य ।

मर्वेषां वागीश्वराणां ब्रह्मादी-
नामर्षीश्वरः सर्ववर्गाश्वरेश्वरः ।

अवगाह्य तदानन्दं विश्रम्य

मुखमासते योगिन इति महाहृद
इव महाहृदः ।

गर्तवदस्य माया महती दुरत्य-
येति महागर्तः, 'मम माया दुरत्यया'
(गीता ७।१४) इति भगवद्व-
चनात्; यद्वा, गर्तशब्दो रथपर्यायां
नैरुक्तैरुक्तः, तस्मान्महारथो महा-
गर्तः, महारथत्वमस्य प्रसिद्धं
भारतादिषु ।

भगवान्को विन्दु अर्थात् अवयव
सुवर्णके समान हैं, इसलिये वे सुवर्ण-
विन्दु हैं । श्रुति कहती है—'मन्त्रसे
लेकर [शिक्षातक] सब सुवर्ण ही है ।'
अथवा जिसमें सुन्दर वर्ण यानी अक्षर
और विन्दु है वह मन्त्ररूप (ओंकार)
ही सुवर्णविन्दु है ।

यहाँतक सहस्रनामके आठवें शतक-
का विवरण हुआ ।

राग-द्वेपादिमें, शब्दादि विषयों
और देवशत्रुओंसे क्षोभित नहीं होते,
इसलिये अक्षोभ्य हैं ।

ब्रह्मादि समस्त वागीश्वरोंके भी
ईश्वर है, इसलिये सर्ववागीश्वरेश्वर हैं ।

उन आनन्दरूप परमात्मामें गीना
लगाकर योगिजन विश्रान्त होकर
मुखमें बैठते हैं, इसलिये वे एक महाहृद
(बड़े सरोवर) के समान महाहृद
कहलाते हैं ।

भगवान्की माया गर्त (गह्वर) के
समान अति दुस्तर हैं, इसलिये वे महागर्त
हैं । भगवान्ने कहा है—'मेरी माया
दुस्तर है' अथवा निरुक्तकार कहते
हैं कि गर्त शब्द रथका पर्याय है ।
अतः महारथ होनेके कारण महागर्त
हैं । महाभारतादिमें भगवान्का महा-
रथी होना प्रसिद्ध ही है ।

कालप्रयानवच्छिन्नस्वरूपत्वान्
महाभूतः ।

तीनों काष्ठसे अनवच्छिन्न (विभाग-
रहित) स्वरूप होनेके कारण परमात्मा
महाभूत हैं ।

सर्वभूतानि अस्मिन्निधीयन्त
इति निधिः, महांश्चासौ निधिश्चेति
महानिधिः ॥९९॥

जिनमें समस्त भूत रहते हैं अतः
जो महान् और निधि भी है वे भगवान्
महानिधि हैं ॥९९॥



कुमुदः कुन्दरः कुन्दः पर्जन्यः पावनोऽनिलः ।

अमृताशोऽमृतवपुः सर्वज्ञः सर्वतोमुखः ॥१००॥

८०७ कुमुदः, ८०८ कुन्दरः, ८०९ कुन्दः, ८१० पर्जन्यः, ८११ पावनः,
८१२ अनिलः । ८१३ अमृताशः, ८१४ अमृतवपुः, ८१५ सर्वज्ञः,
८१६ सर्वतोमुखः ॥

कुं धरणि भारावतरणं कुर्वन्
मोदयतीति कुमुदः । मुदिरत्रान्त-
र्भावितिजर्थः ।

कु अर्थात् पृथिवीकां उसका भार
उतारते हुए मोदित करने है, इसलिये
कुमुद हैं । यहाँ मुद धातुमे णिच्
प्रत्ययके अर्पका अन्तर्भाव है ।

कुन्दपुष्पतुल्यानि शुद्धानि
फलानि राति ददाति, लात्यादत्ते
इति वा कुन्दरः, रलयोर्दृश्येकत्व-
स्मरणात्;

कुन्द पुष्पके समान शुद्ध फल देते
हैं अथवा उन्हे लेते—ग्रहण करते हैं,
इसलिये कुन्दर हैं । क्योंकि र और ल-
की एक ही वृत्ति मानी गयी है ।*
अथवा 'हिरण्याक्षको मारनेकी
इच्छासे भगवान्ने घराहकूप धारण-
कर कु—पृथिवीको विदोष किया था'
इसलिये वे कुन्दर हैं ।

‘कुं धरां दारयामास

हिरण्याक्षजिघांसया ।

धाराहं रूपमास्याय’

इति वा कुन्दरः ।

* इसलिये ‘कुन्दर’ शब्दका ‘कुन्दं राति’ (कुन्द देते हैं) और ‘कुन्दं कालि’
(कुन्द लेते हैं) इस प्रकार दो तरहसे विग्रह किया गया है ।

कुन्दोपमसुन्दराङ्गत्वात् स्वच्छ-
तया स्फटिकनिर्मलः कुन्दः; कुं
पृथ्वीं कश्यपायादादिति वा कुन्दः;
'सर्वपापविशुद्धयर्थं

वाजिमेधेन चेष्टवान् ।
तस्मिन्यज्ञे महादाने

दक्षिणां भृगुनन्दनः ॥

मार्गचाय ददौ प्रीतः

कश्यपाय वसुन्धराम् ।'

इति हरिवंशः (१।४१।१६-
१७) । कुं पृथ्वीं द्यति खण्डयतीति
वा कुन्दः । कुग्रन्देन पृथ्वीश्वरा
लक्ष्यन्ते:

'न क्षत्रिया यश्च चकार मेदिनी-

मनेकशो बाहुवनं तथाच्छिनत् ।

यः कार्त्तवीर्यस्य स भार्गवोत्तमो

ममास्तु माङ्गन्यविबुद्धये हरिः ॥'

इति विष्णुधर्म ।

पर्जन्यवदाध्यात्मिकादितापत्रयं
शमयति, सर्वान्कामानभिवर्पतीति
वा पर्जन्यः ।

स्मृतिमात्रेण पुनातीति पावनः ।

इलति प्रेरणं करोतीति इलः,
तद्रहितत्वात् अनिलः; इलति स्व-

कुन्दके समान सुन्दर अङ्गवाले होने-
से भगवान् स्वच्छ, स्फटिकमणिके
समान निर्मल हैं, इसलिये वे कुम्भ
हैं, अथवा कश्यपजीको कु—पृथिवी
दी था, इसलिये कुन्द हैं । हरिवंशमें
कहा है—'भृगुनन्दन परशुरामजीने
समस्त पापोंकी मिष्टुतिके लिये
अश्वमेध-यज्ञ किया और उस
महादानवाले यज्ञमें दक्षिणारूपसे
उम्होंने मरोचिनम्बन कश्यपजीको
प्रसन्नतापूर्वक सम्पूर्ण पृथिवी दे
दी ।' अथवा कु—पृथिवी [पति]
का दलन—खण्डन करते हैं, इसलिये
कुन्द हैं । यहाँ कु शब्दमें पृथिवीपति
लक्षित होते हैं । विष्णुधर्ममें कहा है—
'जिन्होंने कई बार पृथिवीको क्षत्रिय-
शून्य कर दिया और कार्त्तवीर्यकी
भुजारूप धनका छेदन किया, वे
भृगुश्रेष्ठ परशुरामरूप भगवान् हरि
मारे मंगलकी वृद्धि करनेवाले हों ।'

पर्जन्य (मेघ) के समान आध्यात्मि-
कादि तीनों तापोंको शान्त करते हैं
अथवा सम्पूर्ण कामताओंकी वर्षा करते
हैं, इसलिये पर्जन्य हैं ।

स्मरणमात्रसे पवित्र कर देने हैं,
इसलिये पावन हैं ।

जो इलन अर्थात् प्रेरणा करता है
उसे इल कहते हैं, उस (इल) से रहित
होनेके कारण भगवान् अनिल हैं ।

पिति इत्यङ्ग इलः तद्विपरीतो
नित्यप्रबुद्धस्वरूपत्वादिति वाः
अथवा निलतेर्गहनार्थात्कप्रत्यया-
न्ताद्रूपम्; अगहनः अनिलः,
भक्तेभ्यः सुलभ इति ।

स्वात्मामृतमभ्रातीति अमृताशः;
मथितममृतं सुरान् पाययित्वा
स्वयं चाभ्रातीति वा अमृताशः;
अमृता अनन्धरफलत्वादाश
वाञ्छा अस्प्येति वा ।

मृतं मरणं, तद्रहितं वपुस्स्येति
अमृतवपुः ।

मर्वं जानातीति सर्वज्ञ । 'य
सर्वज्ञः सर्ववित्' (मु० उ० १।१।
९) इति श्रुतेः ।

'सर्वतोऽग्निशिरोमुखम्' (गीता
१३।१३) इति भगवद्बचनात्
सर्वतोमुखः ॥१००॥

इलन अर्थात् शयन करना है अतः इल
अङ्गको कहते हैं, भगवान् नित्य प्रबुद्ध-
रूप होनेसे उसके विपरीत हैं इसलिये वे
अनिल हैं । अथवा गहन अर्थके वाचक
निल धातुके अन्तमें कप्रत्यय होनेपर
'निल' रूप बनता है; भगवान् गहन
(निल) नहीं हैं, इसलिये अनिल हैं ।
अर्थात् भक्तोंके लिये सुलभ हैं ।

स्वात्मानन्दरूप अमृतका भोग
करनेसे भगवान् अमृताश हैं अथवा
उन्होंने समुद्रसे मथकर निकाला हुआ
अमृत देवताओंको पियाकर स्वयं
पिया, इसलिये वे अमृताश हैं या
भगवान्की आशा अर्थात् इच्छा
अविनाशा फलयुक्त होनेके कारण
अमृता अर्थात् अविनाशिनी हैं इसलिये
भी वे अमृताश हैं ।

मृत मरणको कहते हैं, भगवानका
शरीर मरणसे रहित है, इसलिये वे
अमृतवपु है ।

सर्व कुछ जानते हैं, इसलिये सर्वज्ञ
हैं । श्रुति कहती है—'जो सर्वज्ञ
और सर्ववित् है ।'

'सर्व ओर नेत्र, शिर और मुख-
वाले हैं' भगवान्के इस वचनानुसार
भगवान् सर्वतोमुख हैं ॥१००॥

सुलभः सुव्रतः सिद्धः शत्रुजिच्छत्रुतापनः ।

न्यग्रोघोदुम्बरोऽश्वत्थश्चाणूरान्ध्रनिपूदनः ॥१०१॥

८१७ सुलभः, ८१८ सुव्रतः, ८१९ सिद्धः, ८२० शत्रुजित्, ८२१ शत्रु-
तापनः । ८२२ न्यग्रोघः, ८२३ उदुम्बरः, ८२४ अश्वत्थः, ८२५ चाणूरान्ध्र-
निपूदनः ॥

पत्रपुष्पफलादिभिर्भक्तिमात्रमम-
र्षितं सुखं लभ्यत इति
सुलभः ।

‘पत्रेषु पुष्पेषु फलेषु तैले-

ष्वकीनत्वम्येषु सर्वेषु समु ।

भक्त्येकत्वम्येषु पुरुषे पुराणे

मुक्तये कथं न क्रियते प्रयत्नः ॥’*

इति महाभारते ।

शोभनं व्रतयति भुङ्क्ते भोजना-
श्रिवर्तत इति वा सुव्रतः ।

अनन्याधीनमिद्वित्वात् सिद्धः ।

सुरशत्रव एवास्व शत्रवः, तान्
जयतीति शत्रुजित् ।

सुरशत्रूणां तापनः शत्रुतापनः ।

केवल भक्तिसे समर्पण किये पत्र-
पुष्प आदिसे भी सुखपूर्वक मिल जाते
हैं, इसलिये भगवान् सुलभ हैं । महा-
भारतमें कहा है—‘एकमात्र भक्तिहोसे
प्राप्त होनेवाले पुराणपुरुषकी उपल-
ब्धिमें उपयोगी बिना मोल ही मिलने-
वाले पत्र, पुष्प, फल और जल भादि-
के सदा रहते हुए भी मुक्तिके लिये
प्रयत्न क्यों नहीं किया जाता ?’

भगवान् सुन्दर व्रत करने अर्थात्
अच्छा भोजन करते हैं अथवा भोजन
[या भोग] में हट्टे हुए [अर्थात् अमोक्ता]
हैं, इसलिये सुव्रत हैं ।

भगवान्की सिद्धि (इच्छापूति)
दूसरोंके अधीन नहीं है, इसलिये वे
सिद्ध हैं ।

देवताओंके शत्रु ही भगवान्के शत्रु
हैं, उन्हें जीनते हैं, इसलिये शत्रुजित् हैं ।

देवताओंके शत्रुओंका तपानेवाले
हैं, इसलिये शत्रुतापन हैं ।

न्यक् अर्वाक् रोहति सर्वेषामुपरि
वर्तत इति न्यग्रोधः; पृषोदरादित्वात्
हकारस्य घकारादेशः; सर्वाणि
भूतानि न्यक्कृत्य निजमायां
वृणोति निरुणद्धीति वा ।

अम्बरादुद्भूतः कारणत्वेनेति
उदुम्बरः; पृषोदरादित्वादेवोकारा-
देशः; यद्वा उदुम्बरमन्नाद्यम्;
नेन तदात्मना विश्वं पोषयन्
उदुम्बरः, 'ऊर्वा अन्नाद्यमुदुम्बरम्'
इति श्रुतेः ।

न्यग्रोधोदुम्बर इत्यत्र विसर्ग-
लोपे सन्धिरापः ।

श्वोऽपि न म्यातेति अश्वत्थः ।
पृषोदरादित्वादेव सकारस्य तका-
रादेशः;

‘ऊर्ध्वमूत्रोऽश्वत्थश्चाग्नौ’

एषोऽश्वत्थः सनातन ।’

(५० उ० २ । ४ । १)

इति श्रुतेः ।

★ यहाँ ‘स्य’ के सकारका तकार और ‘श्वस्’ के सकारका लोप आदेश
समझना चाहिये ।

न्यक्—नीचेकी ओर उगते हैं और
सबके ऊपर विराजमान हैं, इसलिये
न्यग्रोध हैं । पृषोदरादिगणमें होनेसे
न्यग्रोधके हकारको घ आदेश हो गया है ।
अथवा सब भूतोंका निरास करके अपनी
मायाका वर्णन करते हैं या उसका निरोध
करते हैं [इसलिये न्यग्रोध हैं] ।

कारणरूपमें अम्बर (आकाश) से
भी ऊपर हैं, इसलिये उदुम्बर हैं ।
पृषोदरादिगणमें होनेसे ही यहाँ अम्बर-
के अकारको उकार आदेश हुआ है ।
अथवा ‘ऊर्वा अन्नाद्यमुदुम्बरम्’ इस
श्रुतिके अनुसार उदुम्बर अन्नरूप खाद्य-
को भी कहते हैं, खाद्यरूपसे विश्वका
पोषण करते हैं, इसलिये उदुम्बर हैं ।

‘न्यग्रोधोदुम्बर.’ इसमें न्यग्रोधके
विसर्गका लोप होनेपर भी सन्धि आर्प-
प्रयोगमें हुई है ।

श्व अर्थात् कल भी रहनेवाला नहीं
है, इसलिये [भगवानकी अभिव्यक्ति-
रूप जगत्] अश्वत्थ है । पृषोदरादि-
गणमें होनेसे ही अश्वत्थके सकारको
तकार आदेश हुआ है* । श्रुति कहती
है—‘ऊपरकी ओर मूलघाला और
नीचेकी ओर शाखाओंवाला यह

‘ऊर्ध्वमूलमधःशाख-

मन्त्रं प्रादुरव्ययम् ।’

(गीता ११.११)

इति स्मृतेश्च ।

चाणूरनामानमन्त्रं निषृदितवा-

निदि चाणूरान्ध्रनिषूदनः ॥१०१॥

सनातन अभ्यन्तवृक्ष है ।’ स्मृति भी

कहती है—‘इस ऊपरको मूल और

नीचेको शाखाओंवाले अभ्यन्त-

वृक्षको अधिनाशी बतलाते हैं ।’

चाणूर नामक अन्ध-जातिके वीर-

को मारा था, इसलिये चाणूरान्ध्र-

निषूदन हैं ॥१०१॥



सहस्रार्चिः सप्तजिह्वः सप्तैधाः सप्तबाहनः ।

अमूर्तिर्गनघोऽचिन्त्यो

भयकृद्भयनाशनः ॥१०२॥

८२६ सहस्रार्चिः, ८२७ सप्तजिह्वः, ८२८ सप्तैधाः, ८२९ सप्तबाहनः । ८३०

अमूर्तिः, ८३१ अनघः, ८३२ अचिन्त्यः, ८३३ भयकृत्, ८३४ भयनाशनः ॥

महस्याणि अनन्तानि अर्चोपि यस्य
स सहस्रार्चिः,

‘दिवि गुर्यसहस्रस्य

भवेद्युगपदुत्थिता ।

यदि भा. नदृशी सा स्या-

द्रासस्तस्य महात्मनः ॥’

(११.१२)

इति गीतावचनान् ।

सप्त जिह्वा अस्य मन्तीति
सप्तजिह्वः,

‘काली काली च मनोजवा च

सुलोहिता या च सुधूमवर्णा ।

स्फुलिङ्गिनी विश्वरूची च देवी

लेलायमाना इति सप्त जिह्वाः ॥’

(सु० उ० १.२.४)

इति श्रुतेः ।

जिनके सहस्र अर्थात् अनन्त
अर्चियाँ (किरणें) हैं, वे भगवान्

महस्रार्चि हैं । गीताजीमें कहा है—

‘यदि आकाशमें हजार सूर्योंका एक

साथ प्रकाश हो तो वह उस महात्मा-

के प्रकाशके समान हो सकता है ।’

[अग्निरूपी भगवान्की] सात जिह्वाएँ

हैं, इसलिये वे सप्तजिह्व हैं । श्रुति

कहती है—‘अग्निकी काली, कराली,

मनोजवा, सुलोहिता, सुधूमवर्णा,

स्फुलिङ्गिनी और देवी विश्वरूची—वे

सात लपलपाती हुई जिह्वाएँ हैं ।’

सप्त एधांसि दीप्तयोऽस्येति
सप्तैधाः अग्निः, 'सप्त ते अग्ने समिधः
सप्त जिह्वाः' इति मन्त्रवर्णात् ।

सप्त अश्वा वाहनान्यस्येति
सप्तवाहनः, सप्तनामैकोऽश्वो वाहन-
मस्थंति वा, 'एकोऽश्वो वहति
सप्तनामा' इति श्रुतेः ।

मूर्तिर्धनरूपं धारणममर्थं
चराचरलक्षणम्, 'नाम्योऽभितप्तान्यो
मूर्तिरजायत' इति श्रुतेः, तद्रहित
इति अमूर्तिः, अथवा देहसंस्थान-
लक्षणा मूर्च्छिताङ्गावयवा मूर्तिः,
तद्रहित इति अमूर्तिः ।

अथ दुःखं पापं चास्य न विद्यत
इति अनघः ।

प्रमात्रादिसाक्षित्वेन सर्वप्रमा-
णासोचरन्त्वात् अचिन्त्यः, अयमी-
दृश इति विश्वप्रपञ्चविलक्षणत्वेन
चिन्तयितुमशक्यत्वाद्वा अचिन्त्यः ।

अग्निरूप भगवान्की सात एधाएँ
अर्थात् दीप्तियाँ हैं, इसलिये वे सप्तैधा
हैं । मन्त्रवर्ण कहता है—'हे अग्ने ! तेरी
सात समिध और सात जिह्वाएँ हैं ।'

सात घोड़े [मूर्त्यरूप] भगवान्के
वाहन हैं, इसलिये वे सप्तवाहन हैं,
अथवा सात नामोंवाला एक ही घोड़ा
वाहन हैं, इसलिये [वेदभगवान्]*
सप्तवाहन हैं । श्रुति कहती है—
'सात नामोंवाला एक ही घोड़ा वहन
करता है ।'

धनरूप धारणमें समर्थ चराचर-
को मूर्ति कहते हैं, जैसा कि श्रुतिमें
कहा है—'उन अभितप्तोंसे मूर्ति
उत्पन्न हुई ।' मूर्तिहीन होनेके कारण
अमूर्ति हैं । अथवा देह-संस्थानरूप
संगठित अवयव ही मूर्ति है, उसमें
रहित होनेके कारण अमूर्ति है ।

जिनमें अथ अर्थात् दुःख या पाप
नहीं है वे भगवान् अनघ हैं ।

प्रमाणा आदिके भी साक्षी होनेसे
यस प्रमाणोंके अविषय होनेके कारण
अचिन्त्य है अथवा सम्पूर्ण प्रपञ्चसे
विलक्षण होनेके कारण 'यह ऐसे है,'
इस प्रकार चिन्तन नहीं किये जा
सकते, इसलिये अचिन्त्य हैं ।

ॐ नावशाः, बृहताः, पक्षिः, त्रिष्टुब्, उरगिक, जगता और अनुष्टुप्—ये सात
छन्द वेदभगवान्के घोड़े हैं ।

असन्मार्गवर्तिनां भयं करोति,
भक्तानां भयं कृन्तति कृषोतीति
वा भयकृत् ।

वर्णाश्रमाचारवतां भयं नाश-
यतीति भयनाशनः;
'वर्णाश्रमाचारवता

पुरुषेण परः पुमान् ।

विष्णुराराध्यते पन्था

नान्यस्तत्तोपकारकः ॥'

(विष्णु० ३।८।९)

इति पराशरवचनान् ॥१०२॥

असन्मार्गमें चलनेवालोंको भय उत्पन्न
करते हैं अथवा भक्तोंका भय काटते—
नष्ट करते हैं, इसलिये भयकृत् हैं ।

वर्णाश्रम-धर्मका पालन करनेवालों-
का भय नष्ट करते हैं, इसलिये भगवान्
भयनाशन है । पराशरजीका वचन है—
'वर्णाश्रम-आचारका पालन करने-
वाले पुरुषसे ही परम पुरुष भगवान्
विष्णुकी आराधना बन सकती है ।
उन्हें प्रसन्न करनेका कोई और मार्ग
नहीं है' ॥१०२॥

अणुर्बृहत्कृशः स्थूलो गुणभृन्निर्गुणो महान् ।

अधृतः स्वधृतः स्वास्यः प्राग्वंशो वंशवर्धनः ॥१०३॥

८३५ अणुः, ८३६ बृहत्, ८३७ कृशः, ८३८ स्थूल, ८३९ गुणभृत्,
८४० निर्गुणः, ८४१ महान् । ८४२ अधृतः, ८४३ स्वधृतः, ८४४ स्वास्यः,
८४५ प्राग्वंशः, ८४६ वंशवर्धनः ॥

सौक्ष्म्यातिशयशालित्वात् अणुः,
'एषोऽणुरात्मा चेनसा वेदितव्यः'
(मु० उ० ३।१।९) इति श्रुतेः ।

बृहत्त्वाद्वृहणत्वाच्च ब्रह्म बृहत्,
'महतो महीयान्' (क० उ० १।२।२०)
इति श्रुतेः ।

अत्यन्त सूक्ष्म होनेसे भगवान् अणु
हैं । श्रुति कहती है—'यह अणु
(सूक्ष्म) आत्मा जिससे जानने
योग्य है ।'

बृहत् (बड़ा) तथा बृंहण (जगत्-
रूपसे बढ़नेवाला) होनेके कारण ब्रह्म
बृहत् है । श्रुति कहती है—
'महान्से भी अत्यन्त महान् है ।'

‘अस्थूलम्’ (बृ० उ० ३।८।८); ‘अस्थूल है’ इत्यादि श्रुतिसे द्रव्य-
का प्रतिषेध किये जानेके कारण वह
कृश है।

स्थूलः इति उपचर्यते सर्वा-
न्मत्वात् ।

सर्वात्मक होनेके कारण ब्रह्मको
उपचारसे स्थूल कहने है।

सम्बरजस्तममां सृष्टिस्थितिलय-
कर्मस्वधिष्ठातृत्वात् गुणभूत ।

सृष्टि, स्थिति और लयकर्ममें सत्त्व,
रज और तम इन तानों गुणोंके अधि-
ष्ठाता होनेमें भगवान् गुणभूत हैं।

वस्तुतो गुणाभावान् निर्गुणः
‘केवलो निर्गुणश्च’ (बृ० उ० ६।११);
इति श्रुतेः ।

परमार्थतः उनमें गुणोंका अभाव
है, इमलिये वे निर्गुण हैं। श्रुति
कहती है—‘केवल और निर्गुण है।’

शब्दादिगुणरहितत्वात् निर-
तिशयब्रह्मत्वात् नित्यशुद्धसर्वगत-
त्वादिना च प्रतिबन्धकं घर्मेजातं
तर्कतोऽपि यतो वस्तुं न शक्यम्
अत एव महान् ।

शब्दादि गुणोंमें रहित अत्यन्त
सूक्ष्म तथा नित्य, शुद्ध और सर्वगत
होनेके कारण [भगवान्में] विघ्नरूप
कर्म-मग्न श्रुतिसे भी नहीं कहे जा
सकते, इमलिये वे महान् हैं। आपस्तम्ब-
ने कहा है—‘अङ्ग, शब्द, शरीर
और स्पर्शसे रहित तथा महान् और
शुद्ध है।’

‘अनङ्गोऽशब्दोऽस्पर्शोऽस्पर्शश्च
ऽस्पर्शश्च महाशुचिः ।’

इति आपस्तम्बः ।

पृथिव्यादीनां धारकाणामपि
धारकत्वात् केनचिदुध्रियत इति
अनृत ।

पृथिवी आदि धारण करनेवालोंके भी
धारण करनेवाले होनेसे किमसं भी धारण
नहीं किये जाते, इसलिये अनृत है।

यद्येवमयं केन धार्यत इत्या-

यदि ऐसा है तो वे स्वयं किससे
धारण किये जाते हैं—ऐसी शंका
होनेपर कहने है—वे स्वयं अपने-
आपसे ही धारण किये जाते हैं, अतः

शङ्कयाह—स्वेनैव आत्मना धार्यते

इति स्वधृतः, 'स भगवः कस्मिन्प्रति-
ष्ठित इति स्वे महिम्नि ।' (छा० उ०
७।२४।१) इति श्रुतेः ।

शोभनं पद्मोदरतलताम्रमभिरूप-
तममस्यास्यमिति स्वास्यः; वेदात्मको
महान् शब्दराशिः तस्य मुख-
निर्गतः पुरुषार्थोपदेशार्थमिति वा
स्वास्यः, 'अस्य महतो भूतस्य'
(बृ० उ० २।४।१०) इत्या-
दिश्रुतेः ।

अन्यस्य वंशिनो वंशाः पाश्चा-
न्याः; अस्य वंशः प्रपञ्चः प्रागेव,
न पाश्चात्य इति प्राग्वंश ।

वंशं प्रपञ्चं वर्धयन् छेदयन् वा
वंशवर्धनः ॥१०३॥

वे स्वधृत हैं । श्रुति कहती है—
'भगवान् ! वह किसमें स्थित है ? अपनी
महिमामें ।'

कमल-कोशके निम्नभागके समान
भगवान्का ताम्रवर्ण मुख अत्यन्त
सुन्दर है, इसलिये वे स्वास्य हैं ।
अथवा पुरुषार्थका उपदेश करनेके लिये
उनके मुखसे वेदार्थरूपी महान् शब्द-
मग्न निकलता है, इसलिये वे स्वास्य
हैं । श्रुति कहती है—'इस महाभूतके
[श्वास वेद हैं]' इत्यादि ।

अन्य वंशियोंके वंश पीछे हुए हैं;
परन्तु भगवान्का प्रपञ्चरूप वंश पहले-
हीमें है [किमसौ] पीछे नहीं हुआ है,
इसलिये वे प्राग्वंश हैं ।

अपने वंशरूप प्रपञ्चको बढ़ाने
अथवा नष्ट करनेके कारण भगवान्
वंशवर्धन है ॥१०३॥

भारभृत्कथितो योगी योगीशः सर्वकामदः ।

आश्रमः श्रमणः क्षामः सुपर्णा वायुवाहनः ॥१०४॥

८४७ भारभृत्, ८४८ कथितः, ८४९ योगी, ८५० योगीशः, ८५१ सर्व-
कामदः । ८५२ आश्रमः, ८५३ श्रमणः, ८५४ क्षामः, ८५५ सुपर्णः,
८५६ वायुवाहनः ॥

अनन्तादिरूपेण भुवो भारं
विभ्रत् भारभृत् ।

अनन्तादिरूपसे पृथिवीका भार
उठानेके कारण भारभृत् हैं ।

वेदादिभिरयमेव परत्वेन कथितः, सर्वेवेदः कथित इति वा कथितः, 'सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति' (क० उ० १।२।१५) 'वेदेष्व मर्वैरहमेव वेद्यः' (गीता १.५।१५)

'वेदे रामायणे पुण्ये

भारते भरतर्षभ ।

आर्द्रं मध्ये तथा चान्ते

विष्णु मर्वत्र गीयते ॥'

(महा० श्रवण० ९३)

'सोऽयं न पारमाप्रोति

तद्विष्णो परमं पदम् ।'

(क० उ० १।३।१९)

इति श्रुतिस्मृत्यादिवचनेभ्यः । किं तदध्वनो विष्णोर्व्यापनशीलस्य परमं पदं मतत्त्वमित्याकाङ्क्षायाम् इन्द्रियादिभ्यः सर्वेभ्यः परत्वेन प्रतिपाद्यते 'इन्द्रियेभ्यः परा द्यर्था' (क० उ० १।३।१०) इत्या- रम्भ,

'पुरुषान् परं किञ्चित्

सा काष्ठा सा परा गतिः'

(क० उ० १।३।११)

इत्यन्तेन यः कथितः स कथितः ।

योगो ज्ञानम्, तेनैव गम्यत्वात् योगी; योगः समाधिः, स हि

वेदादिकोंने पररूपसे भगवान्का ही कथन किया है अथवा सम्पूर्ण वेदोंसे भी भगवान् ही कथित हैं, इसलिये वे कथित हैं । 'सब वेद जिस पद (ब्रह्म) का प्रतिपादन करते हैं' 'सम्पूर्ण वेदोंसे भी मैं ही जानने योग्य हूँ' 'हे भरतश्रेष्ठ ! वेद, रामायण, पुराण तथा महाभारत—इन सबके आदि, मध्य और अन्तमें सर्वत्र विष्णु ही गाये गये हैं ।' 'वह मार्गको पार कर लेता है, वही विष्णुका परम पद है' इत्यादि श्रुति-स्मृति-वाक्योंद्वारा [ऐसा ही कहा गया है] । व्यापन-शील विष्णुके मार्गका वह तात्त्विक परम पद क्या है ? ऐसा जिज्ञासा होने-पर उसका सम्पूर्ण इन्द्रियादिके पररूपसे प्रतिपादन किया जाता है । वेदमें 'इन्द्रियोंसे विषय पर हैं' यहाँसे आरम्भ करके 'पुरुषसे पर कुछ नहीं है, यह सीमा है और वही परम गति है' इस वाक्यतक जिसका कथन किया गया है वही कथित है ।

योग ज्ञानको कहने है उसीसे प्राप्तव्य होनेके कारण भगवान् योगी हैं । अथवा योग समाधिको भी कहते

स्वात्मनि सर्वदा समाधत्ते स्वमा-
त्मानम्, तेन वा योगी ।

हैं, परमात्मा सर्वदा अपने आत्मा
(स्वरूप) में अपने आपको समाहित
रखते हैं, इसलिये वे योगी हैं ।

अन्ये योगिनो योगान्तरायै-
र्हन्यन्ते स्वरूपात्प्रमाद्यन्ति; अयं
तु तद्रहितत्वात्तेषामीशः योगीशः ।

अन्य योगिजन योगके विघ्नोसे
सताये जाते हैं, इसलिये वे स्वरूपसे
विचलित हो जाते हैं, परन्तु भगवान्
अन्तरायरहित हैं, इसलिये योगीश हैं ।

सर्वान् कामान् सदा ददातीति
सर्वकामदः, 'फलमत उपपत्तेः' (प्र०
मू० ३।२।३८) इति व्यामेना-
भिहितत्वात् ।

सर्वदा सब कामनाएँ देने हैं, इसलिये
सर्वकामद है । भगवान् व्यासजीने
कहा है—'फल इस (परमात्मा) से ही
प्राप्त होते हैं, क्योंकि यही [मानना]
उपपन्न (युक्तिसंगत) है ।'*

आश्रमवत् सर्वेषां संसारारण्ये
श्रमतां विश्वमस्थानत्वात् आश्रमः ।

संसारवनमें भटकते हुए समस्त
पुरुषोंके लिये आश्रमके समान विश्रान्ति-
के स्थान होनेसे परमात्मा आश्रम हैं ।

अविवेकिनः सर्वान् मन्तापय-
तीति श्रमणः ।

समस्त अविवेकियोक्तो सन्तत करते
हैं, इसलिये श्रमण हैं ।

क्षामाः क्षीणाः सर्वाः प्रजाः
करोतीति क्षामः; 'तत्करोति तदाचष्टे'
(चुरादिगणसूत्रम्) इति णिचि
पचाद्यचि कृते सम्पन्नः क्षाम इति ।

सम्पूर्ण प्रजाको क्षाम अर्थात् क्षीण
करते हैं, इसलिये क्षाम हैं । ['क्षामाः
करोति' इस विग्रहमें] 'तत्करोति
तदाचष्टे' इस गणसूत्रके अनुसार
[क्षाम शब्दसे] णिच्प्रत्यय करनेके
अनन्तर पचादिनिमित्तक अच्प्रत्यय
करनेपर 'क्षाम' शब्द सिद्ध होता है ।

ॐ परमात्मा सबका साक्षात् है और नाना प्रकारकी सृष्टि, पालन तथा संहार
करता हुआ देस और कालविशेषका ज्ञाता है, इसलिये वह कर्म करनेवालोंको
उनके कर्मानुसार फल देता है—यही युक्ति है ।

शोभनानि पर्णानिच्छन्दांसि संसारवृक्षरूप परमात्माके छन्दरूप
संसारतरुविणोऽप्येति सुपर्णः, सुन्दर पत्ते हैं, इसलिये वे सुपर्ण हैं;
'छन्दांसि यम्य पर्णानि' (गीता १५। जैसा कि भगवान् का वाक्य है—'छन्द
?) इति भगवद्वचनात् । जिसके पत्ते हैं ।'

वायुर्बहति यद्भीत्या भूतानीति जिनके भयसे वायु समस्त भूतों का
स वायुवाहनः, 'भीषास्माद्वातः पवते' वहन करता है वे भगवान् वायुवाहन
(नै० उ० २।८) इति श्रुतेः हैं । श्रुति कहती है—'इसके भयसे
॥ १०४ ॥ वायु चलता है' ॥ १०४ ॥



धनुर्धरो धनुर्वेदो दण्डो दमयिता दमः ।

अपराजितः सर्वसहो नियन्तानियमोऽयमः ॥१०५॥

८५७ धनुर्धरः, ८५८ धनुर्वेदः, ८५९ दण्डः, ८६० दमयिता, ८६१ दमः ।
८६२ अपराजितः, ८६३ सर्वसहः, ८६४ नियन्ता, ८६५ अनियमः, (नियम),
८६६ अयमः, (यम) ॥

श्रीमान् रामो महद्बलधरिया-
मासेति धनुर्धरः ।

श्रीमान् रामने महान् धनुष धारण
किया था. इसलिये वे धनुर्धर हैं ।

स एव दाशरथिर्धनुर्वेदं वेत्तीति
धनुर्वेदः ।

वे ही दशरथकुमार धनुर्वेद जानते
हैं, इसलिये धनुर्वेद हैं ।

दमनं दमयतां दण्डः 'दण्डो
दमयतामस्मि' (गीता १०।३८) इति भगवद्वचनात् ।

दमन करनेवालोंमें दमन [कर्म]
है, इसलिये वे दण्ड हैं; भगवान् कहते
हैं—'दमन करनेवालों का मैं दण्ड हूँ ।'

वैवस्वतनरेन्द्रादिरूपेण प्रजा
दमयतीति दमयिता ।

यम और राजा आदिके रूपसे
प्रजा का दमन करते हैं, इसलिये भगवान्
दमयिता हैं ।

दमः दम्प्येषु दण्डकार्यं फलम्,
तच्च म एवेति दमः ।

दण्डके अधिकारियोंमें जो दण्डका
फलस्वरूप कार्य है वह दम कहलाता है;
वह भी वे ही हैं, इसलिये दम हैं ।

शत्रुभिर्न पराजित इति
अपराजितः ।

शत्रुओंसे पराजित नहीं होते,
इसलिये अपराजित है ।

सर्वकर्मसु समर्थ इति, सर्वान्
शत्रून् सहत इति वा सर्वमहः ।

समस्त कर्मोंमें समर्थ है इसलिये
अथवा समस्त शत्रुओंको सहन करते
जीत लेते हैं, इसलिये सर्वसह है ।

सर्वान् स्वेषु स्वेषु कृत्येषु
व्यवस्थापयतीति नियन्ता ।

सबको अपने-अपने कार्योंमें नियुक्त
करने हैं, इसलिये नियन्ता हैं ।

न नियमो नियतिस्तस्य विद्यत
इति अनियमः, सर्वनियन्तुर्नियन्त्र-
न्तराभावात् ।

भगवानके लिये कोई नियम अर्थात्
नियन्त्रण नहीं है, इसलिये वे अनियम
हैं; क्योंकि सबके नियन्ताका कोई और
नियामक नहीं हो सकता ।

नास्य विद्यते यमो मृत्युरिति
अयमः । अथवा, यमनियमो
योगाङ्गे तद्रम्यत्वात्स एव नियमः
यमः ॥ १०५ ॥

भगवानके लिये कोई यम अर्थात्
मृत्यु नहीं है, अतः वे अयम हैं ।
अथवा योगके अङ्ग जो यम और नियम
हैं उनसे प्राप्तव्य होनेके कारण वे स्वयं
नियम और यम हैं ॥ १०५ ॥

सत्त्ववान्सात्त्विकः सत्यः सत्यधर्मपरायणः ।

अभिप्रायः प्रियाहोऽर्हः प्रियकृत्प्रीतिवर्धनः ॥ १०६ ॥

८६७ सत्त्ववान्, ८६८ सात्त्विकः, ८६९ सत्यः, ८७० सत्यधर्मपरायणः ।
८७१ अभिप्रायः, ८७२ प्रियाहः, ८७३ अर्हः, ८७४ प्रियकृत्, ८७५
प्रीतिवर्धनः ॥

शौर्यवीर्यादिकं सत्त्वमस्येति
सत्त्ववान् ।

भगवान्में शूरता-पराक्रम आदि सत्त्व
है, इसलिये वे सत्त्ववान् हैं ।

मत्त्वे गुणे प्राधान्येन स्थित
इति सात्त्विकः ।

सत्त्वगुणमें प्रधानतासे स्थित है,
इसलिये सात्त्विक हैं ।

मत्सु साधुत्वात् सत्यं ।

समीचीनोमें साधु होनेसे सत्य है ।

सत्यं यथाभूतार्थकथने धर्मे च
चोदनालक्षणे नियत इति सत्य-
धर्मपरायणः ।

वे सत्य अर्थात् यथार्थ भाषणमें और
विविधरूप धर्ममें नियत हैं, इसलिये
सत्यधर्मपरायण है ।

अभिप्रेयते पुरुषार्थकाङ्क्षिभिः,
आभिमुख्येन प्रलयोऽस्मिन्निति
जगदिति वा अभिप्रायः ।

पुरुषार्थके इच्छुक पुरुष भगवान्का
अभिप्राय अर्थात् अभिलाषा रगते है,
अथवा प्रलयके समय संसार उनके सम्मुख
जाता है, इसलिये वे अभिप्राय हैं ।

प्रियाणि इष्टान्यर्हतीति प्रियार्हः ।
'यद्यदिष्टतमं' लोके
यच्चास्य दयितं गृहे ।
तत्तद्गुणवते देयं
तदेवाक्षयमिच्छता ॥'
(इमं ३।३१)

इति सरणात् ।

प्रिय-इष्ट वस्तु निवेदन करने योग्य
है, इसलिये प्रियार्ह हैं । स्मृति कहती
है- 'मनुष्यको संसारमें जो सबसे
अधिक प्रिय हो तथा उसके घरमें जो
उसकी सबसे प्यारी वस्तु हो, उसे
यदि अक्षय करनेकी इच्छा हो तो
गुणवान्को दे देने चाहिये ।'

स्वागतासनप्रशंसाध्यपाद्यस्तु-
तिनमस्कारादिभिः पूजामाधनैः
पूजनीय इति अर्हः ।

भगवान् स्वागत, आसन, प्रशंसा,
अर्घ्य, पाद्य, स्तुति और नमस्कार
आदि पूजाके साधनोंसे पूजनीय हैं,
इसलिये अर्ह हैं ।

न केवलं प्रियार्ह एव, किन्तु
स्तुत्यादिभिर्भजतां प्रियं करो-
तीति प्रियकृत् ।

केवल प्रियार्ह ही नहीं हैं बल्कि
स्तुति आदिके द्वारा भजनेवालोंका प्रिय
करते हैं, इसलिये प्रियकृत् भी हैं ।

तेषामेव प्रीतिं वर्धयतीति उन्हींकी प्रीति भी बढ़ाते हैं, इसलिये प्रीतिवर्धनः ॥१०६॥ प्रीतिवर्धन हैं ॥१०६॥

विहायसगतिज्योतिः सुरुचिर्हुतमुग्निभुः ।

रविर्विरोचनः सूर्यः सविता रविलोचनः ॥१०७॥

८७६ विहायसगतिः, ८७७ ज्योतिः, ८७८ सुरुचिः, ८७९ हुतमुक्, ८८० विभुः । ८८१ रविः, ८८२ विरोचनः, ८८३ सूर्यः, ८८४ सविता, ८८५ रविलोचनः ॥

विहायसं गतिराश्रयोऽस्येति जिसकी गति अर्थात् आश्रय विहायसगतिः, विष्णुपदम् आदि- यस (आकाश) है वह विष्णुपद- न्यो वा । अथवा आदित्य ही विहायसगति हैं ।

स्वत एव द्योतत इति ज्योतिः, स्वयं ही प्रकाशित होते हैं, इसलिये 'नारायणपरम ज्योतिरात्मा' (ना० उ० १३ । १) इति मन्त्रवर्णात् । ज्योति हैं; जैसा कि मन्त्रवर्ण कहता है— 'नारायण परम ज्योतिरूप है ।'

शोभना रुचिर्दीप्तिरिच्छा वा भगवान्की रुचि—दीप्ति अथवा अस्म्येति सुरुचिः । इच्छा सुन्दर है, इसलिये वे सुरुचि हैं ।

समस्तदेवतादेशेन प्रवृत्तेष्वपि समस्त देवताओंके उद्देश्यसे भी किये कर्मसु हुतं भुङ्क्ते भुनक्तीति वा हुतमुक् । हुए कर्मोंमें आहुतियोंका [स्वयम्] भोगते हैं अथवा उनकी रक्षा करते हैं, इसलिये हुतमुक् हैं ।

सर्वत्र वर्तमानत्वात्, त्रयाणां सर्वत्र वर्तमान होने तथा तीनों लोकानां प्रभुत्वाद्वा विभुः । लोकोंके प्रभु होनेके कारण विभु हैं ।

रसानादक्ष इति रविः आदि- रसोंको ग्रहण करते हैं, इसलिये त्यात्मा सूर्यरूप भगवान् रवि हैं । विष्णु-

‘रसानाञ्च तथादाना-

द्रविरित्यभिधीयते ।’

(१।१०।११)

इति विष्णुधर्मोत्तरे ।

विविधं रोचत इति विरोचनः ।

सूते श्रियमिति सूर्योऽग्निर्वा सूर्यः
सूतः सुवत्तर्वा सूर्यशब्दो निपात्यते,
‘राजमूयमूर्य’ (पा० सू० ३।१।१।
११४) इति पाणिनिवचनात्
सूर्यः ।

मर्वस्य जगतः प्रसविता मविता;
‘प्रजाना तु प्रसवनासवितेति निगद्यते’
(१।३०।१५) इति विष्णु-
धर्मोत्तरे ।

रविलोचनं चक्षुरस्येति रविलो-
चनः, ‘अग्निर्मूर्धा चक्षुर्गो चन्द्रमूर्यौ’
(मु० उ० २।१।४) इति
श्रुतेः ॥ १०७ ॥

धर्मोत्तरपुराणमें कहा है—‘रसोंका
ग्रहण करनेके कारण ‘रवि’
कहलाते हैं ।’

विविध प्रकारसे सुशोभित होते
हैं, इसलिये विरोचन हैं ।

श्री (शोभा) को जन्म देते हैं,
इसलिये सूर्य या अग्नि सूर्य हैं ।
‘राजमूयसूर्य’ इत्यादि पाणिनि-सूत्रके
अनुसार घूँड़ या घूर् भातुमे सूर्य शब्दका
निपातन किया जाता है ।

सम्पूर्ण जगत्का प्रसव (उत्पत्ति)
करनेवाले होनेसे भगवान् सविता हैं ।
विष्णुधर्मोत्तरपुराणमें कहा है—
‘प्रजाओंका प्रसव करनेसे आप
सविता कहलाते हैं ।’

रवि भगवान्का लोचन अर्थात्
नेत्र है, इसलिये वे रविलोचन हैं ।
श्रुति कहती है—‘अग्नि उसका शिर
है तथा सूर्य और चन्द्र नेत्र
हैं’ ॥१०७॥



अनन्तो हृतभुग्भोक्ता सुखदो नैकजोऽग्रजः ।

अनिर्विण्णः सदामर्षी लोकाधिष्ठानमद्भुतः ॥१०८॥

१-एक प्राणिगर्भविमोचने (अदादि) इसके ‘सूते’ आदि रूप होते हैं ।

२-ए औरके (तुदादि) इसके ‘सुवत्ति’ आदि रूप होते हैं ।

८८६ अनन्तः, ८८७ हुतभुक्, ८८८ भोक्ता, ८८९ सुखदः, [असुखदः],
८९० नैकजः, ८९१ अग्रजः । ८९२ अनिर्विण्णः, ८९३ सदामर्षी, ८९४
लोकाधिष्ठानम्, ८९५ अद्भुतः ॥

नित्यत्वात्सर्वगतत्वाद् देश-
कालपरिच्छेदाभावात् अनन्तः;
शेषरूपो वा ।

हुतं धुनक्तीति हुतभुक् ।

प्रकृतिं भोग्याम् अचेतनां भुङ्क्ते
इति, जगत्पालयतीति वा भोक्ता ।

भक्तानां सुखं मोक्षलक्षणं
ददतीति सुखदः । असुखं द्यति
खण्डयतीति वा असुखदः ।

धर्मगुप्तं असकृज्जायमानत्वाद्
नैकजः ।

अग्रे जायत इति अग्रजः हिरण्य-
गर्भः, 'हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे'
(ऋ० सं० १० । १२१ । १)
इत्यादिश्रुतः ।

अवाप्तसर्वकामत्वादप्राप्तिहेत्व-
भावाभिर्वेदोऽस्य नास्तीति अनि-
र्विण्णः ।

नित्य, सर्वगत और देशकालपरि-
च्छेदका अभाव होनेके कारण भगवान्
अनन्त हैं । अथवा शेषरूप भगवान्
हां अनन्त हैं ।

हवन किये हुएको भोगते हैं, इस-
लिये हुतभुक् है ।

भोग्यरूपा अचेतन प्रकृतिको
भोगते हैं, इसलिये अथवा जगत्का
पालन करते हैं, इसलिये भोक्ता
हैं ।

भक्तोंको मोक्षरूप सुख देते हैं, इसलिये
सुखद हैं अथवा उनके असुखका दलन-
खण्डन करते हैं, इसलिये असुखद हैं ।

धर्म-रक्षाके लिये बारम्बार जन्म
लेनेके कारण नैकज हैं ।

सबसे आगे उत्पन्न होते हैं, इसलिये
हिरण्यगर्भरूपसे अग्रज हैं । श्रुति
कहती है—'पहले हिरण्यगर्भ ही
वर्तमान था ।'

सर्व कामनाएँ प्राप्त होनेके कारण
अप्राप्तिके हेतुका अभाव होनेसे
परमात्माको निर्वेद (खेद) नहीं है,
इसलिये वे अनिर्विण्ण हैं ।

सतः साधून् आभिमुख्येन
मृष्यते क्षमत इति सदामर्षी ।

साधुओंको अपने सम्मुख सहन
करते अर्थात् क्षमा करते हैं, इसलिये
सदामर्षी हैं ।

तमनाधारमाधारमधिष्ठाय त्रयो
लोकास्तिष्ठन्ति इति लोकाधिष्ठानं
ब्रह्म ।

उस निराधार ब्रह्मके आश्रयसे
तीनों लोक स्थित हैं, इसलिये वह
लोकाधिष्ठान हैं ।

अद्भुतत्वात् अद्भुतः,
'श्रवणायापि बहुभियों न लभ्यः
शृण्वन्तोऽपि बहवो यं न विद्युः ।

'जो बहुतोंको तो सुननेको भी
नहीं मिलता और बहुतसे जिसे सुन-
कर भी नहीं जानते उस (ब्रह्म) का
वक्ता आश्चर्यरूप है तथा उसका
लब्धा-समझनेवाला भी कोई निपुण
ही होता है । तथा निपुण आचार्यसे
उपदेश पाकर इसे समझ लेनेवाला भी
आश्चर्यरूप ही है'—इस श्रुतिसे, और

आश्चर्यो वक्ता कुशलोऽयं लब्धा
आश्चर्यो ज्ञाता कुशलानुशिष्टः ॥'
(क० उ० १।२।७)

'आश्चर्यके समान इसे कोई देख
पाता है ।' इस भगवान्‌के वाक्यसे भी
अद्भुत होनेके कारण भगवान् अद्भुत
हैं । अथवा अपने स्वरूप, शक्ति,
व्यापार और कार्य अद्भुत होनेके
कारण वे अद्भुत हैं ॥१०८॥

इति श्रुतेः । 'आश्चर्यवत्पश्यति
कश्चिदेनम्' (गीता २।२९)
इति भगवद्वचनाच्च । स्वरूपशक्ति-
व्यापारकार्यैरद्भुतत्वाद्वा अद्भुतः
॥१०८॥

—१०८—

सनात्सनातनतमः कपिलः कपिरप्ययः ।

स्वस्तिदःस्वस्तिकृत्स्वस्ति स्वस्तिभुक्स्वस्तिदक्षिणः॥१०९॥

८९.६ सनात्, ८९.७ सनातनतमः, ८९.८ कपिलः, ८९.९ कपिः, ९.००
अप्ययः । ९.०१ स्वस्तिदः, ९.०२ स्वस्तिकृत्, ९.०३ स्वस्ति, ९.०४ स्वस्तिभुक्,
९.०५ स्वस्तिदक्षिणः ॥

सनात् इति निपातविरार्य-
वचनः । कालश्च परस्यैव विकल्पना
कापि ।

‘परस्य ब्रह्मणो रूपं

पुरुषः प्रथमं द्विज ।

व्यक्ताव्यक्ते तथैवान्ये

रूपे कालस्तथापरम् ॥’

(१ । २ । १५)

इति विष्णुपुराणे ।

मर्वकारणत्वाद् विरिञ्चयादीना-
मपि सनातनानामतिशयेन मना-
तनत्वान् सनातनतम ।

बडवानलस्य कपिलो वर्ण
इति तद्रूपी कपिलः ।

कं जलं रदिममिः पिबन् कपिः
सूर्यः कपिर्वराहो वा. ‘कपिर्वराहः
श्रेष्ठश्च’ इति वचनात् ।

प्रलयं असिञ्चपियन्ति जग-
न्तीति अप्यय ।

इति नाम्नां नवमं शतं विवृतम् ।

भक्तानां स्वस्ति मङ्गलं ददा-
तीति स्वस्तिदः ।

सनात् यह एक चिरकाल-बाची
निपात है, काल भी परमात्माका ही
एक विकल्प है; जैसा कि विष्णु-
पुराणमें कहा है—‘हे द्विज! परब्रह्म-
का प्रथम रूप पुरुष है, दूसरे रूप व्यक्त
और अव्यक्त हैं तथा फिर काल है ।’

सबके कारण होनेसे भगवान् ब्रह्मा
आदि सनातनसे भी अत्यन्त सनातन
होनेके कारण सनातनतम हैं ।

बडवानलका कपिल (पिङ्गल)
वर्ण होता है अतः बडवानलरूप
भगवान् कपिल हैं ।

अपनी किरणोंसे क अर्थात् जलको
पीनेके कारण सूर्यका नाम कपि है ।
अथवा वराह भगवान् कपि हैं; जैसा
कि कहा है—‘कपि वराह और
श्रेष्ठ है ।’

प्रलयकालमें जगत् भगवान्में अप-
गत (विहीन) होते हैं, इसलिये वे
अप्यय हैं ।

यहाँतक सहस्रनामके नवें शतक-
का विवरण हुआ ।

भक्तोंको स्वस्ति अर्थात् मङ्गल देने
हैं, इसलिये स्वस्तिद हैं ।

तदेव करोतीति स्वस्तिकृत् ।

मङ्गलस्वरूपमात्मीयं परमानन्द-
लक्षणं स्वस्ति ।

तदेव भुङ्क्त इति स्वस्तिभुक्;
भक्तानां मङ्गलं स्वस्ति भुनक्तीति
वा स्वस्तिभुक् ।

स्वस्तिरूपेण दक्षते वर्धते,
स्वस्ति दातुं समर्थ इति वा स्वस्ति-
दक्षिणः । अथवा दक्षिणशब्द
आशुकारिणि वर्तते: शीघ्रं स्वस्ति
दातुं अयमेव समर्थ इति, यस्य
स्मरणदेव मिध्यन्ति सर्वमिद्वयः,
'स्मृते सकृदकल्याण-

भाजनं यत्र जायते ।

पुरुषस्तमजं नित्यं

ब्रजामि शरणं हरिम् ॥'

(ब्रह्म ८३ । १०)

'स्मरणादेव कृष्णस्य

पापसंघातपञ्जरम् ।

शतधा भेदमायाति

गिरिर्वज्रहतो यथा ॥'

इत्यादिवचनेभ्यः ॥ १०९ ॥

वह [स्वस्ति] ही करते हैं, अतः
स्वस्तिकृत् हैं ।

भगवान्का मङ्गलमय निजस्वरूप
परमानन्दरूप है, इसलिये वे स्वस्ति हैं ।

वही (स्वस्ति ही) भोगते हैं और
भक्तोंके मङ्गल अर्थात् स्वस्तिकी रक्षा
करते हैं, इसलिये स्वस्तिभुक् हैं ।

स्वस्तिरूपमें बढ़ते हैं अथवा स्वस्ति
करनेमें समर्थ हैं, इसलिये स्वस्ति-
दक्षिण है । अथवा दक्षिण शब्दका
प्रयोग शीघ्र करनेवाटेके लिये भी होता
है । भगवान् ही शीघ्र स्वस्ति देनेमें
समर्थ है क्योंकि इनका स्मरणमात्रमें
सब सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं; [इस-
लिये वे स्वस्तिदक्षिण हैं] इस विषयमें
'जिसके स्मरणसे पुरुष सम्पूर्ण
कल्याणका पात्र हो जाता है उस
अजन्मा और नित्य हरिणी में शरण
जाता हूँ ।' [तथा-] 'जैसे वज्रके लगनेसे
पर्वत टुकड़े-टुकड़े हो जाता है उसी
प्रकार कृष्णके स्मरणमात्रसे ही
पाप-संघातरूप पञ्जरके सैकड़ों टुकड़े
हो जाते हैं' इत्यादि वचन प्रमाण
है ॥ १०९ ॥



अरौद्रः कुण्डली चक्री विक्रम्यूर्जितशासनः ।

शब्दातिगः शब्दसहः शिशिरः शर्वरीकरः ॥ ११० ॥

९०६ अरौद्रः, ९०७ कुण्डली, ९०८ चक्री, ९०९ विक्रमी, ९१० ऊर्जित-
शासनः । ९११ शब्दातिगः, ९१२ शब्दसहः, ९१३ शिशिरः, ९१४
शर्वरीकरः ॥

कर्म रौद्रम्, रागश्च रौद्रः,
कोपश्च रौद्रः; यस्य रौद्रत्रयं नास्ति
अवाप्तसर्वकामत्वेन रागद्वेषादेर-
भावात्स अरौद्रः ।

शेषरूपभाक् कुण्डली सहस्रांशु-
मण्डलोपमकुण्डलधारणाद्वा; यद्वा,
सांख्ययोगात्मके कुण्डले मकराकारे
अस्य स्त इति कुण्डली ।

ममस्तलोकरक्षार्थमनस्तत्त्वात्मकं
सुदर्शनाख्यं चक्रं धत्त इति चक्री,

‘चक्रस्वरूपमत्यन्त-

जवेनान्तरितानिलम् ।

चक्रस्वरूपं च मनो

धत्ते विष्णुः करे स्थितम् ॥’

(१ । २२ । ७१)

इति विष्णुपुराणवचनात् ।

विक्रमः पादविक्षेपः, शौर्यं वा;
द्रव्यं चाशेषपुरुषेभ्यो त्रिलक्षणम-
स्येति विक्रमी ।

श्रुतिस्मृतिलक्षणमूर्जितं शासन-
मस्येति ऊर्जितशासनः ।

कर्म, राग और कोप ये रौद्र हैं;
आप्तकाम होनेके कारण राग-द्वेषका
अभाव होनेसे जिनमें ये तीनों रौद्र
नहीं हैं, वे भगवान् अरौद्र हैं ।

शेषरूपधारी होनेसे कुण्डली है
अथवा सूर्यमण्डलके समान कुण्डल
धारण करनेसे कुण्डली हैं । अथवा
इनके सांख्य और योगरूप मकराकृति
कुण्डल हैं, इसलिये कुण्डली हैं ।

सम्पूर्ण लोकोंकी रक्षाके लिये
मनस्तत्त्वरूप सुदर्शनचक्र धारण करते
हैं, इसलिये चक्री हैं । विष्णुपुराणमें
कहा है—‘श्रीविष्णु अत्यन्त वेगसे
वायुकी भी हरानेवाला चक्राल-
खक्रस्वरूप मन अपने हाथमें धारण
करते हैं ।’

भगवान्का विक्रम-पादविक्षेप
(डग) अथवा शूरवीरता दोनों ही
समस्त पुरुषोंसे त्रिलक्षण हैं, इसलिये वे
विक्रमी हैं ।

उनका श्रुति-स्मृतिरूप शासन
अत्यन्त उत्कृष्ट है, इसलिये वे ऊर्जित-
शासन हैं । भगवान्ने कहा है—

‘श्रुतिस्मृती ममैवाङ्गे
यस्ते उल्लङ्घ्य वर्तते ।

आज्ञाच्छेदी मम द्वेषी
मद्रक्तोऽपि न वैष्णवः ॥’

इति भगवद्बचनात् ।

शब्दप्रवृत्तिहेतूनां जात्यादीनाम-
सम्भवात् शब्देन वक्तुमशक्यत्वात्
शब्दातिगः ।

‘यतो वाचो निर्वर्तन्ते

अप्राप्य मनसा सह ।’

(सू० ४० २ । ४)

‘न शब्दगोचरं यम्य

योगिभ्येयं परं पदम् ।’

(वि० पु० १ । १० । २२)

इत्यादिश्रुतिस्मृतिभ्यः ।

सर्वे वेदाः तात्पर्येण तमेव
वदन्तीति शब्दसहः; ‘सर्वे वेदा
यपदमामनन्ति’ (क० उ० १ । २ । १५)
इति श्रुतेः; ‘वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः’
(गीता १५ । १५) इति स्मृतेश्च ।

तापत्रयाभितप्तानां विश्रामस्थान-
त्वात् शिशिरः ।

संसारिणामात्मा शर्वरीव शर्वरी;
ज्ञानिनां पुनः संसारः शर्वरी;

‘श्रुति, स्मृति मेरी ही आज्ञायें हैं जो
उनका उल्लङ्घन करके वर्तता है वह
मेरी आज्ञाका तोड़नेवाला पुण्य मेरा
द्वेषी है—वह न मेरा भक्त है और न
वैष्णव ही है ।’

शब्दकी प्रवृत्तिके हेतु जाति आदि
भगवान्में सम्भव न होनेके कारण वे
शब्दसे नहीं कहे जा सकते, इसलिये
शब्दातिग हैं । ‘जिसे प्राप्त न होकर
मनसहित वाणी लौट आती है’
‘जिसका योगियोंसे ध्यान किया
जानेवाला पद शब्दका विषय नहीं है ।’
इत्यादि श्रुति-स्मृतियोंसे [यही बात
सिद्ध होती है] ।

समस्त वेद तात्पर्यरूपसे भगवान्का
ही वर्णन करने हैं, इसलिये वे शब्दसह
हैं; जैसा कि ‘जिस[ग्रन्थ]पदका समस्त
वेद वर्णन करते हैं’ इत्यादि श्रुति
और ‘समस्त वेदोंसे भी मैं ही जानने
योग्य हूँ’ इत्यादि स्मृति कहती है ।

तापत्रयसे तपे हुआओंके लिये विश्राम-
के स्थान होनेके कारण शिशिर हैं ।

संसारियोंके लिये आत्मा शर्वरी
(रात्रि) के समान शर्वरी हैं तथा
ज्ञानियोंको संसार ही शर्वरी है ।

तासुभयेषां करोतीति शर्वरीकरः; उन (ज्ञानी-अज्ञानी) दोनोंकी शर्वरियों-
 'या निशा सर्वभूतानां के करनेवाले होनेसे भगवान् शर्वरीकर
 तस्यां जागर्ति संयमी । है । जैसा कि भगवान्ने कहा है—
 यस्यां जाग्रति भूतानि 'समस्त भूतोंकी जो रात्रि है उसमें
 सा निशा पश्यतो मुनेः ॥' संयमी पुरुष जागता है और जिसमें
 (गीता २ । ६९) सब भूत जागते हैं द्रष्टा (तत्त्वज्ञानी)
 इति भगवद्वचनात् ॥११०॥ मुनिके लिये वही रात्रि है' ॥११०॥

अक्रूरः पेशलो दक्षो दक्षिणः क्षमिणां वरः ।

विद्वत्तमो वीतभयः पुण्यश्रवणकीर्तनः ॥१११॥

०.१५ अक्रूरः, ०.१६ पेशलः, ०.१७ दक्षः, ०.१८ दक्षिणः, ०.१९ क्षमिणां
 वरः । ०.२० विद्वत्तमः, ०.२१ वीतभयः, ०.२२ पुण्यश्रवणकीर्तनः ॥

कौर्यं नाम मनोधर्मः प्रकोपजः क्रूरता मनका धर्म हैं, यह क्रोधसे
 आन्तरः सन्तापः साभिनिवेशः उत्पन्न होनेवाला अभिनिवेशयुक्त
 अवाससमस्तकामत्वात्कामाभावा- आन्तरिक सन्ताप है । आप्तकाम होनेसे
 देव कोपाभावः; तस्मात्कौर्यमस्य कामनाओंका अभाव होनेके कारण ही
 नास्तीति अक्रूरः । भगवान्में क्रोधका भी अभाव है,
 अतः भगवान्में क्रूरता नहीं है, इसलिये
 वे अक्रूर हैं ।

कर्मणा मनसा वाचा वपुषा च कर्म, मन, वाणी और शरीरसे सुन्दर
 शोभनत्वात् पेशलः । होनेके कारण भगवान् पेशल हैं ।

प्रबुद्धः शक्तः शीघ्रकारी च बड़ा-चढ़ा, शक्तिमान् तथा शीघ्र
 दक्षः, त्रयं चैतत् परस्मिन्नियतमिति कार्य करनेवाला—ये तीन दक्ष हैं । ये
 दक्षः । परमात्मानमें निश्चित हैं, इसलिये वे दक्ष हैं ।

दक्षिणशब्दस्यापि दक्ष एवार्थः,
पुनरुक्तिदोषो नास्ति, शब्दभेदात्;
अथवा दक्षते गच्छति, हिनस्तीति
वा दक्षिणः, 'दक्ष गतिहिंसनयोः'
इति धातुपाठात् ।

क्षमावतां योगिनां च पृथिव्या-
दीनां भारधारकाणां च श्रेष्ठ इति
क्षमिणां वरः । 'क्षमया पृथिवीसमः'
(वा० रा० १ । १ । १८) इति
वाल्मीकिवचनात्; ब्रह्माण्डमग्निलं
बहन् पृथिवीव भारेण नादित इति
पृथिव्या अपि वरो वा; क्षमिणः
शक्ताः; अयं तु सर्वशक्तिमत्त्वात्स-
कलाः क्रियाः कर्तुं क्षमत इति वा
क्षमिणां वरः ।

निरस्तातिशयं ज्ञानं सर्वदा सर्व-
गोचरमस्यास्ति नेतरेषामिति
विद्वन्तमः ।

वीतं विगतं भयं सांसारिकं
संसारलक्षणं वा अस्येति वीतभय,
सर्वेश्वरत्वाभित्यमुक्तत्वाच्च ।

दक्षिण शब्दका अर्थ भी दक्ष ही
है, शब्द-भेद होनेके कारण यहाँ
पुनरुक्ति दोष नहीं है । अथवा 'दक्ष
धातुका गति और हिंसा अर्थमें
प्रयोग होता है' इस धातुपाठके अनुसार
भगवान् [सब ओर] जाते और [सबको]
मारते हैं, इसलिये दक्षिण है ।

क्षमा करनेवाले योगियों और भार
धारण करनेवाले पृथिवी आदिमें श्रेष्ठ
हैं, इसलिये क्षमिणां वर है । वाल्मीकि-
जीका कथन है '[राम] क्षमामें
पृथिवीके समान हैं ।' अथवा 'सम्पूर्ण
ब्रह्माण्डको धारण करते हुए भी पृथिवीके
समान उसके भारसे पीड़ित नहीं होते,
इसलिये पृथिवीमें भी श्रेष्ठ होनेके कारण
क्षमिणा वर है । अथवा क्षमा समर्थोंको
कहते हैं, भगवान् सर्वशक्तिमान् होनेके
कारण सभी कर्म करनेमें समर्थ हैं,
इसलिये वे क्षमिणां वर हैं ।

भगवान्को सदा सब प्रकारका
निरतिशय ज्ञान है और किसीको नहीं
है, इसलिये वे विद्वन्तम हैं ।

सर्वेश्वर और नित्यमुक्त होनेके
कारण भगवान्का सांसारिक अर्थात्
संसाररूप भय वीत [निवृत्त हो]
गया है, इसलिये वे वीतभय हैं ।

पुण्यं पुण्यकरं श्रवणं कीर्तनं
चास्येति पुण्यश्रवणकीर्तनः,
'य इदं शृणुयान्नित्यं
यश्चापि परिकीर्तयेत् ।
नाशुभं प्राप्नुयात्किञ्चित्
सोऽमुत्रेह च मानवः ॥'
(वि० स० ११२)
इति श्रवणादिफलवचनात् ॥१११॥

भगवान्का श्रवण और कीर्तन
पुण्यरूप अर्थात् पुण्यकारक है, इसलिये
वे पुण्यश्रवणकीर्तन हैं; क्योंकि 'जो
इसे नित्य सुनता है और जो इनका
कीर्तन करता है उस मनुष्यको इस
लोक या परलोकमें बुरा फल नहीं
मिलता है' इत्यादि वाक्योंसे श्रवणका
फल बतलाया गया है ॥१११॥



उत्तारणो दुष्कृतिहा पुण्यो दुःस्वप्ननाशनः ।

वीरहा रक्षणः सन्तो जीवनः पर्यवस्थितः ॥११२॥

०.२३ उत्तारणः, ०.२४ दुष्कृतिहा, ०.२५ पुण्यः, ०.२६ दुःस्वप्ननाशनः ।
०.२७ वीरहा, ०.२८ रक्षणः, ०.२९ सन्तः, ०.३० जीवनः, ०.३१ पर्यवस्थितः ॥

मंसारसागरादुच्चारयतीति
उत्तारणः ।

संसार-सागरसे पार उतारते है,
इसलिये उत्तारण है ।

दुष्कृतीः पापमंजिना हन्तीति
दुष्कृतिहा, ये पापकारिणस्तान्हन्तीति
वा दुष्कृतिहा ।

पापनामकी दुष्कृतियोंका हनन करते
हैं, इसलिये दुष्कृतिहा हैं; अथवा जो
पाप करनेवाले हैं उन्हें मारते हैं, इसलिये
दुष्कृतिहा है ।

स्मरणादि कुर्वतां सर्वेषां पुण्यं
करोतीति, सर्वेषां श्रुतिस्मृति-
लक्षणया वाचा पुण्यमाचष्ट इति
वा पुण्यः ।

स्मरण आदि करनेवाले सब पुरुषों-
को पवित्र कर देते हैं, इसलिये
अथवा श्रुति-स्मृतिरूप वाणीसे सबको
पुण्यका उपदेश देते हैं, इसलिये
पुण्य है ।

भाविनोऽनर्थस्य सूचकान्
दुःखमान् नाशयति ध्यातः स्तुतः

कीर्तितः पूजितश्चेति दुःखप्रनाशनः ।

विविधाः संसारिणां गती-
मृक्तिप्रदानेन हन्तीति वीरहा ।

सत्त्वं गुणमधिष्ठाय जगत्त्रयं
रक्षन् रक्षणः नन्दादित्वाकर्तारि
व्युः ।

सन्मार्गवर्तिनः सन्तः; तद्रूपेण
विद्याविनयवृद्धये स एव वर्तत
इति सन्तः ।

सर्वाः प्रजाः प्राणरूपेण जीवयन्
जीवनः ।

परितः सर्वतो विश्वं व्याप्या-
वस्थित इति पर्यवस्थितः ॥११२॥

ध्यान, स्मरण, कीर्तन और पूजन
किये जानेपर भावी अनर्थके सूचक
दुःखमोको नष्ट कर देते हैं, इसलिये
दुःखप्रनाशन* हैं ।

संसारियोंको मुक्ति देकर उनकी
विविध गतियोंका हनन करते हैं,
इसलिये वीरहा हैं ।

सत्त्वगुणके आश्रयसे तीनों लोकोंकी
रक्षा करनेके कारण रक्षण हैं । यहाँ
नन्दादिगण मानकर रक्षु धातुसे कर्ता
अर्थमें ल्यु प्रत्यय हुआ है ।

सन्मार्गपर चलनेवालोंको सन्त कहते
हैं । विद्या और विनयकी वृद्धिके लिये
सन्तरूपसे भगवान् स्वयं ही विराजते
हैं, इसलिये वे सन्त हैं ।

प्राणरूपसे समस्त प्रजाको जीवित
रखनेके कारण जीवन है ।

विश्वको परितः—सब ओरसे व्याप्त कर-
के स्थित है, इसलिये पर्यवस्थित हैं ॥११२॥

अनन्तरूपोऽनन्तश्रीर्जितमन्युर्भयापहः ।

चतुरश्रो गभीरात्मा विदिशो व्यादिशो दिशः ॥११३॥

१.३२ अनन्तरूपः, १.३३ अनन्तश्रीः, १.३४ जितमन्युः, १.३५ भयापहः ।

१.३६ चतुरश्रः, १.३७ गभीरात्मा, १.३८ विदिशः, १.३९ व्यादिशः, १.४० दिशः ॥

* संसाररूप दुःखमोका नाश करनेवाले हैं, इसलिये भी दुःखप्रनाशन हैं ।

अनन्तानि रूपाण्यस्य विश्व-
प्रपञ्चरूपेण स्थितस्येति अनन्तरूपः ।

अनन्ता अपरिमिता श्रीः परा
शक्तिरस्येति अनन्तश्रीः, 'परास्य
शक्तिर्विविधैव श्रूयते' (श्वे० उ० ६।
८) इति श्रुतेः ।

मन्युः क्रोधो जितो येन स
जितमन्युः ।

भयं संसारजं पुंसामपमन्
भयापहः ।

न्यायसमवेतः चतुरश्रः, पुंसां
कर्मानुरूपं फलं प्रयच्छतीति ।

आत्मा स्वरूपं चित्तं वा गभीरं
परिच्छेत्तुमशक्यमस्येति गभीरात्मा ।

विविधानि फलानि अधिकारि-
भ्यो विशेषेण दिशतीति विदिशः ।

विविधामाज्ञां शक्रादीनां कुर्वन्
व्यादिशः ।

समस्तानां कर्मणां फलानि
दिशन् वेदात्मना दिशः ॥११३॥

विश्वप्रपञ्चरूपसे स्थित हुए भगवान्-
के अनन्त रूप हैं, इसलिये वे
अनन्तरूप हैं ।

भगवान्की श्री अर्थात् पराशक्ति
अनन्त यानी अपरिमित है, इसलिये वे
अनन्तश्री हैं । श्रुति कहती है—
'इसकी पराशक्ति विविध प्रकारकी
ही सुनी जाती है ।'

जिन्होंने मन्यु अर्थात् क्रोधको
जीत लिया है वे भगवान् जितमन्यु हैं ।

पुरुषोंका संसारजन्य भय नष्ट
करनेके कारण भयापह है ।

पुरुषोंको उनके कर्मानुसार फल
देते हैं, इसलिये न्याययुक्त होनेके
कारण चतुरश्र हैं ।

भगवान्का आत्मा—स्वरूप अप्रवा-
मन गम्भीर है, उसका परिच्छेद—
परिमाण नहीं किया जा सकता, इसलिये
वे गभीरात्मा हैं ।

अधिकारियोंकी विशेषरूपसे विविध
प्रकारके फल देते हैं, इसलिये भगवान्
विदिश हैं ।

इन्द्रादिको विविध प्रकारकी आज्ञा
करनेसे व्यादिश हैं ।

वेदरूपसे समस्त कर्मियोंको उनके
कर्मोंके फल देते हैं, इसलिये दिश
हैं ॥ ११३ ॥

अनादिर्भूर्भुवो लक्ष्मीः सुवीरो रुचिराङ्गदः ।

जननो जनजन्मादिर्भीमो भीमपराक्रमः ॥११४॥

९४१ अनादिः, ९४२ भूर्भुवः, ९४३ लक्ष्मीः, ९४४ सुवीरः, ९४५ रुचिराङ्गदः । ९४६ जननः, ९४७ जनजन्मादिः, ९४८ भीमः, ९४९ भीमपराक्रमः ॥

आदिः कारणमस्य न विद्यत इति अनादिः, सर्वकारणत्वात् ।

सबके कारण होनेसे भगवान्का कोई आदि अर्थात् कारण नहीं है, इसलिये वे अनादि हैं ।

भूराधारः, भुवः सर्वभूताश्रयत्वेन प्रमिद्धाया भूम्याः, भुवोऽपि भूरिति भूर्भुवः ।

भू आधारको कहते हैं, भुवः अर्थात् समस्त भूतोंके आधाररूपसे प्रसिद्ध भूमिकी भी भू (आधार) हैं, इसलिये भगवान् भूर्भुवः हैं ।

अथवा, न केवलमसौ भूः भुवः, लक्ष्मीः शोभा चेति भुवो लक्ष्मीः । अथवा, भूः भूर्लोकः, भुवः भुवर्लोकः, लक्ष्मीः आत्मविद्या, 'आत्मविद्या च देवि त्वम्' इति श्रीस्तुतौ । भूम्यन्तरिक्षयोः शोभेति वा भूर्भुवो लक्ष्मीः ।

अथवा पृथिवीके केवल आधार ही नहीं बल्कि लक्ष्मी अर्थात् शोभा भी वे ही हैं, इसलिये लक्ष्मी हैं । अथवा भूर्लोकको भूः और भुवर्लोकको भुवः तथा आत्मविद्याको ही लक्ष्मी कहा है । श्रीस्तुतिमें कहा है—'हे देवि ! आत्मविद्या भी तू ही है ।' अथवा भूमि और अन्तरिक्षकी शोभा हैं, इसलिये ही भगवान् भूर्भुवो लक्ष्मी हैं ।

शोभना विविधा ईरा गतयो यस्य स सुवीरः, शोभनं विविधम् ईर्ते इति वा सुवीरः ।

जिनकी विविध ईरा—गतियाँ शुभ हैं वे भगवान् सुवीर हैं । अथवा वे विविध प्रकारसे सुन्दर ईरण (स्फुरण) करते हैं, इसलिये वे सुवीर हैं ।

रुचिरे कल्याणे अङ्गदे अस्येति
रुचिराङ्गदः ।

भगवान्के अङ्गद (भुजबन्ध) रुचिर
अर्थात् कल्याणरूप हैं, इसलिये वे
रुचिराङ्गद हैं ।

जन्तून् जनयन् जननः; ल्यु-
ङ्विधां बहुलग्रहणात्कर्तरि ल्युट्-
प्रत्ययः प्रयोगवचनादिवत् ।

जन्तुओंको उत्पन्न करनेके कारण
जनन हैं । 'कृत्यल्युटो बहुलम्'
(पा० सू० ३।३।११३) इस ल्युङ्-
विधायक सूत्रमें 'बहुलम्' शब्दका
उपादान होनेके कारण प्रयोगवचन
आदि शब्दोंकी भौति यहाँ कर्ता-अर्थमें
ल्युट् प्रत्यय हुआ है ।

जनस्य जनिमतो जन्म उद्भवः
तस्यादिर्मूलकारणमिति जन-
जन्मादि ।

जन्म लेनेवाले जीवके जन्म अर्थात्
उत्पत्तिके आदि यानी मूलकारण हैं,
इसलिये जनजन्मादि हैं ।

भयहेतुत्वाद् भीमः, 'भीमादयो-
ऽपादाने' (पा० सू० ३।४।७४)
इति निपातनात्, 'महद्भयं वज्रमुद्य-
तम्' इति श्रुतेः ।

भयके कारण होनेसे भीम हैं,
'भीमादयोऽपादाने' इस सूत्रके अनुसार
भीम शब्दका निपातन किया गया है ।
मन्त्रवर्ण कहता है—'महान् भयरूप
वज्र उद्यत (उठा हुआ) है ।'

असुरादीनां भयहेतुः पराक्रमो-
ऽस्यावतारेष्विति भीमपराक्रमः
॥ ११४ ॥

अवतारामे भगवान्का पराक्रम
असुरादिकोंके भयका कारण होता है,
इसलिये वे भीमपराक्रम हैं ॥ ११४ ॥



आधारनिलयोऽधाता पुष्पहासः प्रजागरः ।

ऊर्ध्वगः सत्पथाचारः प्राणदः प्रणवः पणः ॥ ११५ ॥

९५० आधारनिलयः, ९५१ अधाता, [धाता], ९५२ पुष्पहासः, ९५३
प्रजागरः । ९५४ ऊर्ध्वगः, ९५५ सत्पथाचारः, ९५६ प्राणदः, ९५७ प्रणवः,
९५८ पणः ॥

पृथिव्यादीनां पञ्चभूतानामा-
धाराणामाधारत्वात् आधारनिलयः ।

स्वात्मना धृतस्यास्यान्यो धाता
नास्तीति अधाता; 'नधृतश्च' (पा०
सू० ५ । ४ । १५३) इति 'समा-
सान्तविधिरनित्यः' (परिभाषेन्दुशेखरे
८६) इति कप्रत्ययाभावः ।
संहारममये सर्वाः प्रजा धयति
पिबतीति वा धाता; धेट् पाने इति
धातुः ।

मुकुलात्मना स्थितानां पुष्पाणां
हासवत् प्रपञ्चरूपेण विकासो-
ऽस्येति पुष्पहासः ।

नित्यप्रबुद्धस्वरूपत्वात् प्रकर्षेण
जागतीति प्रजागरः ।

सर्वेषामुपरि तिष्ठन् ऊर्ध्वगः ।

सतां कर्माणि सत्पथास्तानाच-

रत्येष इति सत्पथाचारः ।

मृतान् परिक्षित्प्रभृतीन् जीवयन्
प्राणदः ।

पृथिवी आदि पञ्चभूत आधारोंके
भी आधार हैं, इसलिये परमेश्वर
आधारनिलय हैं ।

अपने आप स्थित हुए भगवान्का
कोई और धाता (बनानेवाला) नहीं
है, इसलिये वे अधाता हैं । यहाँ
'नधृतश्च' इस सूत्रसे प्राप्त होनेवाले
'कप्' प्रत्ययका 'समासान्त-विधि
अनित्य होती है' इस परिभाषाके
अनुसार अभाव है । अथवा प्रलय-
कालमें सम्पूर्ण प्रजाका ध्वन अर्थात्
पान करने हैं, इसलिये धाता है । यहाँ
[धाता शब्दमें] पान-अर्थका वाचक
धेट् धातु है ।

कलिकारूपसे स्थित पुष्पोंके हास
(खिलने) के समान भगवान्का प्रपञ्च-
रूपसे विकास होता है, इसलिये वे
पुष्पहास हैं ।

नित्यप्रबुद्ध होनेके कारण प्रकर्षरूपसे
जागते हैं, इसलिये भगवान् प्रजागर हैं ।

सबसे ऊपर रहनेके कारण ऊर्ध्वग हैं ।

सत्पुरुषोंके कर्मोंको सत्पथ कहते
हैं उनका आचरण करते हैं, इसलिये
सत्पथाचार है ।

परिक्षित् आदि मरे हुएोंको जीवित
करनेके कारण प्राणद हैं ।

प्रणवो नाम परमात्मनो वाचक
ओङ्कारः तदभेदोपचारेणायं
प्रणवः ।

पणतिर्ध्यवहारार्थः तं कुर्वन्
पणः,
'सर्वाणि रूपाणि विचित्य धीरो

नामानि कृत्वाभिवदन्यदास्ते ॥

(सै० आ० उ० १।२।७)

इति श्रुतेः । पुण्यानि सर्वाणि
कर्माणि पणं सङ्गृह्याधिकारिभ्यः
तत्फलं प्रयच्छतीति वा लक्षण्या
पणः ॥११५॥

परमात्माके वाचक ओङ्कारका नाम
प्रणव है, उसके साथ अभेदका उपचार
(व्यवहार) होनेसे परमात्मा प्रणव है ।

पण धातुका व्यवहार अर्थ है,
व्यवहार करनेके कारण भगवान्
पण हैं । श्रुति कहती है—'धीर पुण्य
सर्व रूपोंको विचारकर उनके नामकी
कल्पना करके कहता हुआ स्थित
होता है' अथवा समग्र पुण्यकर्मोंका
पणरूपसे संग्रह करके अधिकारियोंको
उनका फल देते हैं, इसलिये लक्षणा-
वृत्तिसे पण कहे जाते हैं ॥११५॥

—००००००००—

प्रमाणं प्राणनित्यः प्राणभृत्प्राणजीवनः ।

तत्त्वं तत्त्वविदेकात्मा जन्ममृत्युजरातिगः ॥११६॥

०.५०. प्रमाणम्, ०.६० प्राणनित्यः, ०.६१ प्राणभृत्, ०.६२ प्राणजीवनः ।

०.६३ तत्त्वं, ०.६४ तत्त्ववित्, ०.६५ एकात्मा, ०.६६ जन्ममृत्युजरातिगः ॥

प्रमितिः संवित्स्वयंप्रमा प्रमा-
णम्, 'प्रज्ञानं ब्रह्म' (पे० उ० ३।
५।३) इति श्रुतेः ।

'ज्ञानस्वरूपमात्यन्त-

निर्मलं परमार्थतः ।

तमेवार्थस्वरूपेण

भ्रान्तिदर्शनतः स्थितम् ॥'

(१।२।६)

इति विष्णुपुराणे ।

१७

प्रमिति -मंत्रित् अर्थात् स्वयं प्रमा-
रूप होनेसे भगवान् प्रमाण है । श्रुति
कहती है—'प्रज्ञान ब्रह्म है ।' विष्णु-
पुराणमें कहा है—'जो परमार्थतः
अत्यन्त निर्मल ज्ञानरूप है, किन्तु
भ्रान्तिदर्शनके कारण पदार्थरूपसे
स्थित है [उन्हें प्रमाण करके] ।'

प्राणा इन्द्रियाणि यत्र जीवे
निलीयन्ते तत्परतन्त्रत्वात्, देहस्य
धारकाः प्राणापानादयो वा
तस्मिन्निलीयन्ते, प्राणितीति प्राणो
जीवः परे पुंसि निलीयत इति वा
प्राणान् जीवांश्च संहरन्मिति वा
प्राणनिलयः ।

पोष्यअन्नरूपेण प्राणान्
प्राणभृत् ।

प्राणिनो जीवयन् प्राणाख्यैः
पवनैः प्राणजीवनः ।

‘न प्राणेन नापानेन
मर्त्यो जीवति कश्चन ।
इतरेण तु जीवन्ति
यस्मिन्नेतावुपाश्रितौ ॥’
(क० उ० १।५।५)

इति मन्त्रवर्णात् ।

तत्त्वं तथ्यममृतं सत्यं परमार्थतः
सतत्त्वमित्येते एकार्थवाचिनः
परमार्थसतो ब्रह्मणो वाचकाः
शब्दाः ।

तत्त्वं स्वरूपं यथावद्वेत्तीति
तत्त्ववित् ।

उसके अधीन होनेसे प्राण अर्थात्
इन्द्रियाँ जिस जीवमें लीन होती हैं
[वह प्राणनिलय है] । अथवा
देहधारण करनेवाले प्राण, अपान
आदि उसमें (जीवमें) लीन होते हैं, इस-
लिये [वह प्राणनिलय है], जो प्राणित
(जीवित) रहता है वह जीव ही
प्राण है, वह परम पुरुषमें लीन होता
है, इसलिये [परमपुरुष प्राणनिलय
है] । अथवा प्राण और जीवोंको
अपने आपमें संवृत करते हैं, इसलिये
प्राणनिलय है ।

अन्नरूपसे प्राणोका पोषण करनेके
कारण प्राणभृत् है ।

प्राण नामक वायुसे प्राणियोंको
जीविन रग्यनेके कारण प्राणजीवन है ।
मन्त्रवर्ण कहता है—‘कोई भी मनुष्य
न प्राणसे जीता है न अपानसे, बल्कि
किसी औरहीसे जीते हैं जिसमें कि
ये दोनों आश्रित हैं ।’

तथ्य, अमृत, सत्य और परमार्थतः
सतत्त्व ये सत्र शब्द एक वास्तविक
सत्स्वरूप ब्रह्मके ही वाचक हैं, अतः
वह तत्त्व है ।

तत्त्व अर्थात् स्वरूपको यथावत्
जानते हैं, इसलिये भगवान् तत्त्ववित् हैं ।

एकश्चासावात्मा चेति एकात्मा,
'आत्मा वा इदमेक एवाम आसीत्'
(ऐ० उ० १।१) इति श्रुतेः,

'यच्चाप्नोति यदादत्ते

यच्चाति विषयानिह ।

यच्चास्य सन्ततो भाव-

स्तस्मादात्मेति गीयते ॥'

इति स्मृतेश्च ।

जायते अस्ति वर्धते विपरिणमते
अपक्षीयते नश्यति इति षड्भाव-
विकारानतीत्य गच्छतीति जन्म-
मृत्युजराणि, 'न जायते म्रियते वा
विपश्चित्' (क० उ० १।२।१८)
इति मन्त्रवर्णान् ॥११६॥

भगवान् एक आत्मा हैं, इसलिये वे
एकात्मा हैं । श्रुति कहती है—'पहले
यह एक आत्मा ही था।' स्मृतिका भी
कथन है—'क्योंकि सब विषयोंको
प्राप्त करता, प्रहण करता और
भक्षण करता है तथा निरन्तर वर्तमान
रहता है इसलिये यह आत्मा कहा
जाता है ।'

जन्म लेना, होना, बढ़ना, बढ़लना,
क्षीण होना और नष्ट होना—ये छः भाव-
विकार हैं । इनका अतिक्रमण कर जाते
हैं, इसलिये भगवान् जन्ममृत्युजरातिग
हैं, जैसा कि मन्त्रवर्ण कहता है—
'ज्ञानस्वरूप आत्मा न जन्म लेता है
न मरता है' ॥११६॥



भूर्भुवःस्वस्तरुस्तारः सविता प्रपितामहः ।

यज्ञो यज्ञपतिर्यज्ञा यज्ञाङ्गो यज्ञवाहनः ॥११७॥

९६७ भूर्भुवःस्वस्तरुः, ९६८ तारः, ९६९ सविता, ९७० प्रपितामहः ।

९७१ यज्ञः, ९७२ यज्ञपतिः, ९७३ यज्ञा, ९७४ यज्ञाङ्गः, ९७५ यज्ञवाहनः ॥

भूर्भुवःस्वःसमाख्यानि त्रीणि
व्याहृतिरूपाणि शुक्राणि त्रयी-
साराणि बह्वृचा आहुः; तैर्हो-
मादिना जगत्त्रयं तरति, पुवते वेति

बह्वृचोर्ने भूः, भुवः और स्वः
नामक तीन व्याहृतियोंको वेदत्रयीका
शुक्र-सार बतलाया है । उनके द्वारा
होमादि करके तीनों लोककी प्रजा
तरती अथवा पार होती है, इसलिये बह

भूर्भुवःस्वस्तरुः,

‘अग्नौ प्रास्ताहुतिः सप्त-
गदित्यमुपतिष्ठते ।

आदित्याज्जायते वृष्टि-
वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः ॥’

(१ । १९)

इति मनुवचनात्; अथवा
भूर्भुवःस्वःसमाख्यलोकत्रयसंसार-
वृक्षां भूर्भुवःस्वस्तरुः; भूर्भुवःस्व-
राख्यं लोकत्रयं वृक्षवद्व्याप्य तिष्ठ-
तीति वा भूर्भुवःस्वस्तरुः ।

संसारसागरं तारयन् तारः;
प्रणवो वा ।

सर्वस्य लोकस्य जनक इति
सन्निता ।

पितामहस्य ब्रह्मणोऽपि पितेति
प्रपितामहः ।

यज्ञात्मना यज्ञः,

यज्ञानां पाता, स्वामी वा
यज्ञपतिः, ‘अहं हि सर्वयज्ञानां भोक्ता
च प्रभुर्न च ।’ (गीता ९ । २४)

इति भगवद्वचनात् ।

यजमानात्मना तिष्ठन् यज्वा ।

यज्ञा अज्ञान्यस्येति वराहमूर्तिः
यज्ञाङ्गः;

[त्रयीसार] भूर्भुवःस्वस्तरु है ।

मनुजीका वाक्य है—‘अग्निमें भली
प्रकार की हुई आहुति सूर्यमें स्थित
होती है, सूर्यसे वर्षा होती है, वर्षासे
अन्न होता है और फिर उससे प्रजा
होती है ।’ अथवा भूर्भुवःस्वस्तरु नामक
लोकत्रयरूप संसारवृक्ष ही भूर्भुवः-
स्वस्तरु है । अथवा भूः, भुवः और स्वः
नामक त्रियोक्तीको वृक्षके समान व्याप्त
करके स्थित है, इसलिये वे भूर्भुवः-
स्वस्तरु हैं ।

संसारसागरसे तारनेके, कारण
भगवान् तार हैं । अथवा प्रणव तार है ।

सम्पूर्ण लोकके उत्पन्न करनेवाले
होनेसे भगवान् सन्निता है ।

पितामह ब्रह्माजीके भी पिता होनेसे
प्रपितामह हैं ।

यज्ञरूप होनेसे यज्ञ है ।

यज्ञके पालक अर्थात् स्वामी होनेसे
यज्ञपति हैं । श्रीभगवान्ने कहा है—
‘सब यज्ञोंका भोक्ता और प्रभु मैं ही हूँ ।’

यजमानरूपमें स्थित होनेके कारण
यज्वा है ।

यज्ञ वराह भगवान्के अङ्ग हैं,
इसलिये वे यज्ञाङ्ग हैं । हरिवंशमें कहा

'वेदपादो यूपदंष्ट्रः
 क्रतुहस्ताधित्तीमुखः ।
 अग्निजिह्वो दर्भरोमा
 ब्रह्मशीर्षो महातपाः ॥
 अहोरात्रेक्षणो दिव्यो
 वेदाङ्गश्रुतिभूषणः ।
 आज्यनासः सुवतुण्डः
 सामघ्रापसन्नो महान् ॥
 धर्ममत्यमयः श्रीमान्
 क्रमविक्रमसक्रियः ।
 प्रायश्चित्तनखो श्वोरः
 पशुजातुर्महाभुजः ॥
 उद्रात्रन्त्रो होमलिङ्गो
 बीजोऽधिमहाफलः ।
 वाय्वन्तरात्मा मन्त्रस्मिन्
 विक्रमः मोमशोणितः ॥
 वेदास्कन्धो हविर्गन्धो
 हव्यकव्यातिवैगवान् ।
 प्राग्वंशकायो घृतिमा-
 नानादीक्षाभिर्गर्चितः ॥
 दक्षिणाहृदयो योगी
 महासत्रमयो महान् ।
 उपाकर्मोष्ठरुचकः
 प्रवर्ग्यावर्तभूषणः ॥

है—[वे यज्ञमूर्ति वराह भगवान्]
 वेदरूप चरण, यूपरूप दाढ़, क्रतुरूप
 हाथ, चित्तीरूप मुख, अग्निरूप जिह्वा,
 दर्भरूप रोम तथा ब्रह्मरूप शिरवाले
 और महान् तपस्वी हैं। वे दिव्य स्व-
 रूप हैं, रात और दिन उनके नेत्र हैं,
 छहों वेदांग कर्णभूषण हैं, घृत नासिका
 है, सुवा धुर्यनी है और सामवेद घोष
 है। वे महान् धर्म-सत्यमय तथा
 श्रीसम्पन्न हैं, और क्रम-विक्रम-
 रूप सत्क्रियाओंवाले, प्रायश्चित्तरूप
 नखोंवाले भयंकर तथा यज्ञपशुरूप
 घुटनोंवाले एवं महान् भुजाओंवाले
 हैं और उद्राता उनकी आँतें हैं,
 होम लिङ्ग है, बीज और ओषधि
 महान् फल हैं, वायु अन्तरात्मा है,
 मन्त्र त्वष्टा है और सोमरस रक्त है
 तथा वे विशेष क्रम (गति) वाले
 हैं। वेदी उनका स्कन्ध (कन्धा) है,
 हविर्गन्ध है, तथा वे हव्य-कव्यरूप
 अत्यन्त वैगवाले, प्राग्वंश* रूप
 शरीरवाले, बड़े तेजस्वी और नाना
 प्रकारकी दीक्षाओंसे अर्चित हैं। वह
 महासत्रमय महायोगी दक्षिणारूप
 हृदयवाले उपाकर्मरूप होंठ और
 दाँतोंवाले तथा प्रवर्ग्यारूप आघातों
 (रोमसंस्थानों) से विभूषित हैं।
 नाना प्रकारके छन्द उनके आने-जाने-

* यज्ञशास्त्राके पूर्व भागमें यज्ञमान आदिके टहरनेके लिये बने हुए घरको प्राग्वंश कहते हैं।

नानाच्छन्दोगतिपथो

गुणोपनिषदासनः ।

छायापत्नीसहायो वै

मेरुशृङ्ग इवोच्छ्रितः ॥'

(३।३४।३४-३९)

इति हरिवंशे ।

फलहेतुभृतान्यज्ञान् वाहयतीति

यज्ञवाहनः ॥११७॥

का मार्ग है, अति गुह्य उपनिषद्

मासन (बैठनेका स्थान) है तथा

मेरुशृङ्गके समान ऊँचे शरीरवाले

वे (वराह भगवान्) अपनी छायारूप

पत्नीके सहित विराजमान हैं ।'

फलके हेतुभूत यज्ञोंका वहन करते

हैं, इसलिये वे यज्ञवाहन हैं ॥११७॥

यज्ञभृद्यज्ञकृद्यज्ञी

यज्ञभुग्यज्ञसाधनः ।

यज्ञान्तकृद्यज्ञगुह्यमन्त्रमन्त्राद्

एव च ॥११८॥

१.७६ यज्ञभृत्, १.७७ यज्ञकृत्, १.७८ यज्ञी, १.७९ यज्ञभुक्, १.८० यज्ञसाधनः ।

१.८१ यज्ञान्तकृत्, १.८२ यज्ञगुह्यम्, १.८३ अन्त्रम्, १.८४ अन्त्राद्, एव, च ॥

यज्ञं विभर्ति पातीति वा
यज्ञभृत् ।

यज्ञको धारण करते अथवा उसकी
रक्षा करते हैं, इसलिये भगवान्
यज्ञभृत् हैं ।

जगदादी तदन्ते च यज्ञं करोति,
कृन्ततीति वा यज्ञकृत् ।

जगत्के आरम्भ और अन्तमें
यज्ञ करते अथवा यज्ञ काटते हैं, इसलिये
यज्ञकृत् हैं ।

यज्ञानां तत्समाराधनात्मनां
शेषीति यज्ञी ।

अपने आराधनात्मक यज्ञोंके शेषी
[अर्थात् जंगकी पूर्ति करनेवाले] हैं,
इसलिये यज्ञी हैं ।

यज्ञं भुङ्क्ते, भुङ्क्तीति वा
यज्ञभुक् ।

यज्ञको भोगते अथवा उसकी रक्षा
करते हैं, इसलिये यज्ञभुक् हैं ।

यज्ञाः साधनं तत्प्राप्ताविति
यज्ञसाधनः ।

यज्ञ उनकी प्राप्तिका साधन है,
इसलिये वे यज्ञसाधन हैं ।

यज्ञस्यान्तं फलप्राप्तिं कुर्वन्
यज्ञान्तकृत् । वैष्णवश्रक्छंसनेन
पूर्णाहुत्या पूर्णं कृत्वा यज्ञसमाप्तिं
करोतीति वा यज्ञान्तकृत् ।

यज्ञका अन्त अर्थात् उसके फलकी
प्राप्ति करानेके कारण यज्ञान्तकृत् हैं ।
अथवा वैष्णव श्रक्का उच्चारण करते
हुए पूर्णाहुतिसे पूर्ण करके यज्ञ समाप्त
करते हैं, इसलिये यज्ञान्तकृत् है ।

यज्ञानां गुह्यं ज्ञानयज्ञः, फला-
भिसन्धिरहितो वा यज्ञः; तदभे-
दोपचाराद् ब्रह्म यज्ञगुह्यम् ।

यज्ञोंमें ज्ञान-यज्ञ अथवा फलकी
कामनासे रहित [कोई भी] यज्ञ गुह्य
है उसका ब्रह्मके साथ अभेद माननेसे
ब्रह्म ही यज्ञगुह्य है ।

अद्यते भूतः अत्ति च भूतानिति
अन्नम् ।

भूतोंसे खाये जाते हैं; अथवा भूतों-
को खाते हैं, इसलिये अन्न है ।

अन्नमत्तीति अन्नादः ।

अन्नको खानेवाले होनेसे अन्नाद् है ।

सर्वं जगदन्नादिरूपेण भोक्तृ-
भोग्यान्मकमेवेति दर्शयितुमेवकारः;
च शब्दः सर्वनाम्नामेकस्मिन्परस्मि-
न्पुंसि समुचित्य वृत्तिं दर्शयितुम्
॥११८॥

सम्पूर्ण जगत् अन्नदिरूपसे भोक्ता-
भोग्यरूप ही है—यह दिग्वलनेके लिये
एवकारका और सब नामोंकी वृत्ति
समुचित करके एक परमपुरुषमें ही
प्रदर्शित करनेके लिये च शब्दका
प्रयोग किया गया है ॥११८॥

आत्मयोनिः स्वयंजातो वैखानः सामगायनः ।

देवकीनन्दनः स्रष्टा क्षितीशः पापनाशनः ॥११९॥

१.८५ आत्मयोनिः, १.८६ स्वयंजातः, १.८७ वैखानः, १.८८ सामगायनः ।

१.८९ देवकीनन्दनः, १.९० स्रष्टा, १.९१ क्षितीशः, १.९२ पापनाशनः ॥

आत्मैव योनिरुपादानकारणं
नान्यदिति आत्मयोनिः ।

निमित्तकारणमपि स एवेति
दर्शयितुं स्वयंजात' इति; 'प्रकृतिश्च
प्रतिज्ञादृष्टान्तानुपगोधात्' (ब्र० सू०
१।४।२३) इत्यत्र स्थापित-
मुभयकारणत्वं हरेः ।

विशेषेण स्वननात् वैखानः ;
धरणीं विशेषेण स्वनित्वा
पातालवासिनं हिरण्याक्षं वाराहं
रूपमास्थाय जघानेति पुराणे
प्रसिद्धम् ।

सामानि गायतीति सामगायनः ।

देवक्याः सुतो देवकीनन्दनः ।
'ज्योतीषि शुकाणि च यानि लोके
त्रयो लोका लोकपालास्त्रयो च ।
त्रयोऽग्नयश्चाद्भुतयश्च पञ्च
सर्वे देवा देवकीपुत्र एव ॥'
इति महाभारते (अनु० १५८।
३१) ।

स्रष्टा सर्वलोकस्य ।

आत्मा ही योनि अर्थात् उपादान-
कारण है और कोई नहीं, इसलिये
भगवान् आत्मयोनि हैं * ।

निमित्त-कारण भी वही है यह
दिखानेके लिये स्वयंजात कहा गया
है । 'प्रकृति (उपादान-कारण) और
निमित्त-कारण भी ब्रह्म है; क्योंकि
पेसा माननेपर प्रतिज्ञा तथा दृष्टान्त-
का उपरोध नहीं होता' इस ब्रह्मसूत्रसे
श्रीहरिका निमित्त और उपादान-
कारणत्व स्थापित किया गया है ।

विशेषरूपसे खोदनेके कारण
वैखान है । पुराणोंमें यह प्रसिद्ध ही
है कि भगवान् ने वराहरूप धारणकर
पृथिवीको विशेषरूपसे खोदकर
पातालवासी हिरण्याक्षको मारा था ।

सामगान करते हैं, इसलिये
सामगायन हैं ।

देवकीके पुत्र होनेसे देवकीनन्दन
है । महाभारतमें कहा है—'लोकमें
जितनी शुभ्र ज्योतियाँ [प्रह-
नक्षत्रादि] और अग्नियाँ हैं [वे सब]
तथा तीनों लोक, लोकपाल, वेदत्रयी,
तीनों अग्नियाँ, पाँचों आद्भुतियाँ और
समस्त देवगण देवकीपुत्र ही हैं ।'

सम्पूर्ण लोकोंके रचयिता होनेसे
स्रष्टा हैं ।

॥ क्योंकि भगवान् और आत्मामें अभेद है ।

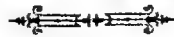
† आजकल महाभारतका जो संस्करण प्रचलित है उससे इस लोकका कुछ पाठ-भेद है ।

क्षितेर्भूमेरीशः क्षितीशः दश- । क्षिति अर्थात् पृथिवीके ईश (स्वामी)
रथात्मजः । होनेके कारण दशरथपुत्र राम क्षितीश
हैं ।

कीर्तितः पूजितो ध्यातः स्मृतः कीर्तन, पूजन, ध्यान और स्मरण
पापराशि नाशयन् पापनाशनः; करनेपर सम्पूर्ण पापराशिका नाश
'पक्षोपवासाद्यत्पापं करनेके कारण भगवान् पापनाशन हैं ।
पुरुषस्य प्रणश्यति । वृद्धशातातपका कथन है—'एक पक्षतक
प्राणायामशतेनैव उपवास करनेसे पुरुषका जो पाप
तत्पापं नश्यते नृणाम् । नष्ट होता है वह सौ प्राणायाम करने-
प्राणायामसहस्रेण से नष्ट हो जाता है तथा एक सहस्र
यत्पापं नश्यते नृणाम् । प्राणायाम करनेसे जो पाप नष्ट होता
क्षणमात्रेण तत्पापं है वह श्रीहरिका क्षणमात्र ध्यान
हरेर्ध्यानात्प्रणश्यति ॥' करनेसे नष्ट हो जाता है' ॥११॥

इति वृद्धशातातपे ॥११॥

करनेसे नष्ट हो जाता है' ॥११॥



शङ्खभृन्नन्दकी चक्री शार्ङ्गधन्वा गदाधरः ।

रथाङ्गपाणिरक्षोभ्यः सर्वप्रहरणायुधः ॥

सर्वप्रहरणायुधो नमः ॥ १२० ॥

०.०.३ शङ्खभृत्, ०.०.४ नन्दकी, ०.०.५ चक्री, ०.०.६ शार्ङ्गधन्वा, ०.०.७ गदाधरः ।
०.०.८ रथाङ्गपाणिः, ०.०.९ अक्षोभ्यः, १.०.०० सर्वप्रहरणायुधः, सर्वप्रहरणा-
युधः ॐ नमः ॥

पाञ्चजन्याख्यं भूताग्रहङ्गाग- भूतादि (ताम्र) अहंकाररूप
त्मकं शङ्खं चित्रन् शङ्खभृत् । पाञ्चजन्य नामक शङ्ख धारण करनेसे
भगवान् शङ्खभृत् हैं ।

विद्यामयो नन्दकाख्योजसिर- उनके पास विद्यामय नन्दक नामक
स्येति नन्दकी । गवङ्ग है, इसलिये वे नन्दकी हैं ।

मनस्तत्त्वात्मकं सुदर्शनाख्यं मनस्तत्त्वात्मक सुदर्शनचक्र धारण

चक्रमस्यास्तीति, संसारचक्रमस्या-
ज्ञया परिवर्तत इति वा चक्रो ।

इन्द्रियाद्यहङ्कारात्मकं शार्ङ्गं
नाम धनुरस्यास्तीति शार्ङ्गधन्वा ।
'धनुषध्व' (पा० मू० ५ । ४ ।
१३२) इति अनङ् समासान्तः ।

बुद्धितत्त्वात्मिकां कौमोदकीं
नाम गदां वहन् गदाधरः ।

रथाङ्गं चक्रमस्य पाणौ स्थित-
मिति रथाङ्गपाणिः ।

अत एव अश्वक्षोभण इति
अशोभ्यः ।

केवलम् एतावन्त्यायुधान्य-
स्येति न नियम्यते, अपि तु सर्वा-
ण्येव प्रहरणान्यायुधान्यस्येति सर्व-
प्रहरणायुधः, आयुधत्वेनाप्रसिद्धान्यपि
करजादीन्यस्यायुधानि भवन्तीति ।
अन्ते सर्वप्रहरणायुध इति वचनं
सत्यसङ्कल्पत्वेन सर्वेश्वरत्वं दर्श-
यितुम्, 'एष सर्वेश्वरः' (मा० उ०
६) इति श्रुतेः ।

द्विर्वचनं समाप्तिं द्योतयति ।

करनेसे, अथवा संसारचक्र उनकी
आज्ञासे चल रहा है, इसलिये चक्रो हैं ।

उनका इन्द्रियकारण [राजस]
अहंकाररूप शार्ङ्ग नामक धनुष है,
इसलिये वे शार्ङ्गधन्वा हैं । 'धनुषध्व'
इस सूत्रके अनुसार यहाँ समासान्त
अनङ् प्रत्यय हुआ है ।

बुद्धितत्त्वात्मिका कौमोदकी नामक
गदा धारण करनेसे गदाधर है ।

भगवान्के हाथमे रथाङ्ग अर्थात्
चक्र है, इसलिये वे रथाङ्गपाणि हैं ।

इन सब शस्त्रोंके कारण उन्हें
क्षोभित नहीं किया जा सकता, इसलिये
वे अशोभ्य हैं ।

भगवान्के केवल इनने ही आयुध
हो, ऐसा नियम नहीं है, बल्कि प्रहार
करनेवाली सभी वस्तुएँ उनके आयुध
हैं, अतः वे सर्वप्रहरणायुध हैं । जो
अंगुली आदि आयुधरूपसे प्रसिद्ध नहीं
हैं वे भी [वृत्सिंहावनारमे] उनके
आयुध होते हैं । अन्तमे सत्य-
संकल्परूपसे उनकी सर्वेश्वरता
दिखानेके लिये उन्हें सर्वप्रहरणायुध
कहा है, जैसा कि श्रुति कहती है—
'यह सर्वेश्वर है ।'

दो बार कहना समाप्तिका सूचक है ।

ॐकारश्च मङ्गलार्थः,

‘ॐकारश्चाथशब्दश्च

द्वावेतौ ब्रह्मणः पुरा ।

कण्ठं भित्त्वा विनिर्यातौ

तस्मान्माङ्गलिकावुभौ ॥

(बृ० ना० १ । ५१ । १०)

इति वचनात् । अन्ते ‘नमः’

इत्युक्त्वा परिचरणं कृतवान्,

‘भूमिष्ठां ते नमउक्तिं विधेम’ (ई०

उ० १८) इति मन्त्रवर्णात् ।

‘वन्यं तदेव लग्नं

तन्नक्षत्रं तदेव पुण्यमहः ।

करणस्य च सा सिद्धि-

र्यत्र हरिः प्राङ् नमस्क्रियते ॥’

इति च । प्रागित्युपलक्षणम्,

अन्तेऽपि नमस्कारस्य शिष्टैराचर-

णात् । नमस्कारफलं प्रागेव

दर्शितम्—

‘एकोऽपि कृष्णस्य कृतः प्रणामो

दशाश्वमेधावभृथेन तुल्यः ।

दशाश्वमेधी पुनरंति जन्म

कृष्णप्रणामी न पुनर्भाय ॥’

(महा० शा० ४७ । ११)

‘अतसीपुष्पसङ्काशं

पीतवाससमच्युतम् ।

ये नमस्यन्ति गोविन्दं

न तेषां विद्यते भयम् ॥’

(महा० शा० ४७ । १०)

ओंकार अन्तमें मंगलाचरणके लिये है;

जैसा कि कहा है—‘ओंकार और अथ ये

दो शब्द पहले ब्रह्मके कण्ठको भेदन

करके निकले थे, इसलिये ये दोनों

माङ्गलिक हैं।’ अन्तमें नमः कहकर

परिचर्या (पूजा) की है, जैसा कि

मन्त्रवर्ण कहता है—‘हम आपको

बागडार नमस्कार करते हैं।’ इसके

सिवा ‘बही लग्न, बही नक्षत्र और बही

पुण्य दिवस धन्य है तथा इन्द्रियोंकी

भी सफलता तभी है जिसमें श्रीहरिको

प्रथम नमस्कार किया जाता है’ यह

वाक्य भी है। इसमें प्राक् शब्दसे अन्तका

भी उपलक्षण है, क्योंकि शिष्ट पुरुषोंद्वारा

अन्तमें भी नमस्कार किया जाता है।

नमस्कारका फल तो पहले ही दिखा

चुके हैं कि—‘श्रीकृष्णको किया हुआ

एक प्रणाम भी दश अश्वमेध-यज्ञोंके

समान होता है, उनमें भी दशा-

श्वमेधीको तो फिर जन्म लेना

पड़ता है, किन्तु कृष्णको प्रणाम

करनेवालेका फिर जन्म नहीं होता।’

‘बलसीके फूलके समान वर्ण तथा पीत

वस्त्रवाले अच्युत श्रीगोविन्दकी जो

नमस्कार करते हैं उन्हें कोई भय नहीं

‘लोकत्रयाधिपतिमप्रतिमप्रभाव-
मीषत्प्रणम्य शिरसा प्रभविष्णुमीशम् ।
जन्मान्तरप्रलयकरूपसहस्रजात-
माशु प्रशान्तिमुपयाति नरस्य पापम् ॥’
॥ १२० ॥

रहता ।’ तथा ‘तीनों लोकोंके अधिपति,
अतुलितप्रभाव; सृष्टिकर्ता ईश्वरको
शिर नचाकर थोड़ा-सा भी प्रणाम
करनेसे जन्मान्तर, प्रलय और हुआओं
कर्योंमें किये हुए मनुष्यके सम्पूर्ण
पाप लीन हो जाते हैं ।’ ॥ १२० ॥

इति नाम्नां दशमं शतं विवृतम् । यहाँतक सहस्रनामके दशवें
शतकका विवरण हुआ ।

इतीदं कीर्तनीयस्य केशवस्य महात्मनः ।

नाम्नां सहस्रं दिव्यानामशेषेण प्रकीर्तितम् ॥ १२१ ॥

इति, इदम्, कीर्तनीयस्य, केशवस्य, महात्मनः ।

नाम्नाम्, सहस्रम्, दिव्यानाम्, अशेषेण, प्रकीर्तितम् ॥

इतीदमित्यनेन नामसहस्रमन्यू-
नानतिरिक्तमुक्तमिति दर्शयति
दिव्यानामप्राकृतानां नाम्नां सहस्रं
प्रकीर्तितमिति वदता प्रकारान्त-
रेणापि मंख्योपपत्तिर्दर्शिता ।

‘इतीदम्’ इस पदसे ‘सहस्रनाम
किसी तरह न्यून नहीं कहा गया है’—
यह बात दिखलाते हैं । ‘दिव्य
अर्थात् अप्राकृत महस्रनामोंका
कीर्तन हो चुका’ ऐसा कहकर यह
दिखलाया है कि यह संख्या प्रकारान्तर-
में भी पूर्ण हो सकती है ।

प्रक्रमे ‘कि जपन्मुन्यने जन्तु’
इति जपशब्दोपादानात् कीर्तयेत्
इत्यनेनापि त्रिविधजपो लक्ष्यते;
उच्चोपांशुमानसलक्षणस्त्रिविधो जपः
॥ १२१ ॥

आरम्भमें ‘किसका जप करनेसे
जीव मुक्त होता है’ इस वाक्यमें जप
शब्द ग्रहण किया जानेसे ‘कीर्तन
कां’ इस पदमें भी उच्च, उपाशु और
मानसरूप तीन प्रकारका जप ही
लक्षित होता है ॥ १२१ ॥

य इदं शृणुयान्नित्यं यश्चापि परिकीर्तयेत् ।

नाशुभं प्राप्नुयात्किञ्चित्सोऽमुन्नेह च मानवः ॥ १२२ ॥

यः, इदम्, शृणुयात्, नित्यम्, यः, च, अपि, परिकीर्तयेत् ।

न, अशुभम्, प्राप्नुयात्, किञ्चित्, सः, अमुत्र, इह, च, मानवः ॥

य इदं शृणुयात् इत्यादिः

‘य इदं शृणुयात्’ इत्यादि श्लोकका

स्पर्धार्थः । परलोकप्राप्तस्यापि

अर्थ स्पष्ट ही है । परलोकको प्राप्त हुए ययाति, नहुषादिके समान वहाँ भी

ययातिनहुषादिवदशुभप्राप्त्यभावं

अशुभ-प्राप्तिका अभाव सूचित करने-

सूचयितुम् अमुत्र इत्युक्तम् ॥१२२॥

के लिये अमुत्र शब्दका प्रयोग किया गया है ॥ १२२ ॥

वेदान्तगो ब्राह्मणः स्यात्क्षत्रियो विजयी भवेत् ।

वैश्यो धनसमृद्धः स्याच्छूद्रः सुखमवाप्नुयात् ॥१२३॥

वेदान्तगः, ब्राह्मणः, स्यात्, क्षत्रियः, विजयी, भवेत् ।

वैश्यः, धनसमृद्धः, स्यात्, शूद्रः, सुखम्, अवाप्नुयात् ॥

वेदान्तानामुपनिषदामर्थं ब्रह्म
गच्छत्यवगच्छतीति वेदान्तगः ।

जो वेदान्तों—उपनिषदोंके अर्थ ब्रह्म-को जानता है उसे वेदान्तग कहते हैं ।

‘किं जपन्मुच्यते जन्तु-

जन्मसंसारबन्धनात् ।’

(वि० स० ३)

इति वचनात् जपकर्मणा साक्षा-
न्मुक्तिशङ्कायां कर्मणां साक्षान्मु-
क्तिहेतुत्वं नास्ति, ज्ञानेनैव मोक्ष
इति दर्शयितुम्, ‘वेदान्तगो ब्राह्मण-
स्यात्’ इत्युक्तम् । कर्मणां त्वन्तः-
करणशुद्धिद्वारेण मोक्षहेतुत्वम् ।

‘किसका जप करनेसे जीव जन्म-
मरणरूप संसारसे मुक्त हो सकता है’
इस कथनके अनुसार जपरूप कर्मसे
साक्षात् मोक्ष होनेकी शंका होनेपर
‘कर्मोंकी मोक्षमें माक्षात् कारणता नहीं
है, मोक्ष ज्ञानसे ही होता है’—
यह दिखानेके लिये ‘ब्राह्मण वेदान्त-
का ज्ञाता हो जाना है’ ऐसा कहा
है । कर्म तो अन्तःकरणकी शुद्धि-
द्वारा ही मोक्षके हेतु होते हैं ।

‘कपायपक्तिः कर्माणि

ज्ञानं तु परमा गतिः ।

‘वासनामोका पकना ही कर्म है
और ज्ञान परमगति है । कर्मके द्वारा

कषाये कर्मभिः पक्वे
ततो ज्ञानं प्रवर्तते ॥'

'नित्यं ज्ञानं समासाद्य
नरो बन्धात्ममुच्यते ।'

'धर्मात्सुखं च ज्ञानं च
ज्ञानान्मोक्षोऽधिगम्यते ॥'

'योगिनः कर्म कुर्वन्ति
महं त्यक्त्वात्मशुद्धये ॥'
(गीता ५।११)

'कर्मणा बध्यते जन्तु-
र्विद्ययैव विमुच्यते ।
तस्मात्कर्म न कुर्वन्ति
यतयः पारदर्शिनः ॥'
(ब्रह्म० १२९।७)

'यथोक्तान्यपि कर्माणि
परिहाय द्विजोत्तमः ।
आत्मज्ञाने शमे च स्या-
द्वेदान्यासे च यत्नवान् ॥'
(मनु० १२।९२)

'तपसा कल्मसं हन्ति
विद्ययामृतमश्नुते ।'

'ज्ञानमुत्पद्यते पुंसां
क्षयापापस्य कर्मणः ।

यथादर्शतलप्रस्थे
पश्यत्यात्मानमात्मनि ॥'
(गण्ड० १।२३०।१)

इत्यादिस्मृतिभ्यः, 'तमेतं वेदा-
नुवचनेन ब्राह्मणा विविदिषन्ति यज्ञेन

वासनाओंके जीर्ण हो जानेपर फिर
ज्ञान होता है ।'

'नित्य ज्ञानको प्राप्त करके मनुष्य
बन्धनमुक्त हो जाता है ।'

'धर्मसे सुख और ज्ञान होता है
तथा ज्ञानसे मोक्ष प्राप्त होता है ।'

'योगीजन आसक्ति त्यागकर
चित्तशुद्धिके लिये कर्म किया करते
हैं ।'

'जीव कर्मसे बँधता है और
विद्यासे ही मुक्त हो जाता है, इसीलिये
पारदर्शी यतिजन कर्म नहीं करते ।'

'श्रेष्ठ ब्राह्मणको उचित है कि
विहित कर्मोंको भी त्यागकर आत्म-
ज्ञान, शम और वेदाभ्यासमें
यत्नशील हो ।'

'[मनुष्य] तपसे पाप नष्ट करता
है और विद्यासे अमृत प्राप्त करता है ।'

'पापकर्मके क्षीण हो जानेपर
पुरुषको ज्ञान उत्पन्न होता है [उस
समय] वह स्वच्छ दर्पणमें प्रति-
बिम्बके समान अपने आत्मामें
आत्माको देखता है ।' इत्यादि स्मृतियों-

से तथा 'इस आत्माको ब्राह्मणलोग
वेदानुवचनसे, यज्ञसे, दानसे, तपसे

दानेन तपसानाशकेन' (बृ० उ० ४।४।२२) 'येन केन च यजेतापि वा दर्विहोमेनानुपहतमना एव भवति' इत्यादिश्रुतिभ्यः ।

ज्ञानादेव मोक्षो भवति ।

'ज्ञानादेव तु कैवल्यं

प्राप्यते तेन मुच्यते ।'

'ब्रह्मविदाप्नोति परम्' (तै० उ० २।

१) 'तर्गति शोकमात्मचित्' (छा०

उ० ७।१।३) 'ब्रह्म वेद ब्रह्मैव

भवति' (मु० उ० ३।२।९.)

'ब्रह्मैव मन्त्रब्रह्माप्येति' (बृ० उ० ४।

४।६)

'तमेव विदित्वानिमृत्युमेति

नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ।'

(इबे० उ० ६।१५)

'आनन्दं ब्रह्मणो विद्वा-

न विभेति कुतश्चन ।'

(सं० उ० २।४)

'इह चेदवेर्दादय सत्यमस्ति

न चेदिहावेर्दान्महती विनष्टिः ।'

(के० उ० २।५)

'यदा चर्मवदाकाशं

वेष्टयिष्यन्ति मानवाः ।

तदा देवमविज्ञाय

दुःखस्यान्तो भविष्यति ॥'

(इबे० उ० ६।२०)

और अन्तःशानसे जाननेकी इच्छा करते हैं' और '[मनुष्य] जिस किसी भी वस्तुसे अथवा दर्विहोमसे यजन करे, किन्तु इससे उसका मन ही शुद्ध होता है ।' इत्यादि श्रुतियोंसे भी [कर्म अन्तःकरणकी शुद्धिके ही हेतु सिद्ध होने हैं] ।

मोक्ष तो ज्ञानमें ही होता है;

'ज्ञानसे ही कैवल्य प्राप्त होता है

उससे मुक्त हो जाता है' 'ब्रह्मको

जाननेवाला परमपदको प्राप्त कर

लेता है ।' 'आत्मज्ञानी शोकसे तर

जाता है ।' 'जो ब्रह्मको जानता

है ब्रह्म ही हो जाता है ।' 'ब्रह्म

हुआ ही ब्रह्मको प्राप्त होता है ।'

'उसे जानकर ही मृत्युको पार करता

है, मोक्षके लिये कोई और मार्ग नहीं

है ।' 'ब्रह्मानन्दको जाननेवाला किसी-

से भी भय नहीं मानता ।' 'यदि उसे

यहाँ जान लिया तब तो ठीक है और

यदि नहीं जाना तो बहुत बड़ी हानि

है ।' 'जब मनुष्य आकाशको चर्मके

समान लपेट लेंगे तब देवको बिना

जाने भी दुःखका अन्त हो जायगा ।'

‘न कर्मणा न प्रजया धनेन
त्यागेनैके अमृतत्वमानशुः ।’
(कै० उ० १।३)

‘वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थाः
संन्यासयोगाद्यनयः शुद्धसत्त्वाः ।
ते ब्रह्मन्तंके तु परान्तकांटे
परामृताः परिमुच्यन्ति सर्वे ॥’
(कै० उ० १।४)

इत्यादिश्रुतिभ्यः ।

शूद्रः सुखमवाप्नुयात् श्रवणेनैव,
न तु जपयज्ञेन, ‘तस्मान्मूर्खो यज्ञेऽ-
नवकृत्सु’ (ते० सं० ७।१।
१।६) इति श्रुतेः ।

‘आत्रयेच्छतुरो वर्णा-

न्कृत्वा ब्राह्मणमग्रतः ।’

इति महाभारते (आ० ३२७।४९)
श्रवणमनुज्ञायतो ‘सुगतिमियाच्छ्रवणाच्च
शूद्रयोनिः’ इति हरिवंशे । यः शूद्रः
शृणुयात् स सुखमवाप्नुयात् इति
व्यवहितेन सम्बन्धः; त्रैवर्णिकानां
कीर्तयेदित्यनेन ॥१२३॥

‘अमृतत्व कर्मसे, प्रज्ञासे या धनसे
प्राप्त नहीं होता; वह तो एक त्यागसे
ही प्राप्त होता है ।’ ‘वेदान्त-विज्ञानसे
जिन्होंने अर्शका मिश्रण कर लिया है
तथा जो संन्यासयोगसे शुद्धचित्त
हो गये हैं वे सभी यतिजन प्रलयके
समय ब्रह्मलोकमें परम अमृत होकर
मुक्त हो जाते हैं ।’ इत्यादि श्रुतियोसे
यही बात सिद्ध होती है ।

शूद्र सुख प्राप्त कर सकता है:
किन्तु श्रवणमात्रसे ही, जपयज्ञसे
नहीं; क्योंकि श्रुतिमें कहा है—
‘अतः शूद्रका यज्ञमें अधिकार नहीं
है ।’ ‘ब्राह्मणको आगे करके चारों
वर्णोंको श्रवण करावे’ इत्यादि वाक्यो-
से महाभारतमें उसे श्रवणकी आज्ञा दी
गयी है । हरिवंशमें कहा है—‘शूद्र-
योनिको श्रवणसे ही शुभगति प्राप्त
होती है ।’ अतः जो शूद्र श्रवण करता
है वह सुख पाता है—इस प्रकार इस
[शूद्रपद] का व्यवधानयुक्त [१२२
श्लोकके] शृणुयात् (श्रवण करे) पदसे
सम्बन्ध है और त्रैवर्णिकोंका कीर्तयेत्
(कीर्तन करे) पदसे सम्बन्ध है
॥१२३॥

धर्मार्थी प्राप्नुयाद्धर्ममर्थार्थी चार्थमाप्नुयात् ।

कामानवाप्नुयात्कामी प्रजार्थी चाप्नुयात्प्रजाम् ॥१२४॥

धर्मार्थी, प्राप्नुयात्, धर्मम्, अर्थार्थी, च, अर्थम्, आप्नुयात् ।
 कामान्, अवाप्नुयात्, कामी, प्रजार्थी, च, आप्नुयात्, प्रजाम् ॥
 धर्म चाहनेवाला धर्म, अर्थ चाहनेवाला अर्थ, कामनाओंवाला काम और
 सन्तान चाहनेवाला सन्तान प्राप्त करता है ।

चक्षुरादीनामात्मयुक्तेन मनसा- आत्माके सहित मनसे अधिष्ठित
 धिष्ठितानां स्वेषु स्वेषु विषयेष्वानु- चक्षु आदिकी अपने-अपने विषयोंके
 कृत्यात् प्रवृत्तिः कामः । प्रजायत अनुरूप प्रवृत्तिको काम कहते हैं ।
 इति प्रजा सन्ततिः ॥१२४॥ जो उत्पन्न हो वह प्रजा यानी सन्तति
 है ॥ १२४ ॥

भक्तिमान्यः सदोत्थाय शुचिस्तद्रतमानसः ।

सहस्रं वासुदेवस्य नाम्नामेतत्प्रकीर्तयेत् ॥१२५॥

भक्तिमान्, यः, सदा, उत्थाय, शुचिः, तद्रतमानसः ।
 सहस्रम्, वासुदेवस्य, नाम्नाम्, एतत्, प्रकीर्तयेत् ॥

यशः प्राप्नोति विपुलं ज्ञातिप्राधान्यमेव च ।

अचलां श्रियमाप्नोति श्रेयः प्राप्नोत्यनुत्तमम् ॥१२६॥

यशः, प्राप्नोति, विपुलम्, ज्ञातिप्राधान्यम्, एव, च ।
 अचलाम्, श्रियम्, आप्नोति, श्रेयः, प्राप्नोति, अनुत्तमम् ॥

न भयं कचिदाप्नोति वीर्यं तेजश्च विन्दति ।

भवत्यरोगो द्युतिमान्बलरूपगुणान्वितः ॥१२७॥

न, भयम्, कचित्, आप्नोति, वीर्यम्, तेजः, च, विन्दति ।
 भवति, अरोगः, द्युतिमान्, बलरूपगुणान्वितः ॥

जो भक्तिमान् पुरुष सदा उठकर पवित्र और तद्गत चित्तसे भगवान् वासुदेव-
 के इस सहस्रनामका कीर्तन करता है वह महान् यश, ज्ञातिमें प्रधानता,

अचल लक्ष्मी और सर्वोत्तम कल्याण प्राप्त करता है । उसे कहीं भय नहीं होता, वह धीर्य और तेज प्राप्त करता है तथा नीरोग, कान्तिमान् और बल, रूप एवं गुणसे सम्पन्न होता है ॥१२५-१२७॥

रोगार्तो मुच्यते रोगाद्बद्धो मुच्येत बन्धनात् ।

भयान्मुच्येत भीतस्तु मुच्येतापन्न आपदः ॥१२८॥

रोगार्तः, मुच्यते, रोगात्, बद्धः, मुच्येत, बन्धनात् ।

भयात्, मुच्येत, भीतः, तु, मुच्येत, आपन्नः, आपदः ॥

रोगी रोगसे, बँधा हुआ बन्धनसे, भयभीत भयसे और आपत्तिग्रस्त आपत्तिसे छूट जाता है ॥१२८॥

दुर्गाण्यतितरत्याशु पुरुषः पुरुषोत्तमम् ।

स्तुवन्नामसहस्रेण नित्यं भक्तिसमन्वितः ॥१२९॥

दुर्गाणि, अतितरति, आशु, पुरुषः, पुरुषोत्तमम् ।

स्तुवनः, नामसहस्रेण, नित्यम्, भक्तिसमन्वितः ॥

पुरुषोत्तमकी सहस्रनामसे भक्तिपूर्वक नित्यप्रति स्तुति करनेसे पुरुष शीघ्र ही दुःखोंसे पार हो जाता है ॥१२९॥

वासुदेवाश्रयो मर्त्यो वासुदेवपरायणः ।

सर्वपापविशुद्धात्मा याति ब्रह्म सनातनम् ॥१३०॥

वासुदेवाश्रयः, मर्त्यः, वासुदेवपरायणः ।

सर्वपापविशुद्धात्मा, याति, ब्रह्म, सनातनम् ॥

वासुदेवके आश्रय रहनेवाला वासुदेवपरायण मनुष्य सब पापोंसे शुद्धचित्त होकर सनातन ब्रह्मको प्राप्त होता है ॥१३०॥

न वासुदेवभक्तानामशुभं विद्यते क्वचित् ।

जन्ममृत्युजराव्याधिभयं नैवोपजायते ॥१३१॥

न, वासुदेवभक्तानाम्, अशुभम्, विषते, कश्चित् ।
जन्ममृत्युजराव्याधिभयम्, न, एव, उपजायते ॥
वासुदेवके भक्तोंका कहीं भी अशुभ नहीं होता तथा उन्हें जन्म, मृत्यु,
जरा और रोगोंका भय भी नहीं रहता ॥१३१॥

इमं स्तवमधीयानः श्रद्धाभक्तिसमन्वितः ।

युज्येतात्मसुखक्षान्तिश्रीधृतिस्मृतिकीर्तिभिः ॥१३२॥

इमम्, स्तवम्, अधीयानः, श्रद्धाभक्तिसमन्वितः ।

युज्येत, आत्मसुखक्षान्तिश्रीधृतिस्मृतिकीर्तिभिः ॥

इस स्तवका श्रद्धा, भक्तिपूर्वक पाठ करनेवाला पुरुष आत्मसुख, क्षमा, लक्ष्मी,
धैर्य, स्मृति और कीर्तिसे युक्त होता है ।

भक्तिमानित्यादिना भक्तिमतः
शुचेः सततमुद्युक्तस्यैकाग्रचित्त-
स्य श्रद्धालोविशिष्टाधिकारिणः
फलविशेषं दर्शयति ।

‘भक्तिमान्’ इत्यादि श्लोकसे भक्ति-
युक्त पवित्र सदा ही उद्योगशील
समाहित चित्त श्रद्धालु एवं विशिष्ट
अधिकारी पुरुषके लिये विशेष फलका
निर्देश करते हैं ।

श्रद्धा आस्तिक्यबुद्धिः । भक्ति-
र्भजनं तात्पर्यम् । आत्मनः सुखम्
आत्मसुखम् । तेन च क्षान्त्यादि-
मिथ युज्यते ॥ १३२ ॥

आस्तिकतायुक्त बुद्धिका नाम श्रद्धा
है । भजना या तत्पर होना भक्ति है ।
आत्माके सुखको आत्मसुख कहते हैं ।
उस आत्मसुख और क्षान्ति आदि
गुणोंसे सम्पन्न हो जाता है ॥ १३२ ॥

नक्रोधो न च मात्सर्यं नलोभो नाशुभामतिः ।

भवन्ति कृतपुण्यानां भक्तानां पुरुषोत्तमे ॥१३३॥

नक्रोधः, न, च, मात्सर्यम्, नलोभः, नाशुभा, मतिः ।

भवन्ति, कृतपुण्यानाम्, भक्तानाम्, पुरुषोत्तमे ॥

पुरुषोत्तम भगवान्के पुण्यात्मा भक्तोंको क्रोध, मात्सर्य (पराये गुणमें
दोषदृष्टि करना) लोभ और अशुभ बुद्धि नहीं होती ।

नक्रोघो नलोमो नाशुमा मतिः इति अकारानुबन्धरहितेन नकारेण समस्तं षट्त्रयम्; क्रोधादयो न भवन्ति, मात्सर्यं च न भवतीत्यर्थः ॥१३३॥	'नक्रोघो नलोमो नाशुमा मतिः' इन तीन पदोंमें अकारानुबन्धसे रहित नकारके साथ समास है; अर्थात् क्रोधादि नहीं होते और मात्सर्य भी नहीं होता ॥१३३॥
--	---

द्यौः सचन्द्रार्कनक्षत्रा खं दिशो भूमहोदधिः ।

वासुदेवस्य वीर्येण विधृतानि महात्मनः ॥१३४॥

द्यौः, सचन्द्रार्कनक्षत्रा, खम्, दिशः, भूः, महोदधिः ।

वासुदेवस्य, वीर्येण, विधृतानि, महात्मनः ॥

चन्द्रमा, सूर्य और नक्षत्रोंके सहित स्वर्ग, आकाश, दिशाएँ तथा समुद्र—
ये सब महात्मा वासुदेवके वीर्यसे ही धारण किये गये हैं ॥१३४॥

ससुरासुरगन्धर्व सयक्षोरगराक्षसम् ।

जगद्वशो वर्ततेदं कृष्णस्य सचराचरम् ॥१३५॥

ससुरासुरगन्धर्वम्, सयक्षोरगराक्षसम् ।

जगत्, वशो, वर्तते, इदम्, कृष्णस्य, सचराचरम् ।

देवता, असुर, गन्धर्व, यक्ष, सर्प और राक्षसोंके सहित यह सम्पूर्ण
चराचर जगत् श्रीकृष्णके ही वशवर्ती है ॥१३५॥

इन्द्रियाणि मनो बुद्धिः सत्त्वं तेजो बलं धृतिः ।

वासुदेवात्मकान्याहुः क्षेत्रं क्षेत्रज्ञ एव च ॥१३६॥

इन्द्रियाणि, मनः, बुद्धिः, सत्त्वम्, तेजः, बलम्, धृतिः ।

वासुदेवात्मकानि, आहुः, क्षेत्रम्, क्षेत्रज्ञः, एव, च ॥

इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि, अन्तःकरण, तेज, बल, धृति तथा क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ—
इन सबको वासुदेवरूप ही कहा है ॥१३६॥

सर्वागमानामाचारः प्रथमं परिकल्पते ।

आचारप्रभवो धर्मो धर्मस्य प्रभुरच्युतः ॥१३७॥

सर्वागमानाम्, आचारः, प्रथमम्, परिकल्पते ।

आचारप्रभवः, धर्मः, धर्मस्य, प्रभुः, अच्युतः ॥

सब शास्त्रोंमें सबसे पहले आचारहीकी कल्पना होती है, आचारसे ही धर्म होता है, और धर्मके प्रभु श्रीअच्युत ही हैं ॥१३७॥

ऋषयः पितरो देवा महाभूतानि धातवः ।

जङ्गमाजङ्गमं चेदं जगन्नारायणोद्भवम् ॥१३८॥

ऋषयः, पितरः, देवाः, महाभूतानि, धातवः ।

जङ्गमाजङ्गमम्, च, इदम्, जगत्, नारायणोद्भवम् ॥

ऋषि, पितर, देवता, महाभूत, धातुएँ और यह चराचर जगत् नारायण-मे ही उत्पन्न हुए हैं ॥१३८॥

योगो ज्ञानं तथा सांख्यं विद्याः शिल्पादि कर्म च ।

वेदाः शास्त्राणि विज्ञानमेतत्सर्वं जनार्दनान् ॥१३९॥

योगः, ज्ञानम्, तथा, सांख्यम्, विद्याः, शिल्पादि कर्म, च ।

वेदाः, शास्त्राणि, विज्ञानम्, एतत्, सर्वम्, जनार्दनात् ॥

योग, ज्ञान तथा सांख्यादि विद्याएँ, शिल्पादि कर्म एवं वेद, शास्त्र और विज्ञान—ये सब श्रीजनार्दनसे ही हुए हैं ॥१३९॥

एको विष्णुर्महद्भूतं पृथग्भूतान्यनेकशः ।

त्रीलोकान्व्याप्य भूतात्मा मुङ्क्ते विश्वभुगव्ययः ॥१४०॥

एकः, विष्णुः, महद्भूतम्, पृथग्भूतानि, अनेकशः ।

त्रीन्, लोकान्, व्याप्य, भूतात्मा, मुङ्क्ते, विश्वभुक्, अव्ययः ॥

एकमात्र विष्णुभगवान् ही महत्स्वरूप हैं, वह सर्वभूतात्मा विश्वभोक्ता

अविनाशी प्रभु ही तीनों लोकोंको व्याप्तकर नाना भूतोंको तरह-तरहसे भोगते हैं ।

‘द्यौः सचन्द्रार्कनक्षत्रा’ इत्यादिना
स्तुत्यस्य वासुदेवस्य माहात्म्य-
कथनेनोक्तानां फलानां प्राप्तिवचनं
यथार्थकथनं नार्थवाद इति दर्शयति
‘सर्वागमानामाचारः’ इत्यनेनावान्तर-
वाक्येन सर्वधर्माणामाचारवत्
एवाधिकार इति दर्शयति ॥१४०॥

इन ‘द्यौः सचन्द्रार्कनक्षत्रा’ आदि
लोकोंसे, स्तुति किये जाने योग्य
भगवान् वासुदेवका माहात्म्य बतलाते हुए
दिखाते हैं कि, उपर्युक्त फलोंकी प्राप्ति
बतलाना यथार्थ कथन ही है, अर्थवाद
नहीं । ‘सर्वागमानामाचारः’ इस
अवान्तर वाक्यसे यह दिखलाते हैं कि
सब धर्मोंका अधिकार आचारवान्को
ही है ॥१४०॥

इमं स्तवं भगवतो विष्णोर्व्यासेन कीर्तितम् ।

पठेद्य इच्छेत्पुरुषः श्रेयः प्राप्तुं सुखानि च ॥१४१॥

इमम्, स्तवम्, भगवतः, विष्णोः, व्यासेन, कीर्तितम् ।

पठेत्, प., इच्छेत्, पुरुषः, श्रेयः, प्राप्तुम्, सुखानि, च ॥

जिस पुरुषको श्रेय (कल्याण) और सुख पानेकी इच्छा हो वह श्रीव्यास-
जीके कहे हुए भगवान् विष्णुके इस स्तोत्रका पाठ करे ।

‘इमं स्तवम्’ इत्यादिना सहस्र-
शाखाङ्गेन सर्वज्ञेन भगवता कृष्ण-
द्वैपायनेन साक्षान्नारायणेन कृत-
मिति सर्वैरेव अर्थिभिः सादरं
पठितव्यं सर्वफलसिद्धय इति
दर्शयति ॥१४१॥

‘इमं स्तवम्’ इत्यादिसे यह दिखाते
हैं कि इस स्तोत्रको सहस्र शाखाओं-
के ज्ञाता सर्वज्ञ साक्षात् नारायण
भगवान् कृष्णद्वैपायनने ही बनाया है;
इसलिये सभी कामनावालोंको सब
प्रकारका फल प्राप्त करनेके लिये इसे
अद्यापूर्वक पढ़ना चाहिये ॥१४१॥

विश्वेश्वरमजं देवं जगतः प्रभवाप्ययम् ।

भजन्ति ये पुष्कराक्षं न ते यान्ति पराभवम् ॥१४२॥

विश्वेश्वरम्, अजम्, देवम्, जगतः, प्रभवाप्ययम् ।

भजन्ति, ये, पुष्कराक्षम्, न, ते, यान्ति, पराभवम् ॥

जो पुरुष विश्वेश्वर, अजन्मा और संसारकी उत्पत्ति तथा लयके स्थान देवदेव पुण्डरीकाक्षको भजते हैं उनका कभी पराभव नहीं होता ।

‘विश्वेश्वरम्’ इत्यादिना विश्वे-

श्वरोपासनादेव स्तोतारस्ते धन्याः

कृतार्थाः कृतकृत्या इति दर्शयति

‘प्रमादात्कुर्वतां कर्म

प्रच्यवेताध्वरेषु यत् ।

स्मरणादेव तद्विष्णोः

सम्पूर्णं स्यादिति श्रुतिः ॥’

‘आदरेण यथा स्तांति

धनवन्तं धनेच्छया ।

तथा चेद्विश्वकर्तारं

को न मुच्येत बन्धनात् ॥’

(गरुड० पृ० २३० । ५०)

इति व्यासवचनम् ॥ १४२ ॥ मुक्त नहीं हो जायगा ? ॥१४२॥

‘विश्वेश्वरम्’ इत्यादिसे यह दिखाते

हैं कि वे स्तुति करनेवाले श्रीविश्वेश्वर-
को उपासनासे ही धन्य—कृतार्थ
अर्थात् कृतकृत्य हो जाते हैं ।

व्यासजीका वचन है—‘यज्ञादि

कर्म करनेवालोंका यज्ञमें जो कर्म
प्रमादवश भ्रष्ट हो जाता है वह
श्रीविष्णुभगवान्के स्मरणमात्रसे पूर्ण
हो सकता है—ऐसा श्रुति कहती है ।’

‘जिस प्रकार मनुष्य धनकी इच्छा-

से धनधानकी आदरपूर्वक स्तुति
करता है उसी प्रकार यदि विश्वकर्ता-
की स्तुति करे तो कौन बन्धनसे

सहस्रनामसम्बन्धिव्याख्या सर्वमुक्तावहा ।

श्रुतिस्मृतिन्यायमृत्वा रचिता हरिपादयोः ॥

यह सर्वसुखदायिनी श्रुतिस्मृतिन्यायानुसारिणी सहस्रनामसम्बन्धिनी
व्याख्या श्रीहरिके चरणोंमें समर्पण की जाती है ।

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यस्य श्रीगोविन्दभगवत्पूज्य-

पादशिष्यस्य श्रीमच्छङ्करभगवतः कृतौ विष्णु-

सहस्रनामस्तोत्रभाष्यं सम्पूर्णम् ॥



विविध गीताएँ

- गीता—[श्रीशांकरभाष्यका सरल हिन्दी-अनुवाद] इसमें मूल भाष्य तथा भाष्यके सामने ही अर्थ लिखा है । भाष्यके पदोंको अलग-अलग करके लिखा गया है और गीतामें आये हुए हरेक शब्दकी पूरी सूची है, चित्र ३, पृ० ५०४, मू० साधारण जिल्द २॥) बढिया जिल्द ... २॥॥)
- गीता—मूल, पदच्छेद, अन्वय, साधारण भाषाटीका, टिप्पणी, प्रधान और सूक्ष्मविषय एवं त्यागसे भगवत्प्राप्तिसहित, मोटा टाइप, सुन्दर कपड़ेकी जिल्द, ५७० पृष्ठ, ४ बहुरंगे चित्र, मू० ... १॥)
- गीता—गुजराती टीका, सभी विषय १॥) वाली गीताके समान, मूल्य ... १॥)
- गीता—मराठी टीका, सभी विषय १॥) वाली हिन्दी गीताके समान, मूल्य १॥)
- गीता—प्रायः सभी विषय १॥) वालीके समान, श्लोकोंके सिरेपर भावार्थ छपा हुआ है, साइज और टाइप कुछ छोटे, पृष्ठ ४६८, मू० ॥६॥ सजिल्द ॥॥=)
- गीता—बैंगला टीका, सभी विषय ॥॥=) वाली गीताके समान, मूल्य १॥) सजिल्द ... १॥)
- गीता—साधारण भाषाटीकासहित, मोटा टाइप, मू० ॥) स० ... ॥६॥)
- गीता—मूल, मोटे अक्षरवाली, सचित्र मूल्य १- सजिल्द ... ॥६॥)
- गीता—भाषा, इसमें श्लोक नहीं हैं, अक्षर मोटे हैं, १ चित्र, मू० १) स० ॥=)
- गीता—भाषाटीका सचित्र, त्यागसे भगवत्प्राप्तिसहित, मूल्य =॥) सजिल्द ६॥)
- गीता—मूल, विष्णुसहस्रनामसहित, सचित्र और सजिल्द ... =)
- गीता—मूल, तामीजी, साइज २×२॥ इञ्च सजिल्द ... =)
- गीता—दो पत्रोंमें सम्पूर्ण १८ अध्याय ... -)
- गीता—केवल दूसरी अध्याय मूल और अर्थसहित ... ॥)
- गीता-सूची (Gita List) भिन्न-भिन्न भाषाओंकी गीताओंकी सूची ॥)
- गीताका सूक्ष्मविषय—गीताके प्रत्येक श्लोकका हिन्दीमें सारांश है, मू० ... -)
- श्रीकृष्ण-विज्ञान—गीताका श्लोकोंसहित हिन्दी पद्यमें अनुवाद, सचित्र ॥॥) स० १)

श्रीजयदयालजी गोयन्दकाकी पुस्तकें—

- तत्त्व-चिन्तामणि—(सचित्र दो भाग) पृष्ठ ३०२, मूल्य ॥=) स० ॥१-)
- ये ग्रन्थ परम उपयोगी हैं । इनके द्वितीय भाग—पृष्ठ ६३२, मू० ॥१=)
- मननसे धर्ममें श्रद्धा, भगवान्में स० १=)
- प्रेम और विश्वास एव नित्यके परमार्थ-पञ्चावली—(सचित्र) कल्याण-कारी ५१ पत्रोंका छोटा-सा संग्रह, पृष्ठ १४४, मू० ... १)
- प्रेम, अत्यन्त आनन्द एवं धान्ति-गीता-निबन्धावली—यह गीताकी की प्राप्ति होती है । प्रथम भाग—पता—गीताप्रेस, गोरखपुर

अनेक बातें समझनेके लिये
उपयोगी है। पृ० ८८, मू० २॥
गीताक सांख्ययोग और निष्काम
कर्मयोग—नामसे ही प्रकट है।
मू० ... २॥
सच्चा सुख और उसकी प्राप्तिके उपाय—
साकार और निराकारके ध्यानादि-
का रहस्यपूर्ण वर्णन, मू० २॥
श्रीमद्भक्तिप्रकाश—(सचित्र) इसमें
भगवान्की प्रार्थना तथा मानसिक

पूजा आदिका वर्णन है। मूल्य—
भगवान् क्या हैं ?—इसमें परमार्थ-
तत्त्व भर देनेकी चेष्टा की है। मू०—
स्यागसे भगवत्प्राप्ति—त्यागके द्वारा
मोक्षकी प्राप्तिका मार्ग, मू०—
धर्म क्या है ?—नामसे ही पुस्तकके
विषयका पता लग जाता है। मू० ॥
गजलगीता—गजलमें गोताके १२ वें
अध्यायका कुछ पद्यानुवाद
मू० आधा पैसा

श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारद्वारा लिखित और

सम्पादित पुस्तकें—

बिनय-पत्रिका—सरल हिन्दी-टीका-
सहित, पृष्ठ ४८७, चित्र २ सुनहरी,
३ रंगीन, १ सादा, मू० १) स० १।)
शैवेय—धर्म-सम्बन्धी चुने हुए लेखोंका
सचित्र संग्रह। मू० ॥ २) स० ॥ ३।)
तुलसीदास—इसमें दत्तने विषय हैं
कि सबके लिये कुछ-न-कुछ अपने
मनकी बात मिल सकती है।
पृ० २९२, मूल्य ॥ २) स० ॥ ३।)
भक्त बालक—इसमें गोविन्द, मोहन,
धन्ना जाट, चन्द्रदास और सुषन्वा-
की कथाएँ हैं। ५ चित्र, पृ० ८०, १।)
भक्त नारी—इसमें शबरी, मीरा, जना,
करमैती और रवियाकी प्रेमपूर्ण
कथाएँ हैं। ६ चित्र, पृ० ८०, १।)
भक्त-पञ्चरत्न—इसमें रघुनाथ,
दामोदर और उसकी पत्नी, गोपाल
शान्तोबा और उसकी पत्नी और
नीलाम्बरदासके चरित्र हैं। मू० १।)
आदर्श भक्त—७ चित्र, एण्टिक कागज,
पृष्ठ १११, मू० १।), इसमें शिवि,

रन्तिदेव, अम्बरीष, भीष्म, अर्जुन,
सुदामा और चक्रिककी कथाएँ हैं।
भक्त-चन्द्रिका—सुन्दर ७ चित्र,
एण्टिक कागज, पृष्ठ ९६, मूल्य
१।), इसमें साध्वी सख्वाई, महा-
भागवत श्रीज्योतिषन्त, भक्तवर
बिठलदासजी, दोनबन्धुदासजी,
भक्त नारायणदास और बन्धु
महान्तिकी सुन्दर गाथाएँ हैं।
भक्त-समरस—७ चित्र, एण्टिक
कागज, पृष्ठ १०५, मू० १।), इसमें
दामाजी पन्त, मणिदास माली,
कृष्ण कुम्हार, परमेश्वरी ठाकुरी, रघु
केशव, रामदास चमार और साल-
बेगकी कथाएँ हैं।
भक्त-कुसुम—६ चित्र, एण्टिक कागज,
पृष्ठ ९१, मू० १।) इसमें जगन्नाथ-
दास, हिम्मतदास, बालीग्रामदास,
दक्षिणी तुलसीदास, गोविन्ददास
और हरिनारायणकी कथाएँ हैं।
प्रेमी भक्त—७ चित्र, एण्टिक कागज,
पृष्ठ १०३, मू० १।), इसमें बिल्व-
पता—गीताप्रेस, गोरखपुर

- मङ्गल, जयदेव, रूप-सनातन, हरिदास और खुनाथदासजीकी कथाएँ हैं ।
- प्रेम-दर्शन-देवर्षि नारदरचित भक्ति-सूत्र, सचित्र, सटीक मू० १-)
- यूरोपकी भक्त स्त्रियाँ—३ चित्र, पृष्ठ १२, मू० १), इसमें साध्वी रानी एलिजाबेथ, साध्वी कैथेरिन, साध्वी गेयो और साध्वी लुइसाकी जीवनियाँ हैं ।
- मानव-धर्म—इसमें धर्मके दस लक्षणोंका अच्छा विवेचन है । मूल्य =)
- साधन-पथ—सचित्र पृष्ठ ७२, मू० =)॥
- श्रीधर्मप्रभोत्तरी—नये संस्करणमें १ तिरंगा चित्र भी है । मू० =)
- भजन-संग्रह ५ वॉ भाग (पत्र-पुष्प) (सचित्र, कविता-संग्रह) मू० =)
- आनन्दकी लहरें—इसमें हम दूसरोंको सुख पहुँचाते हुए खुद कैसे सुखी हों, यह बताया गया है । मू० -)॥
- गोपी-प्रेम—सचित्र, पृष्ठ ५० मू० -)॥
- मनको वश करनेके उपाय—इसमें एक चित्र भी है । मू० -)॥
- ब्रह्मचर्य—ब्रह्मचर्यकी रक्षाके अनेक सरल उपाय बताये गये हैं । मू० -)
- समाज-सुधार—समाजके जटिल प्रश्नोंपर प्रकाश डाला गया है मू० -)
- दिव्य सन्देश—वर्तमान दाम्भिक युगमें किस उपायसे शीघ्र भगवत्-प्राप्ति हो सकती है, इसमें उसके सरल उपाय बताये हैं । मू०)॥

कुल अन्य लेखकोंकी पुस्तकें

- श्रीशङ्कराचार्य श्रीभारती कृष्णतीर्थ आचार्यके सदुपदेश—मूल्य -)
- श्रीअरविन्द माता—मूल्य ... १)
- श्रीगान्धीजी सप्त-महाव्रत—मूल्य ... -)
- श्रीमालवीयजी ईश्वर—मूल्य ... -)॥
- Immanence of God -/2/- Swami Sivananda Saraswati Mind: Its Mysteries and Control -/4/-
- स्वामीजी श्रीभोलेबाबाजी सुति-रत्नावली—(सचित्र) वेद-उपनिषद् आदिके जुने हुए मन्त्र अर्थसहित, मूल्य ... ॥)
- सुतिकी टेर—पुस्तक सीधी-सादी बोलचालकी-सी कवितामें लिखी गयी है, वेदान्तके विषय-की है । पृष्ठ-संख्या १५०, सचित्र, मूल्य केवल ... १)
- वेदान्त-छन्दावली—वेदान्तके विचारणीय प्रश्न और उपदेश । मूल्य ... =)॥
- श्रीनारायणस्वामीजी एक सन्तका अनुभव—मूल्य -)
- प० श्रीभवानीशंकरजी महाराज ज्ञानयोग—मूल्य ... १)
- श्रीमूपेन्द्रनाथ सान्याल दिनचर्या—मूल्य ... ॥)
- रायबहादुर लाला श्रीसीतारामजी चित्रकूटकी झोंकी—मूल्य ... =)
- गोस्वामी लक्ष्मणाचार्य ब्रजकी झोंकी—मूल्य ... १)
- प० महावीरप्रसादजी मालवीय आंबदरी-केदारकी झोंकी—मूल्य १)
- पता—गीताप्रेस, गोरखपुर

हनुमानबाहुक—मूल्य ... -)॥

श्रीविद्योगी हरिजी

प्रेम-योग—सजीव भाषा और दिव्य भाषोंसे सना हुआ यह प्रेम-योग प्रेम-साहित्यका एक पूर्ण ग्रन्थ कहा जा सकता है। दो खण्ड, पृ० ४२०, मूल्य १।) सजिल्द १॥)

गीतामें अकि-योग—गीताके बारहवें अध्यायकी सुन्दर भावपूर्ण सरल टीका है। पृ० ११८, दो चित्र, मू० ... १-)

जीवन-चरित्र

भागवतरत्न प्रह्लाद—यह पवित्र चरित्र हम माँ, बहिन, बेटा, भाई, भोजाई आदि सबके हाथोंमें पढ़नेके लिये दे सकते हैं। पृष्ठ ३४०, ३ रंगीन और ५ सादे चित्र, मू० १) सजिल्द १।)

वेचर्षि नारद—जैसे भगवानके चरित्रोंसे हमारे धर्मशास्त्र भरे पड़े हैं, वैसे ही नारदजीकी पुण्यमयी गाथाएँ भी हमारे शास्त्रोंमें ओतप्रोत हैं। पृष्ठ २४०, २ रंगीन, ३ सादे चित्र, मू० ॥१) स० १)

श्रीश्रीचैतन्य-चरितावली (सचित्र)—श्रीचैतन्यकी इतनी बड़ी जीवनी अभीतक हिन्दीमें नहीं निकली। यह पाँच खण्डोंमें समान हुई है। प्रत्येक खण्ड अनेक चित्रोंसे सुसज्जित है। बहुत ही सुन्दर ग्रन्थ है। मूल्य प्रथम खण्ड—॥१=) स० १=); द्वितीय खण्ड—१=) स० १=); तृतीय खण्ड—१) स० १।); चतुर्थ खण्ड—॥२=) स० ॥१=); पञ्चम खण्ड—॥१) स० १)

आनुकाराम-चरित्र—दक्षिणके एक प्रसिद्ध सन्तका पावन चरित्र है, १ सादे चित्र, पृष्ठ ६१४, सुन्दर छपाई, ग्लेज कागज, मू० १२) स० १॥)

श्रीज्ञानेश्वर-चरित्र—लोकप्रसिद्ध महाराष्ट्र-सन्त, ज्ञानेश्वरी गीताके निर्माताकी जीवनी, सचित्र, मू० ॥१-)

श्रीएकनाथ-चरित्र (सचित्र)—दक्षिणके महान् भगवद्भक्तकी यह जीवनी अलौकिक है। भगवान् स्वयं आपके नौकर रहे थे, पढ़ने योग्य है। मूल्य ॥)

श्रीरामकृष्ण परमहंस (सचित्र)—आप कुछ ही दिन हुए, अत्यन्त प्रसिद्ध भगवद्भक्त हो गये हैं। आपका नाम विलायत और अमेरिकातक प्रसिद्ध है। इस पुस्तकमें ३०० उपदेश भी संग्रहीत हैं। मूल्य ॥)

अक-आरती (७ चित्र)—सरल कवितामें ७ भक्तोंकी सुन्दर-रोचक कथाओंका वर्णन है, सबके लिये सुगम है। मूल्य ॥)

भजन-संग्रह—गुलसीदासजी, सर-दासजी, कबीरजी, मीरा आदि अनेक प्राचीन पुरुष और स्त्री भक्तों और नवीन कवियोंके भजनोंका सुन्दर संग्रह। प्रथम भाग—=), द्वितीय भाग—=), तृतीयभाग—=), चतुर्थ भाग—=)

श्रीअरण्डल

सेवाके मन्त्र—मू० ...)॥

श्रीज्वालासिंहजी

मनन-माला—मू० ... =)॥

भाषाटीका-सहित तथा मूल संस्कृत शास्त्र-ग्रन्थ

श्रीविष्णुपुराण—सानुवाद, सचित्र,
मू० साधारण जिल्द २॥) बर्दिया
जिल्द २॥) मात्र

अध्यात्मरामायण—सानुवाद, सचित्र,
मू० साधारण जिल्द १॥) बर्दिया २)
मुमुक्षुसर्वस्वसार—सटीक, पृष्ठ ४१६,
मू० ॥१- सजिल्द १-)

श्रीमद्भागवत एकादश स्कन्ध—सचित्र-
सटीक, भागवतमे दशम और
एकादश स्कन्ध सर्वोपरि हैं। दाम
केवल ॥१) स० १)

विष्णुसहस्रनाम—शांकरभाष्य-हिन्दी-
अनुवाद-सहित, मू० ॥=) मात्र
विवेक-चूडामणि (सचित्र)—मूल
श्लोक और हिन्दी-अनुवाद-सहित,
पृष्ठ २२४, मू० ॥=) स० ॥=)

प्रबोध-सुधाकर (सचित्र)—विषय-
भोगोंकी तुच्छता और आत्मसिद्धिके
उपाय बताये गये हैं, मू० ॥=)॥

ईशावास्योपनिषद्—सानुवाद शाङ्कर-

भाष्यसहित, सचित्र, पृष्ठ ५०, मू० ॥=)
केनोपनिषद्—सानुवाद शाङ्करभाष्य
सहित, सचित्र, पृष्ठ १४६, मू० ॥)
कठोपनिषद्—,, पृष्ठ १७२, मू० ॥-)
मुण्डकोपनिषद्—,, पृष्ठ १३२, मू० ॥=)
प्रश्नोपनिषद्—,, पृष्ठ १३०, मू० ॥=)
उपरोक्त पाँचों उपनिषद् एक जिल्दमें
सजिल्द (उपनिषद्-भाष्य खण्ड १)
मूल्य २।-)

अपरोक्षानुभूति—(सचित्र) मूल
श्लोक और हिन्दी-अनुवाद-सहित,
मू० =)॥

मनुस्मृति—केवल दूसरा अध्याय और
उसका हिन्दी-अनुवाद, मू० -)॥

रामगीता—सानुवाद, मू० ...)॥

विष्णुसहस्रनाम—मू०)॥

प्रश्नोत्तरी—हममें भी मूल श्लोकोंसहित
हिन्दी-अनुवाद है, मू०)॥

सन्ध्या—विधिसहित, मू० ...)॥

पातञ्जलयोगदर्शन (मूल))॥

कुछ अन्य पुस्तकें

गीतावली—सटीक पृष्ठ ४६०, ८ चित्र	श्रीसीतारामभजन	)॥
मू० १) स० १।)	बलिवैश्रदेवविधि	)॥
मूलगोसाईचरित—मू० -)।	श्रीहरिसंकीर्तनकी धुन	)।
हरेरामभजन ३ माला)॥	कल्याण-भावना	)।
,, १४ माला १-)	लोभमें पाप	आषा पैंसा

दर्शनीय चित्र

हमारे यहाँ अनेक प्रकारके छोटे-बड़े, सुन्दर-सुन्दर चित्र मिलते हैं। विशेष
जानकारीके लिये चित्रोंका बड़ा मूचीपत्र मुफ्त मँगवाकर देखिये।

पता—गीताप्रेस, गोरखपुर

कल्याण

भक्ति, ज्ञान, वैराग्यसम्बन्धी सचित्र धार्मिक मासिक पत्र,

वार्षिक मूल्य ४३)

(हर महीनेमें २७५०० रूपता है)

कुछ विशेषांक

रामायणाङ्क—पृष्ठ ५१२, तिरगे-इकरंगे १६७ चित्र, मू० २॥३), स० ३३)

अङ्काङ्क—तीसरे वर्षकी पूरी फाइलसहित, मूल्य ४३), सजिन्द ४॥३)

श्रीशिवान्क सपरिशिष्टाङ्क—पृष्ठ ६६६, चित्र २८७, मू० ३), स० ३॥)

„ —आठवें वर्षकी पूरी फाइलसहित, मू० ४३), स० ५१—)

श्रीशक्ति-अङ्क सपरिशिष्टाङ्क—पृ० ७००, चित्र २१०, मूल्य ३), स० ३॥)

श्रीयोगाङ्क सपरिशिष्टाङ्क—पृष्ठ लगभग ७०० और चित्र लगभग २००,

मू० ३) स० ३॥)

(इनमें कमीशन नहीं है, डाक-महसूल हमारा)

व्यवस्थापक—कल्याण, गोरखपुर



